पञ्चाध्यायी प्रवचन

[भाग १, २]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ, पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

प्रबन्ध-सम्पादक

वैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द-शास्त्रमाला

यादगार वंडतला, सहारनपुर

●

प्रकाशक :

खेमचन्द जैन सर्राफ

मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के संरक्षक महानुभाव—

(१) श्रीमान् ला० महावीर प्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ, संरक्षक अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी

(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीर प्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ, संरक्षिका

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभाव—

१	श्रीमान्	लाला लालचन्द जी जैन सर्राफ	सहारनपुर
२	"	सेठ भवरीलाल जी जैन पाण्डया	झूमरीतिलैया
३	"	कृष्णचन्द जी रईस	देहरादून
४	"	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्डया	झूमरीतिलैया
५	"	श्रीमती सोवती देवी जैन	गिरीडीह
६	"	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन	मुजफ्फरनगर
७	"	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन प्रेमपुरी	मेरठ
८	"	सलेकचन्द लालचन्द जी जैन	मुजफ्फरनगर
९	"	दीपचन्द जी जैन रईस	देहरादून
१०	"	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन	मसूरी
११	"	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन	ज्वालापुर
१२	"	केवलराम उग्रसैन जी जैन	जगाधरी
१३	"	गैंदामल दगडूशाह जी जैन	सनावद
१४	"	मुकुन्दलाल गुलशनराय जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
१५	"	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन	देहरादून
१६	"	जयकुमार मूलचन्द जी जैन सर्राफ	सदर मेरठ
१७	"	मन्त्री दिगम्बर जैन समाज	खतौली
१८	"	बाबूराम अकलङ्कप्रसाद जी जैन	तिस्सा
१९	"	विशालचन्द जी जैन रईस	सहारनपुर
२०	"	हरीचन्द ज्योति प्रसाद जी जैन ओवरसियर	इटावा
२१	"	सौ० प्रेम देवीशाह सु० बा० फतहलाल जी जैन संघी	जयपुर
२२	"	मन्त्राणी दिगम्बर जैन महिला समाज	खण्डवा
२३	"	सागरमल जी जैन पाण्डया	गिरीडीह
२४	"	गिरधारीलाल चिरञ्जीलाल जी जैन	गिरीडीह
२५	"	राधेलाल कालूराम जी जैन मोदी	गिरीडीह
२६	"	फूलचन्द बैजनाथ जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
२७	"	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी जैन सर्राफ	बड़ौत
२८	"	गोकुलचन्द हरकचन्द जी जैन गोधा	लालगोला
२९	"	दीपचन्द जी जैन सुपरिन्टेन्डेण्ट इञ्जीनियर	कानपुर
३०	"	मन्त्री दि० जैन समाज नाई की मण्डी	आगरा

३१	श्रीमान	संचालिका दि० जैन महिला मण्डल नमककी मण्डी	आगरा
३२	"	नेमिचन्द जी जैन रुडकी प्रेस	रुडकी
३३	"	झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन चिलकाना वाले	सहारनपुर
३४	"	रोशनलाल के० सी० जैन	सहारनपुर
३५	"	मोल्हडमल श्रीपाल जी जैन जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	"	शीतलप्रसाद जी जैन	सदर मेरठ
३७	"	बनवारीलाल निरञ्जनलाल जी जैन	शिमला
३८	"	मुन्नालाल यादवराय जी जैन	सदर मेरठ
३९	"	महेन्द्रकुमार जी जैन	चिलकाना
४०	"	आदीश्वरप्रसाद राकेशकुमार जैन	चिलकाना
४१	"	हुकमचन्द मोतीचद जैन	सुलतानपुर
४२	"	कैलाशवती धर्मपत्नी जयप्रसाद जैन	सुलतानपुर
४३	"	ꕥ जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबडा	झूमरी तिलैया
४४	"	ꕥ इन्द्रजीत जी जैन वकील स्वरूप नगर	कानपुर
४५	"	ꕥ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या	जयपुर
४६	"	ꕥ दयाराम जी जैन आर० ए० डी० ओ०	सदर मेरठ
४७	"	× जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन	सदर मेरठ
४८	"	× जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन	शिमला

नोट—जिनानामो के पहिले ꕥ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आये हैं, शेष आने है। तथा जिनके पहिले × ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया, सभी बाकी है।
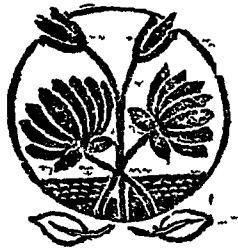
आमुख

प्रिय धर्मबन्धुओ !

आज आपके कर कमलोमे ऐसे ग्रन्थका प्रचलन आ रहा है जिसमे आत्माके अस्तित्व व परिणतिके सम्बन्धमें दार्शनिक सैद्धान्तिक व आध्यात्मिक पद्धतिसे आत्म-तत्त्वका साधारणसे लेकर असाधारण तक विश्लेषणपूर्वक वर्णन है। यह ग्रन्थ पाच अध्यायोमे सम्पन्न होना था, किंतु रचयिता सन केवल दो अध्यायोको लिख पाये, बाद मे आयु पूर्ण हो गई होगी, ऐसा अनुमान है। यदि यह ग्रन्थ पांच अध्यायोमे सम्पन्न हो जाता तो मानव समाजके लिए और भी अधिक निधि प्राप्त हो जाती। उपलब्ध दो अध्यायोमे जो तत्त्व सामग्री है वह तत्त्वजिज्ञासु एव शान्त्यर्थी जनोके लिये अत्यधिक उपयोगी है।

प्रथम अध्यायमे द्रव्य सामान्यका स्वरूप प्रवल युक्तियोसे सिद्ध कर करके प्रकट किया है। फिर तत्त्वज्ञानमे सहायक व्यवहारनयके विषयसे ऊपर उठाकर अनुभवमें ले जानेके उद्देश्यसे निर्बाध परमशुद्ध निश्चय नयका अवलम्बन कराया गया है। इससे व्यवहारनय प्रतिषेध्य व निश्चयनय प्रतिषेधक है, यह भलीभाँति प्रकट किया गया है।

द्वितीय अध्यायमे पूर्व अध्यायमे प्रसिद्ध द्रव्य सामान्यमेसे आत्मद्रव्यको विश्लेषित करके आत्मतत्त्वकी युक्तियोसे सिद्धि की गई है। अभूतार्थनयसे गुण पर्यायके भेदोके परिचयके माध्यममे आत्माका विविध परिज्ञान कराकर अनुभूतिकी ओर ले जानेके लिये अखण्ड आत्मतत्त्वका भूतार्थनयसे परिज्ञान कराया गया है। इस तथ्यका विस्तार सहित विवेचन यो करना आवश्यक हुआ कि श्रेयस्कर सम्यग्दर्शनका लाभ भूतार्थनयके आश्रयसे होता है। इस तथ्यके विवेचनके अनन्तर इंद्रियज सुख और इन्द्रियज ज्ञानकी हेयताका वर्णन तो अपूर्व ही है। इसके अनन्तर सम्यग्दर्शनके अङ्गो का विशद वर्णन तो मुमुक्षुवोको अद्भुत प्रसाद प्रदान करने वाला है।

बडे हर्षका विषय है कि इस ग्रन्थराजपर अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी ने सरल व रोचक प्रवचन करके इस ग्रन्थकी गूढ़ गाथाओकी रहस्यमयी तात्विकताको स्पष्ट करके दर्शाया है। जिससे प्रत्येक मुमुक्षुजन इस ग्रन्थ-सागरके देदीप्यमान रत्न-स्फटिक प्राप्त करके जीवनके आत्मविकासकी सिद्धिमे प्रकाश पा सके। अस्तु !

तत्त्वदर्शक :

व्याकरणरत्न काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'

साहित्य प्रेस, सहारनपुर

पञ्चाध्यायी-प्रवचन भाग १, २

[प्रथम भाग]

ॐ

[प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी]

❀

पञ्चाध्यायावयव मम कर्तुर्ग्रन्थराजमात्मवशात् ।
अर्थालोकनिदान यस्य वचस्तस्तुवे महावीरम् ॥ १ ॥

ग्रन्थराजके करनेका ग्रन्थकर्ताका सकल्प—पाँच अध्याय जिसके अवयव है, ऐसे इस ग्रन्थराजको अपनी योग्यतासे स्ववश होकर रच रहा हू। इस ग्रन्थको रचता हुआ मेरेको जो अर्थ आलोक प्राप्त हुआ है, पदार्थोंका प्रकाश प्राप्त हुआ है, वह सब महावीरके मूल वचनोकी परम्परासे प्राप्त हुआ है। तो जिनके वचन मेरे पदार्थोंके प्रकाशमे मूल कारण है उन महावीर तीर्थङ्करका मैं स्तवन करता हू। इस ग्रन्थका नाम ग्रन्थराज प्रतीत होता है और पञ्चाध्यावयव यह उसका विशेषण है अर्थात् जिसको ५ अध्यायोमे कहा जायगा। इसके दो ही अध्याय बन सके है, आगे और ३ अध्याय बनाये जाने थे किन्तु नही हो सके। पर ग्रन्थकर्ताका आशय इस ग्रन्थ को ५ अध्यायोमे रचनेका था, इसी कारण यह ग्रन्थराज कहलाया। इस ग्रन्थके कर्ता कौन है ? इस विषयमे यद्यपि आज वक्त थोडा सा विवाद है लेकिन प्राय. करके यह अनुमान किया जाता है कि इस ग्रन्थराजके कर्ता श्री अमृतचन्द्राचार्य हैं जो कि समयसार, प्रवचनसार आदिकके रचयिता हैं। वे ग्रन्थ तो अमृतचन्द्र जीके ही रचे हुए है और वे प्रमाणीक है। कुछ ग्रन्थोके अन्तमे स्वय सूरि जीने अपना नामोल्लेख भी किया है। अब उनकी जो शैली उन ग्रन्थोमे रही आई वही शैली इस ग्रथमे भी पाई जाती है। यह अनुमान है कि इस ग्रन्थराजके कर्ता भी श्री अमृतचन्द्र जी सूरि है। और, किन्हीकी खोजके अनुसार इसके कर्ता प—राजमल जी बताये जाते हैं। पर यह विषय इतिहासके अन्वेषक विद्वानोका है, पर बहुमत यह है कि इसके रचयिता श्री अमृतचन्द्र जी सूरि हैं।

मङ्गलाचरण और उससे ग्रन्थकी प्रमाणिकताका सकेत—ग्रन्थकर्ता यहाँ महावीर स्वामीका स्तवनरूप मगलाचरण कर रहे है। गुणोका स्तवन करना

मंगल है। जैसे गुणोका स्मरण करना, इष्टदेवका स्मरण करना अथवा इष्टदेवका नमस्कार करना मगल है, इसी प्रकार गुणस्तवन भी मगल है। और ऐसा मगल ग्रन्थके आदिमे तो प्रायः गाया ही जाना चाहिए, और अन्तमें भी किया जाता है, पर मगल तो मगल ही है, इसे मध्यमे भी यथास्थान किया जा सकता है। इस मगला-चरणसे यह प्रतीत होता है कि ग्रन्थकारने अपने ग्रन्थकी प्रमाणिकताके लिए अथवा अपने ज्ञानप्रकाशके स्रोतकी कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए महावीर स्वामीका स्तवन किया है। आज जो जैन शासनका प्रकाश है उसका मूल कारण महावीर प्रभु हैं। उनके केवलज्ञानके समय समयसर होने वाली दिव्यध्वनिको सुनकर गणधरदेवने द्वादसागकी रचना की और गणधरदेवका अध्ययन पाकर अन्य आचार्योंने उस परम्पराको बढाया और उस ही परम्परामे यह ग्रन्थ रचा जा रहा है। तो इस ग्रन्थकी प्रमाणिकता भी सिद्ध होती है। मूलमे किसीका बोध प्राप्त हो, वह मूल यदि प्रमाणभूत है तो आजका यह ग्रन्थ भी प्रमाणभूत बनता है। वैसे तो परीक्षा करके भी विद्वत्जनोंमें प्रमाणता आती है। जो तत्त्व बताया जा रहा है वह तत्त्व यदि प्रमाण सिद्ध है, प्रमाणसे कोई उसमें विरोध नही आता तब वह प्रमाणभूत है। यहाँ यह बात जाननी होगी कि जो प्रमाणभूत बात है उसकी समता उस मूल ध्वनिसे मिल जायगी। मूल ध्वनिमें बतायी हुई बात और यहाँ प्रमाणसे परखी हुई बात एक ही होगी क्योकि जो सत्य है सो ही दिव्य ध्वनिमें प्रकट होता है, जो सत्य है वही पदार्थमे पाया जाता है। यह ग्रन्थ जितना कि आज कल उपलब्ध है करीब २००० श्लोकोमें पाया जा रहा है, जिसमे २ अध्याय ही समाप्त हो पाये हैं। यदि यह पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध होता तो यह ग्रन्थराज अपने वास्तविक नामको और अधिकरूपसे प्रकट कर देता। अब भी जो इसमे विवेचन होगा उससे यह ग्रन्थराज ही सिद्ध होता है। ५ अध्यायोम ग्रन्थकर्ता एक एक विषयको मुख्य रूपसे कहने वाले थे। जैसे कि प्रथम अध्यायमें द्रव्य विभागो का वर्णन किया। द्रव्य, गुण पर्याय। इन सबका खूब परिक्षित ढगसे विस्तृत वर्णन है। दूसरे अध्यायमें सम्यक्त्व क्या है और सम्यक्त्वके सम्बन्धमें परिचयके लिए जो जो कुछ बताना आवश्यक था उन सब तत्त्वोंका बताया है। इसी प्रकार आगेके तीन अध्यायोमें भी उपयोगी तत्त्वोंका वर्णन करने वाला अभीष्ट था। तभी एक यौगिक रीतिसे इसका नाम पञ्चाध्यायी भी रखा गया है। अब वर्द्धमान स्वामीको नमस्कार करके अन्य भी तीर्थंकरों और परमेष्ठियोंको नमस्कार करते हैं।

शेषानपि तीर्थंकराननन्तसिद्धानहं नमामि समम्।
धर्माचार्याध्यापकसाधुविशिष्टान् मुनीश्वरान् वन्दे ॥२॥

शेष तीर्थंकरों अनन्त सिद्धो व आचार्य उपाध्याय साधु परमेष्ठीको नमन—शेष तीर्थंकरोको भी और अनन्त सिद्धोंको मैं एक साथ नमस्कार करता हू,

और जो धर्माचार्य हैं याने आचार्य, परमेष्ठी, अध्यापक अर्थात् उपाध्याय परमेष्ठी और साधुपरमेष्ठीकी मैं बन्दना करता हू। यहाँ महावीर स्वामीके अतिरिक्त शेष तीर्थङ्कर शब्द कहकर ऋषभ आदिक २३ तीर्थङ्करोका संकेत किया है क्योकि आज इस अवसर्पिणी कालके चतुर्थकालमे जो तीर्थङ्कर हुए हैं उनमे वर्द्धमान प्रभु अन्तिम तीर्थङ्कर थे। १ ऋषभनाथ जी, २ अजीतनाथ जी, ३ सम्भवनाथ जी, ४ अभिनन्दन नाथ जी, ५ सुमतिनाथ जी, ६ श्री पद्मप्रभु जी, ७ श्री सुपार्श्वनाथ जी, ८ श्री चन्द्रप्रभु जी, ९ श्री पुष्पदन्त जी, १० श्री शीतलनाथ जी, ११ श्री श्रेयांशनाथ जी १२ श्री वासुपूज्य जी, १३ श्री विमलनाथ जी, १४ श्री अनन्तनाथ जी, १५ श्री धर्मनाथ जी, १६ श्री शान्तिनाथ जी, १७ श्री कुन्थनाथ जी, १८ श्री अरहनाथ जी, १९ मल्लनाथ जी, २० श्री मुनिसुव्रतनाथ जी, २१ श्री नमिनाथ जी, २२ श्री नेमिनाथ जी, २३ श्री पार्श्वनाथ जी ये २३ तीर्थङ्कर हो चुके है। समस्त तीर्थङ्करोकी ध्वनिमे तत्त्व स्वरूपके सम्बन्धमे एकसा ही वर्णन है। कारण यह है कि बताया वह गया है जो वस्तुमे पाया जाता है। तो ऐसी बात जो भी बतायगा, यदि तथ्यकी बात है वास्तवमे तो वह वर्णन एकसा ही होगा। तो यह एक समान वर्णन भी इस बातको सिद्ध करता है कि वस्तुस्वरूप इस प्रकार है। प्रत्येक तीर्थङ्करके समयमे उनके गणधर होते आते हैं। गणधर कहते हैं गणके ईशको, गणेशको। गणेश बडे बुद्धिमान होते है, चार ज्ञानोके धारी होते हैं, इसी कारण लोग किसी मगलके प्रसगमे गणेशका स्मरण करते हैं। प्रत्येक तीर्थङ्करके समयमे अनेक गणधर होते आये। उनमे एक मुख्य गणधर होता है, दिव्य ध्वनिको सुनकर वह गणेश द्वादशाङ्गकी रचना करता है और उस परम्परासे फिर शासनका प्रसार होता है। परमेष्ठियोका नाम तो अरहंत परमेष्ठी है, पर यहाँ तीर्थङ्करोका स्मरण किया है। वे भी अरहंत हैं अतएव समस्त अरहत परमेष्ठियोका स्मरण जानना चाहिए। अरहंत उन्हे कहते है जो चार घातियाकर्म नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त कर चुके हैं और नियमसे अशरीर सिद्ध भगवान होगे। उन अरहतोमे जो तीर्थङ्कर हुए है, जिनके पञ्च कल्याणक होता है अथवा तीन कल्याणक होते है, जिन्होने पहिले दर्शन विशुद्धि आदिक षोडश भावनाये भायी थी, तीर्थङ्कर प्रकृतिका बंध किया था वे अब मुनि होकर, विशाल ज्ञानके धारी होकर जब १३ वें गुणस्थानमे आते है तो वे तीर्थङ्कर प्रयोगरूपसे कहलाने लगते हैं। तो तीर्थङ्करोका स्मरण एक विशेषरूपसे किया, पर समझना चाहिए समस्त अरहंतो का स्मरण। समस्त अरहतो और तीर्थङ्करोके स्मरणके साथ ही यहाँ अनन्त सिद्ध को नमस्कार किया है। साथ ही करनेका मतलब यह है कि जैसे सिद्ध भगवान निष्कलक हैं उसी प्रकार यह अरहत आत्मा भी निष्कलक है। केवल एक शरीर सम्बन्धके कारण ऊपरी ही अन्तर रह गया है। और, जितने ये पूज्य आत्मस्वरूप हैं वे सब एक साथ वंदन योग्य है। उनमे क्रमका विभाग नही पर वचनोमे क्रम है। तो प्रथम अरहंत और सिद्धको नमस्कार करके अब शेष ३ परमेष्ठियोको भी नमस्कार

किया गया है। कोई भी गृहस्थ चाहे बालब्रह्मचारी हो अथवा गृहस्थ हो, जब ज्ञानी और विरक्त होता है तो सर्व परिग्रहोका परित्याग करके केवल आत्मसाधनाके लिये उद्यत होता है, वस्त्रमात्रका भी परिग्रह नही, रचमात्र भी आरम्भ नही,- केवल एक ही कार्य-निज ज्ञान स्वरूपको अपने उपयोगमें समा लेना, इस हीके लिये जो गृहस्थ निर्ग्रन्थ हुआ है वह साधु परमेष्ठी कहलाता है। उन अनेक साधुवोंमे जो अधिक योग्य सिद्ध होता है वह आचार्य परमेष्ठी कहलाता है, और वे आचार्यपरमेष्ठी उन विद्वान साधुवोको अध्ययन करानेके लिए जिसे चुन लेते हैं उसे उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। ऐसे तीन प्रकारके गुरुवोको मैं नमस्कार करता हू।

जीयाज्जैनं शासनमनादिनिधनं सुवन्द्यमनवद्यम्।
यदपि च कुमतारातीनदयं धूमध्वजोपमं दहति ॥ ३ ॥

जैनशासनका जयवाद—*जैनशासन जयवन्त* रहे। जैनशासन अनादि अनन्त है। अच्छी तरह वदने योग्य है। दोषोसे सर्वथा रहित है और खोटे मतरूप शत्रुओंको निर्दय होता हुआ मानो अग्निकी तरह जलाने वाला है। यहां जैन शासनके जयवन्त होनेकी भावना की है। यो सदा जयवत रहे। यों रहे कि जिस जैनशासनके प्रसादसे, जिस तत्त्वज्ञानके प्रसादसे, जिस अनादिकालसे लगे हुए सब सङ्कटोको दूर करनेमें समर्थ होता है, संसारके सङ्कटोसे मुक्त हो जाता है, अपनी शुद्ध, आनन्दमयी अवस्थाको प्राप्त होता है वह जैनशासन जयवत रहेगा। तो इसकी उपासनाके फलमें अनेक जीव सकटोसे मुक्त होते रहेंगे। यह जैनशासन अनादि अनन्त है। न तो इसका आदि है न अन्त है। यद्यपि लोकव्यवहारमे प्रकट रूपमे कभी यह प्रकट रहा है कभी अप्रकट रहा है लेकिन यह अनादिसे प्रवाहरूप चला आया है। किसी समय जैनशासन का व्यवहार न भी रहेगा तो कुछ ही समय बाद इसके प्रवर्तक तीर्थंकर उत्पन्न होते रहते हैं। और, फिर एक समान ही जैसे पूर्वमें जैनशासन प्रवाहित था उसी तरह प्रवाहित होने लगता है। तो यो लोकव्यवहारकी अपेक्षा यह जैनशासन अनादि अनन्त है और वस्तुस्वरूपकी अपेक्षा चाहे लोकव्यवहारमें जैनशासनकी बात न भी रहे किन्तु वस्तुमें वह शासन तो निरन्तर रहता ही है।

जैनशासनका तात्पर्य—जैनशासनका अर्थ है—जिन्होने रागद्वेषादिक कर्म शत्रुओको जीत लिया है उन्हे कहते हैं जिन और ऐसे जिन प्रभु के द्वारा जो बताया गया, प्रकट किया गया है उसे कहते हैं जैन। ऐसा शासन जो जिनेन्द्र देवके द्वारा प्रकट हुआ है; शासन कहते हैं उसे जिसमे आत्मा शासित रहे, संयमित रहे, संयत रह सके, जिसके कारण यह अपने स्वभावकी ओर आये। ऐसे अन्तःज्ञान श्रद्धान और आचरणको जैन कहते हैं। यह जैनशासन अनादिनिधन है और इसकी उपासनासे

अनेक जीव मुक्त हुए हैं और इसकी उपासनासे ही मुक्त होते रहेंगे। अतएव वह भले प्रकार वंदन करने योग्य है। वदन करनेका कारण यह भी है कि यह निर्दोष है। इस जैनशासनमे कही भी कोई दाष नहीं है। अनेकान्त प्रक्रियापर आधारित और आत्माके सहज स्वभावमे ले जानेके लिए स्थिर रखनेके लिए जो आचार विचार बताया गया है वह सब निर्दोष है। वह कैसे निर्दोष है ? यह प्रकरण बहुत लम्बा है और एक एक विषयको लेकर इस प्रकरणका विवरण करनेसे अनवद्यताका मर्म ध्यानमे आयगा। सो इसी ग्रन्थमे इसकी अनवद्यताको बताया जायगा और अनेक सिद्धान्त ग्रन्थोंमें इस जैनशासनकी निर्दोषता भले प्रकार बताई गई है। यह जैन शासन सब जनोका हित करने वाला है। सुबुद्धि सम्यग्ज्ञान यथार्थ परिचय, आत्मस्वरूपका यथार्थ श्रद्धान यही सब तो जैनशासन है। इसके विरुद्ध जो भी मंतव्य होंगे जैसे कि मिथ्यात्वका आशय, शरीरको, वैभवोको अपना मानना, इन्हें सर्वस्व समझना ये सब कुमत कहलाते हैं और इस हीमें रलाने खलाने वाले जो दर्शन सिद्धान्त गढे जाने हैं, जिनसे यह जीव अपने आत्मा सहज स्वरूपमे मग्न नही हो पाता, वे सब कुमत इस जीवकी बरबादीके लिए हैं। सो जैनशासनका प्रकाश उन सब खोटे मंतव्यो को बरबादीके हेतुभूत मिथ्या भावोको ऐसे दहन कर देता है जैसे बड़े भारी ईंधनको अग्निकी कणिका दहन कर देती है। यहाँ इस दहन कार्यको बतानेके लिए दह शब्द दिया है, मायने निर्दय होकर। तो निर्दयका यह अर्थ नहीं कि जैन शासन दयाहीन है किन्तु खोटे मंतव्योका दहन इस प्रकार होता है जैसे कि कहते हैं कि रंचमात्र भी गुन्जाइश नही रखी। जैनशासनमें आचार और विचार सशुद्ध रहते हैं। उत्थानके लिए दो ही मार्ग शुद्ध होने चाहिएं—आचारका मार्ग और विचारका मार्ग। विचार के मार्ग तो स्याद्वादकी प्रक्रियासे भी सिद्ध हो गए। किसी भी तत्त्वका समस्त अपेक्षाओसे निर्णय कराता है स्याद्वाद और प्रेरणा देता है प्रधान शाश्वत तत्त्वकी ओर जानेके लिए। तब आचारवृत्ति संयमरूप आचार और अन्तरङ्गमें आत्माके सहज स्वरूपके ध्यानरूप आचार ये सब इस जीवको शुद्ध आनन्द प्रकट करनेमे सहयोगी हो रहे हैं। ऐसे शुद्ध आचार और विचारसे परिपूर्ण यह जैन शासन सदा जयवन्त रहे। सबसे मुख्य बात समझनेकी यह है कि आत्माका तत्त्व क्या है ? उसका स्वरूप क्या है ? मैं वास्तवमे क्या हूँ। सभी दार्शनिकोने इस मैं की समस्या सुलझाना चाहा। यह मैं क्या हू, इस मैं के सम्बन्धसे जैसा जो कुछ देखा, जो समझमे आया उसकी हठ करके आग्रह करके लोगोने अपने अपने दर्शन गढे।

जैन शासनमें स्याद्वादसे अहका निर्णय—जैन शासनमे इस मै का निर्णय स्याद्वादसे किया। जब कि कोई पुरुष कहता है कि मैं का वाच्य यह ब्रह्म सदा अपरिणामी है। तो कोई लोग कहते हैं कि मैं का वाच्य यह ज्ञानक्षण क्षणिक है, दूसरे क्षण भी नही ठहरता। जैन शासनने बताया है कि चूंकि जितने भी सत् होते हैं वे

सब सदा रहते हैं और प्रतिसमय उनकी व्यवस्था बनती और बिगड़ती रहती है। यह सत्का स्वरूप है। अगर कोई सत् है, जिसका सत्त्व है तो उसमें तीन कलायें प्राकृतिक हैं उत्पन्न होना, विलीन होना और बने रहना। तो मैं भी हू-ना ! हू तो कहते ही हैं सब। तो हूके मायने अस्तित्व है। तो जब मेरा अस्तित्व है तो मुझमे ये तीन बातें हैं ही। किसी अवस्थामे उत्पन्न होता हू किसी अवस्थाको विलीन करता हू और फिर भी सदा बना रहता हू। तब यह मैं अपरिणामी भी हूं। द्रव्य दृष्टिसे अतिरिक्त यह कुछ अन्य न बन जायगा। और क्षणिक भी हू पर्यायदृष्टिसे। इसकी जो अवस्था होती हैं वह उस क्षणकी है। उसके बाद फिर दूसरी अवस्था होती है। तो पर्याय-दृष्टिसे क्षणिक है और द्रव्यदृष्टिसे नित्य है। यह स्याद्वादका सिद्धान्त बना है। तब ऐसा समझकर हित चाहने वाला विवेकी पुरुष करता क्या है कि जो क्षणिक चीज है, पर्याय परिणमन है उसकी उपासनामे लाभ नहीं। उसकी तो जानकारी भर हो गई कि यो पर्याय चलती हैं। विनाशीक है उसका ध्यान करनेमे, उसकी उपासना करनेमे यह उपयोग स्थिर न रह सकेगा, क्योकि विषय ही मिट रहा है। वह उपयोग आधार भी कुछ न रहा। और जो क्षणिक है उसकी उपासनामे लाभ नही बताया गया। जो अपरिणामी तत्त्व है, द्रव्यदृष्टिमे जो शाश्वत रहने वाला है। जिसका परिवर्तन न होगा ऐसा जो अन्तरङ्गमें सहज चैतन्यस्वरूप है उसकी उपासना करने लगते हैं। तो अनित्यको, अनेकको, भेदको गौण करके यह विवेकी उपासक बनता है। और इस उपासनाके प्रसादसे संसार संकटोंसे सदाके लिए मुक्त हो जाता है, तो अब तत्त्व तो है द्रव्य पर्यायात्मक भेदाभेदात्मक, एकानेक स्वरूप। उसमेसे भेदका आग्रह करके जो सिद्धान्त बनेगा अथवा अभेदका आग्रह करके जो सिद्धान्त बनेगा उसके उपयोगसे अन्यका न बन सकेगा। तो स्याद्वादकी इतनी कृपा है कि एक बार इस विवेकीको प्रकाशमें लादेता है और प्रकाशमें लाकर खुद भी शात रहते हैंऔर विकल्प भी शान्त होजाते है। जिस जैनशासनके प्रतापसे ये जीव ज्ञान प्रकाश पाते हैं, पदार्थका सत्यज्ञान प्राप्त करते हैं वह जैन शासन सदा जयवन्त रहो। जिसके प्रतापसे ससारी जीवइस ससारके संकटोंसे छूटकर शाश्वत सहज आनन्दका लाभ प्राप्त करते हैं।

इति वन्दितपञ्चगुरुः कृतमङ्गलसत्क्रियः स एव पुनः।
नाम्ना पञ्चाध्यायीं प्रतिजानीते चिकीर्षितं शास्त्रम् ॥ ४ ॥

पञ्चगुरुवन्दनपूर्वक पञ्चाध्यायी ग्रन्थराजके बनानेकी प्रतिज्ञा— अब इस छदमे ग्रन्थकार अपनी प्रतिज्ञा बतायेंगे कि हमको अब क्या रचना करना है ? पचपरमेष्ठियोकी वदना करके और मगलरूप श्रेष्ठ क्रियाको करते हुए यह ग्रन्थकार एक पञ्चाध्यायी नामके ग्रन्थको बनानेकी प्रतिज्ञा करता हू। इसमें सर्व-प्रथम पंच गुरुवोंकी वन्दना की है। अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, ये

पंचगुरु कहलाते हैं। गुरु नाम उनका है जिनके ध्यानसे, जिनकी संगतिसे, जिनकी आज्ञापर चलनेसे हित होता है। अशरीर परमात्मा यदि न होते तो यह सब आगम कहांसे आता ? और जीव कैसे वस्तुका यथार्थस्वरूप जानते। यों अशरीर परमात्मा, जिनका दूसरा नाम अरहन्त है, उनके द्वारा हमारा कितना उपकार हुआ है ? वे हमारे गुरु हैं सिद्ध भगवान। जिनके ध्यानके प्रतापसे ही हमारा हित हो जाता है। यद्यपि वे अशरीर परमात्मा है। शरीर भी न रहा, कर्म और अन्य बातें तो रहेगी कहां ? ऐसे अशरीर भगवान ज्ञानमात्र केवल ज्ञानभाव चैतन्यस्वरूप विशुद्ध उपयोग, उन अशरीर परमात्मतत्त्वके ध्यानके प्रतापसे इस जीवका भला होता ही है। इस जीवका परमार्थसे भला होता ही है। एक निज विशुद्ध चैतन्यस्वभाव की उपासनासे। और उस उपासनामें प्रबल सहयोग देता है सिद्ध प्रभु का ध्यान क्योंकि यहां यह निज तत्त्व भी ज्ञानमय है और वहां शुद्ध स्वरूप भी केवल ज्ञानस्वरूप है। अन्य आकार आदिक शरीरादिक नहीं हैं। अतएव अशरीर परमात्म-तत्त्वके ध्यानके प्रतापसे निज अन्तस्तत्त्वका ध्यान बनता है। अतएव वे मेरे लिए गुरु ही हितकारी हैं। आचार्य परमेष्ठी तो यहां प्रकट ही हितकारी सिद्ध होते हैं, उपदेश देते हैं, आज्ञा देते हैं, मार्ग बताते हैं, गल्तियोंका प्रायश्चित देते हैं, साक्षात् शासन है उनका। अतः आचार्य परमेष्ठी भी गुरु हैं। उपाध्याय परमेष्ठी भी ज्ञान-दान लेकर, ज्ञानलाभ देकर जीवोंका हित करने वाले हैं। वे ज्ञानके भण्डार हैं। उनसे भी जीवोंका हित होता है, अत. वे भी गुरु हैं। साधु परमेष्ठी निर्ग्रन्थ समस्त विकारों से परे रहने वाले केवल आत्मसाधनामें उद्यमी, संसार शरीर भोगोंसे परम विरक्त, जिनकी संगति और दर्शनमात्रसे भाव विशुद्ध हो जाते हैं, और समय-समयपर जिनका उपदेश प्राप्त होता है, जिनसे मार्ग दर्शन मिलता है, वे साधुपरमेष्ठी हमारे गुरु हैं। यों पांच गुरुवोंकी वंदना जिन्होंने की है और जो मंगल श्रेष्ठ क्रिया करने वाले हैं — श्रेष्ठ क्रियाके करतबने ही जीवको लाभ है ऐसा यह ग्रन्थराज नामसे तो पञ्चाध्यायी है, इस शास्त्रके करनेकी इच्छा है उस ही शास्त्रके बनानेकी एक प्रतिज्ञा करते हैं।

अत्रान्तरंगहेतुर्यद्यपि भावः कवेर्विशुद्धितरः।
हेतोस्तथापि हेतुः साध्वी सर्वोपकारिणी बुद्धिः ॥ ५ ॥

ग्रन्थराजनिर्णयका अन्तरङ्ग और विशिष्ट कारण—इस छन्दमें ग्रन्थ बनानेके कारणपर विचार किया है। ग्रन्थनिर्माणके कारण जितने हैं उनमें सर्वप्रथम बात तो यह है कि उतना ज्ञान होना चाहिए, जिसके ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम विशेष न हो, वह अन्य कारण भी मिल जायें लेकिन ग्रंथनिर्माणका कार्य नहीं कर सकता। इस कारण ग्रंथनिर्माणके महान कार्यमें मुख्य बात हेतु तो ज्ञानावरणका क्षयोपशम है और अन्तरङ्ग हेतु क्षायोपशमिक भाव है। ज्ञानावरणके क्षयोपशम होने

से जो योग्यता प्राप्त हुई है, वह योग्यता वास्तविक कारण है । पर उसके साथ ही साथ सबके उपकारकी बुद्धि हो तो वह मुख्य हेतु कहा जाता है । किसीके ज्ञान भी होता है और उपकारिणी बुद्धि नहीं है, किन्तु ज्ञाता दृष्टा रहता है । एक स्वकल्याण वाली ही बात है । तो वहाँ ग्रंथनिर्माणका कार्य नहीं होता, किन्तु वह तो ध्यानमें ही बढ़ता जाता है । तो योग्यता और उपकारकी बुद्धि ये दो साथ हों तो ग्रंथनिर्माणका कार्य बनता है । जैसे कि तीर्थंकर प्रकृतिके बंधका कारण एक दर्शनविशुद्धि भावना है । उस भावनामें बात यह आती है कि सम्यग्दर्शनके होनेपर जो विश्वके उद्धारकी बुद्धिरूप विशुद्धि होती है वह तीर्थंकर प्रकृतिके बंधका कारण है, केवल सम्यग्दर्शन नहीं । सम्यग्दर्शनके भावमें तीर्थंकर प्रकृतिका बंध नहीं होता, इसलिए सम्यक्त्व भूमिका होनी ही चाहिए, पर सम्यक्त्व होनेपर भी जब तक विश्वके उद्धारकी भावना रूप विशुद्धि नहीं जगती तब तक तीर्थंकर प्रकृतिका बंध नहीं है । ऐसे ही ग्रंथनिर्माण के कार्यमें योग्यता तो होनी ही चाहिये । योग्यता बिना, बुद्धि बिना, ज्ञान बिना ग्रन्थ निर्माणका कार्य हो ही नहीं सकता । इस कारण ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होनेसे जो विशेष ज्ञान होता है वह तो इसकी भूमिका ही है, किन्तु इस भूमिकाके होने पर भी सर्वोपकारिणी बुद्धि हो, अन्य प्रकारका अनुराग हो, तो ग्रन्थ निर्माणका कार्य हो सकता है । ऐसे तत्त्वज्ञानके लिए उपकारिणी बुद्धि वहाँ ही सम्भव है वास्तविक ढंगसे जहाँ कि इस आत्माका स्वरूप भले प्रकार निरखा गया हो और अपने आपसे जैसे प्रयोग किया कि यह आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है । एक अपने आपकी दृष्टि किए बिना यह जगतमें रुल रहा है । कैसा यह आनन्दात्मक है और एक अपने आपमें अपनी दृष्टि पाये बिना कैसी विडम्बनायें सह रहा है । अपने विषय में जिसको ऐसा स्पष्ट बोध हुआ और अपने जैसे स्वरूपको निरख करके यह करुणा जगी ऐसे ही जगतमे सर्व जीवोंका स्वरूप निरख करके आत्मोद्धारकी करुणा जगती है । यह विश्व यह आत्मा कैसा तो विशुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप है, जिसमे सर्व मंगल ही मंगल है, कल्याण स्वयं है, स्वयं शिवस्वरूप है । किन्तु अपने आपके स्वरूपकी ऐसी दृष्टि हुए बिना यह जगतमे रुल रहा है । इसको दृष्टि प्राप्त हो, यह तत्त्वज्ञान मिले जिस ज्ञानके उपयोगमे आनेपर संसारके सर्व संकट छूट जाते हैं । जिन आचार्यों को जिन संतोको इस प्रकार आत्मस्वरूपका स्पष्ट परिचय है वे ही विश्वके उद्धारकी भावना करते हैं और इस सर्वोपकारिणी बुद्धिके प्रसगमें ग्रन्थनिर्माणका पुरुषार्थ करते हैं । ग्रन्थनिर्माणमें ज्ञानी संतजनोका एक स्वयका भी ध्येय रहता है कि उपयोग हमारा निर्मल रहे, ज्ञानके सम्बन्धमें ही उपयोग बना रहे तो इसमे मेरी भी भलाई है । अथवा जिसको हेय उपादेयका उपयोग जगा, ससार शरीर और भोगोंमे जिनका मन अब नहीं रमता ऐसे ज्ञानी सतोके राग रहनेके समयमें सर्वोपकारक यत्न ही होगे । उन्हीं यत्नोंमे यह एक ग्रन्थनिर्माणका यत्न है । तो इसमे वाह्य आश्रयकी अपेक्षासे अनेक कारण हो सकते हैं । फिर भी यहाँ अन्तरङ्ग कारणोंमे दो कारण

बताये हैं—एक तो भूमिकारूप कारण और दूसरा प्रेरणारूप कारण। भूमिकारूप कारण तो विशुद्ध भाव है और क्षायोपशमिक भाव ज्ञानकी लब्धि ज्ञान विकाश और प्रेरणात्मक कारण है सर्वोपकारिणी बुद्धि। यह समस्त जगत जो कि ज्ञानानन्दस्वरूप है, यह अपने आपके स्वरूपको देख ले तो इसका उद्धार स्वतः हो जायगा। इस बुद्धिसे प्रेरित हो करके हितकारी तत्त्वोसे परिपूर्ण इस ग्रन्थका निर्माण किया जा रहा है।

सर्वोऽपि जीवलोकः श्रोतु कामो वृषं हि सुगमोक्त्या।
विज्ञप्तौ तस्यै कृते तत्रायमुपक्रमः श्रेयान् ॥६॥

सुगमतासे धर्म सुननेके इच्छुकोंके प्रति ग्रन्थनिर्माणका उपक्रम—यह समस्त जनसमूह धर्मको सुनना चाहता है और उसे सुनना चाहता है सुगमरीतिसे। बस जब यह बात समझी गई तो इस जनसमूहके उपकारके लिए ही यह उपक्रम किया जा रहा है और यह उपक्रम उनके लिये श्रेष्ठ सिद्ध होगा। इस जगतमे एकेन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय तकके जीव असंज्ञी कहलाते हैं। उनमे तो धर्म सुननेकी इच्छा ही नही जग सकती। जहाँ मन होता है वहाँ हेय और उपादेयका विवेक जगता है। जिस विवेकसे प्रेरित होकर इस जीवको धर्म सुननेका चाव होता है। सो चतुरिन्द्रिय जीव तक मन न होनेसे उनमे धर्मके प्रसंगकी बात ही नही होती। पञ्चेन्द्रियमें कुछ जीव संज्ञी होते और कुछ असंज्ञी होते हैं। उनमे असंज्ञी जीव बहुत कम होते हैं। पञ्चेन्द्रिय जीवोमे सज्ञी जीवोकी संख्या विशेष है। मन होनेके कारण हेय बुद्धिका विवेक कर सकते हैं। इन पञ्चेन्द्रियमे मनुष्योकी धर्म प्रसगमे प्रधानता है। मनुष्य उसे कहते हैं जिसके श्रेष्ठ मन हो। मनुष्य उसे कहते हैं जिसके श्रेष्ठ मन हो। मनुष्य सयमी हो सकता। मनुष्यभवसे मुक्ति प्राप्त होती। मनुष्यभवसे युक्ति प्राप्त होती। मनुष्यभवमे जो ज्ञान जो संयम विशेषतया होता है वह अन्य गतियोमे नही पाया जाता। क्षायक सम्यक्त्वको भी, सम्यक्त्व ही उत्पन्न करता है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रियमे मनुष्योकी विशेषता है। यह मनुष्य, यह जनसमूह किसी प्रकार अपने आपपर करुणा पानेका भाव बनाकर अब धर्म सुननेकी चाहमे आया है। सुनना चाहता है धर्म किन्तु सस्कार चूंकि अनादिसे रागद्वेषादिकके चल रहे थे और उस राग संस्कार से इसको बाह्य चीजें सुगमसी लग रही हैं। उस सुगमकी मौजमे रहनेके कारण यहा भी अभी ऐसी ही भूमिका है कि अगर सरल पद्धतिसे धर्म मिले तो सुनना चाहते है। अभी इतनी तीव्र बुद्धि और तीव्र रुचि नही जगी कि जिससे यह साहस बना सकें कि चाहे कितनी ही कठिन पद्धतियोसे धर्म जाननेको मिले उसे मै सुनूंगा, जानूंगा। अभी यह सुगम रीतिसे ही समझना चाहता है। इस ग्रन्थमे इस समस्त जीवलोकके उपकारके लिए ऐसा ही उपक्रम किया जायगा कि सुगम रीतिसे धर्मको समझ सके।

धर्मकी सुगमताका परिचय—धर्म क्या चीज है ? सो भी आत्मामें ही स्थित है। धर्म जिस तरहसे पालन किया जायगा वह विधि भी आत्माकी स्थिति है। अतएव धर्मका पालन धर्मकी दृष्टि, धर्मका सम्बन्ध कठिन नहीं है। यह अन्य समागमोंसे, अन्य कार्योंसे सुगम है। बल्कि परपदार्थोंमें कुछ परिणमन कर देनेकी बात कठिन क्या, असम्भव है। कोई जीव किसी भी परमें कोई परिणमन नहीं कर सकता। हाँ उसका विकल्प कर सकता है। सो ये विकल्प भी इस जीवके साथ नहीं हैं अतएव कष्टदायक हैं। कठिन हो रहे हैं। और अपने आपके स्वरूपका ज्ञान हो और स्वरूपमें ही रुचि रमण हो, यह काम सुगम है। अब कुछ इस समय जीवोंको परपदार्थोंकी बात तो सुगम लग रही है और अपने आपके धर्मकी बात कठिन लग रही है। थोड़े समयकी बात है, जब ज्ञान विशेष प्रकट हो जाता है तो इस जीवको धर्मकी बात सुगम लग जाती है। उसी धर्मके स्वरूपको इस ग्रन्थमें सरल पद्धतिसे बताया जायगा। धर्म क्या चीज है व धर्मका धारण करने वाला कौन होता है ? सो धर्म और धर्मी दोनोंके सम्बन्धमें इस ग्रन्थमें बहुत विस्तारसे वर्णन किया जायगा। धर्म कहते हैं स्वभावको। जिस वस्तुमें जो स्वभाव पाया जाता है वह उसका धर्म कहलाता है। अब स्वभाव तो वस्तुमें जो है सो ही है और वह एक स्वभाव है। पर उसे इस रूपसे परिचय नहीं किया जा सकता है इस कारण भेद करके उसके अनेक शक्ति अनेक स्वभाव समझाये गए हैं। वह कहलाया धर्म। और, वे सब धर्म जिस पदार्थमे रहते हैं उसे सत्य धर्म कहते हैं। शान्तिके प्रकरणमे जो धर्म पालनकी बात कही जाती है उसका अर्थ इतना है कि आत्माके स्वभावकी दृष्टि करना और उस स्वभावकी दृष्टिमें ही लगे रहना। यही धर्म पालन है। तो इस धर्मपालनके लिए वस्तुके स्वरूपका निश्चित ज्ञान होना चाहिए अन्यथा इस स्वभावपर दृष्टि कैसे जा सकेगी ? अज्ञान अधकारमे यह दृष्टि नही बनती। शुद्ध ज्ञानप्रकाश हो वहाँ ही इस अन्तरतत्त्वकी दृष्टि बन सकती है। तो उस शुद्ध अन्तः प्रकाशके लिये आवश्यक है कि वस्तुका स्वरूप विशेषरूपसे समझा जाय और उस स्वरूपकी श्रद्धासे जो सम्यग्दृष्टि जीव पदार्थ हैं, जो कल्याणमे प्रवृत्त हो रहे हैं उनकी प्रवृत्ति, उनका चर्याभाव भी भली प्रकारसे समझ लीजिए। यों धर्म और धर्मीका सुगम वर्णन इस ग्रन्थमे किया जा रहा है।

सति धर्मिणि धर्माणां मीमांसा स्यादनन्यथा न्यायात् ।
साध्यं वस्त्वविशिष्टं धर्मविशिष्टं ततः परं चापि ॥ ७ ॥

धर्मीके होनेपर धर्मोंकी मीमांसा होनेके कारण धर्मीके स्वरूपका उपक्रम इस ग्रथमे धर्मका सुगमरीतिसे वर्णन किया जाता है। धर्मकी मीमासा तभी सम्भव होती है जब कि कोई धर्मी हो। तो इस कारण सबसे पहले धर्मीकी सिद्धि करनी

चाहिए। जिसमे धर्म बताया जाना है उस पदार्थकी सिद्धि होनेपर ही धर्मीकी सिद्धि की जा सकती है। मूल प्रयोजन तो आत्माका यथार्थ परिज्ञान करना है। अब आत्मा के परिज्ञानके लिये कुछ उस दृष्टिसे भी परखना होगा जिस दृष्टिमे सभी पदार्थोंका वर्णन होता हो। प्रथम यह जाने कि आत्मा है, पदार्थ है तो पदार्थपना समझना समझनेके लिए ऐसे सामान्यरूपको निरखना होगा जिसमे कि पदार्थपनेके नातेसे आत्मा का ज्ञान होनेपर ऐसा ज्ञान जो कि सभी पदार्थोंमे वह स्वरूप पहुचे। अनेक धर्मोंके समूहका नाम ही तो धर्मी है। धर्म कहो, गुण कहो, दोनोका अर्थ एक है। वैसे धर्म और गुणमें थोडा अन्तर है। गुण तो होता है सद्भावरूप और धर्म होता है सद्भाव रूप और अभावरूप। जिस वस्तुमे मूर्तत्व, चैतन्यत्व आदिक गुण है ये सब सद्भावरूप है। एक वस्तुमें अन्य समस्त वस्तुओका अभाव है, ऐसा अभावरूप धर्म भी है लेकिन इस अभावका विधि नही है। विधि वस्तुके सद्भाव रूप ही है जो कि स्वयं गुणात्मक है। तो अभावकी पहिचान जीवमुखेन होती है, किंतु भेदकी पहिचान विधिमुखेन होती है। इस कारणमे धर्म और गुणमे अन्तर है लेकिन जहाँ धर्मीका परिचय किया जा रहा है वहाँ धर्म और गुणका अर्थ एक है। पदार्थ अखण्ड और अवक्तव्य है। जब उस पदार्थमे उसकी किसी शक्तिका निरूपण होता है तो उस विवेचनके समय जो विवेचनमे आया ऐसा गुण धर्म कहलाता है, बाकी अनन्त गुणोका समुदाय धर्मी द्रव्य कहलाता है। देखिये! धर्मी शब्दसे न कहकर पदार्थ सत् शब्दसे कहा जाय तो वह एक अखण्ड पदार्थ ज्ञानमे आता है, किंतु धर्मी शब्दसे कहनेपर कोई न कोई धर्म मुख्य होगा इस दृष्टिके आशयमे, तो वह धर्म तो धर्म हुआ और जिस पिंडमे हम धर्मको सिद्ध कर रहे हैं वह पिण्ड शेष अनन्त गुणोका समुदायरूप हुआ। यद्यपि समुदाय है वह सभीका जो विवेचनीय गुण है और जो शेष गुण है, सभीका पिण्डधर्मी होता है लेकिन जब विवेचन किया जा रहा है किसी धर्मीका तो वह तो बनेगा आधेय और धर्मी बनेगा आधार। तो जो आधेय है वह आधारमे इस समय रही निरखा जा रहा। अतएव शेष धर्मोंका समुदाय धर्मी है और जाननेके लिए निर्णयके लिए समस्त गुणोका समुदाय धर्मी है। तो जैसे एक विवेचनीय गुण धर्म कहलाता है ऐसे ही शेष समस्त गुण भी धर्म हैं। जब जब भी जिस किसी भी गुणका विवेचन किया जायगा वह दृष्टिमें धर्म है और बाकी धर्मोंका पिण्ड पदार्थ धर्मी है। तो धर्मकी मीमासा तभी सम्भव है जब कि धर्मीका बोध हो जाय। जैसे अङ्गोंका परिज्ञान तब ही सम्भव है जब एक शरीरका बोध है। हाथका ज्ञान क्या अलगसे इतना ही मात्र कोई कर लेता है? शरीरका परिज्ञान है। उसमेसे हाथ एक अङ्ग है। जब कि ज्ञान होता है। तो इसी प्रकार धर्मी है एक पिण्ड अवयवी और धर्म है अवयव अङ्ग। तो धर्मीका ज्ञान होने पर धर्मका ज्ञान होगा। इस न्यायमे सर्वप्रथम विवेचनीय धर्मी होता है। माने पदार्थ कुछ चीज, वस्तु। उसका स्वरूप क्या है, यह सर्वप्रथम जान लेना चाहिए। वस्तुका स्वरूप ही अब बता रहे हैं।

तत्त्वं सल्लाक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्धम् ।
तस्मादनादिनिधनं स्वसहायं निर्विकल्पश्च ॥८॥

वस्तुकी सत्स्वरूपता, स्वतःसिद्धता एवं अनाद्यनन्तता—तत्त्व सत् लक्षण वाला है, अर्थात् जिसका लक्षण सत् है उसे वस्तु कहते हैं। वस्तु सत् होना है, यह उसका भाव हुआ। पर इन शब्दोंमें कहा गया यह भाव कि वस्तु सत् लक्षण वाला है, इस कथनमें भेद पद्धति अपनाई है। जिसका लक्षण सत् है वह वस्तु है। लेकिन इतना भी भेद है कहाँ ? और इस भेदके साथ बतानेपर पूर्ण ढंगसे अभी परिचय नहीं हो पाया। तब उनमें कहकर स्वरूप कहते हैं कि वस्तु सन्मात्र है, सत्त्व मात्र है, सत्स्वरूप है, उसका लक्षण सत् है। वह सत् कोई भिन्न चीज है ऐसा नहीं है। वस्तु ही सत् स्वरूप है। जब वस्तुस्वरूप है तो यह बात भी निर्णीत होती है कि वह स्वतः सिद्ध है। वस्तुको किसने बनाया, कैसे बनाया, कहाँ बनाया ? और कुछ नहीं था तो बिना उपादानके कैसे बन गया ? आदिक बातें जब विचारमें लेते हैं तो यह निर्णय होता है कि वस्तु स्वतः सिद्ध है। जो सत् है वह स्वतः सत् है। कल्पना करो किसी वस्तुके बारेमें कि यह न था अब हुआ। तो क्या हुआ ? यह बात सिद्ध नहीं होती। जो सत् है वह स्वतः सिद्ध है जो बात स्वतः सिद्ध होती है वह है पदार्थ। वह अनादि अनन्त है। न उसकी आदि है कि पहिले असत् था अब सत् हुआ। और, न उसका अन्त है कि सत् था अब उसकी समाप्ति हो गई। अब कुछ न रहा। ऐसा नही होता। अतएव वस्तु अनादि अनन्त है। जब अनादि अनन्त है तो प्रत्येक पदार्थ स्वसहाय है। अपना ही सहाय है। उसके सत्त्वके लिए किसी परका आश्रय नहीं है। वस्तुका रहना, वस्तुका उत्पाद होना अर्थात् नवीन अवस्थामें परिणत होना, पुरानी अवस्थाका विलय होना, ये सब बातें भी स्वसहाय हैं।

निमित्तनैमित्तिकभावमें भी वस्तुकी स्वसहायता एवं अखण्डता—देखिये—भले ही अनेक प्रसंगोंमें अन्य पदार्थका निमित्त पाकर परिणमन हो रहे हैं, पर निमित्त पावे, निमित्त उपस्थित होनेपर वह परिणमने वाला पदार्थ अपनी योग्यता से अपने आश्रय अपने ही सहायमें परिणमा है। उस परिणमन अवस्थाके लिये अन्य का संसर्ग नहीं हुआ। जैसे कोई पुरुष तबला बजा रहा है तो यहाँ हाथ और तबले का कपड़ा या चमड़ा दो बातें ही तो नहीं दिखती है। हाथका तो निमित्त हुआ और तबलेका कपड़ा या चमड़ा शब्दरूपसे परिणत हुआ तो भले ही हाथकी ठोकर उसमें निमित्त हुई, किसी ठोकर बिना उस प्रकारकी आवाज नहीं आयी। पर निमित्त होनेपर भी जब भी वह चाम या वस्त्र शब्द रूपसे परिणत हुआ तो उस शब्द परिणमनके लिये हाथ मिल नही गया। सहाय नही हुआ कोई अन्य, निमित्त होनेपर भी उपादान अपने सहायमें ही परिणमता है, अन्यका सहाय नही लेता। यह जब एक

विभाव परिणमनमे देखा जा रहा है तो स्वभाव परिणमनमें तो संदेह ही कुछ नही है। यो प्रत्येक पदार्थ अपने सहायपर हैं। अपने ही सहायपर सदा रहता है। अर्थात् नवीन अवस्थामें परिणत होता है। और अपने ही सहायपर अपनी उस अवस्थाका व्यय करता है। इस प्रकार पदार्थका स्वरूप हुआ, कुछ वचनमे आया, लेकिन वस्तुतः वह वचनके अगोचर है। क्योंकि वह स्वयं अपने आपमे अखण्ड है। अखण्ड पदार्थ जो कि ज्ञानमे तो आ जाय, पर वचनमें नही आ सकता। ऐसी बहुत सी घटनायें होती हैं जो ज्ञानमे तो आ जायें पर वचनमें नही आती। तो इसी तरह यह तत्त्व भी जो स्वयं स्वतः सिद्ध है, सन्मात्र है वह ज्ञानमें आया हुआ निर्विकल्प रूपसे प्रतिभासमें आता है। वचनोंसे उसके परमार्थ स्वरूपको हम किस तरह जान सकेंगे, यह स्वरूप इस गाथामे कहा गया है।

इत्थं नो चेदसतः प्रादुर्भूतिर्निरंकुशाः भवति।
परतः प्रादुर्भावो युतसिद्धत्वं सतो विनाशो वा ॥ ६ ॥

तत्त्वकी सत्त्वरूपता न माननेपर असत्‌की उत्पत्तिका प्रसङ्ग—तत्त्वका स्वरूप कहा गया है कि वह सत्ता लक्षण वाला है अथवा सन्मात्र है और उस लक्षणकी पुष्टिमे और भी विशेषतामे कहा कि वह स्वतः सिद्ध है, अनादि निधन है, अपने ही सहाय है और निर्विकल्प है। अब इस लक्षणकी पुष्टिमें व्यतिरेक मुखसे कह रहे हैं कि यदि ऐसा लक्षण न माना जाय, वस्तुको सत् स्वरूप न माना जाय, स्वतः सिद्ध आदिक न माना जाय तो असत्‌की उत्पत्ति फिर बिना अकुशके होने लगेगी अर्थात् उसको कोई रोक न सकेगा और स्वच्छन्द होने लगेगी। जब वस्तु स्वतः सिद्ध माना जाता है तब तो असत्‌की उत्पत्ति नहीं प्रसक्त होती है क्योंकि वस्तु स्वतः सिद्ध है। और जब स्वतः सिद्ध न माना जाय, वस्तु अपने आप स्वयं सिद्ध नही है तो इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तु स्वतः होती ही नही, उसकी उत्पत्ति परसे होगी। यहाँ उपादानरूप तत्त्वकी बात कह रहे हैं कि कोई भी पदार्थ जब स्वतः नही है तो इसका अर्थ है कि उसकी परसे उत्पत्ति होती है। असत्‌की उत्पत्ति हुई, और यो ही वस्तुकी परसे उत्पत्ति होने लगेगी। क्योंकि अब स्वतः सिद्ध रहा नहीं, अनादिनिधन रहा नही, तो इसका अर्थ है कि कोई पर पदार्थ किसीको उत्पन्न कर देता है। यद्यपि निमित्त दृष्टिसे यह व्यवस्था बनी हुई है कि विकाररूप परिणमा करता है वह किसी अन्यका निमित्त पाकर करता है। अथवा विकाररूप परिणमनकी योग्यता रखने वाले उपादानमें ही ऐसी कला है कि वह अनुकूल निमित्त पाकर स्वयं स्वतः अपने ही सहाय पर विकाररूप परिणमने लगेगा। किन्तु इस स्थितिमे उपादानकी स्वतः सत्ता है और वह जो उत्पादव्ययरूप परिणमन रहा है सो अपने सहाय ही परिणमन रहा है। वह किसीकी अपेक्षा नही रख रहा है। निमित्त पाकर विभावरूप परिणमता है लेकिन

यहाँ भी परिणमनमें निमित्तकी अपेक्षा नहीं, किन्तु योग ऐसा है कि परका निमित्त पाकर उपादान विकाररूप परिणमता है। परिणमन जो किया है, उस परिणतिमें पदार्थ स्वतन्त्र है तो यह परिणमन निमित्त और उपादान दोनों मिलकर नहीं हुआ है। यह केवल उपादानसे ही परिणमन है। तो वस्तु स्वतः सिद्ध है और स्वसहाय है, ऐसा न माननेपर बन जायगा परतः सिद्ध और असत्की उत्पत्ति।

वस्तुको स्वयं सत्स्वरूप न माननेपर युतसिद्धत्व और सद्विनाशका प्रसङ्ग— तीसरा दोष इसमें यह है कि वस्तु अखण्ड न रहेगा। जब यह स्वके सहाय न रहा, परके सहाय रहा तो जहाँ दो पदार्थ मिलकर कोई एक रूप रखता है। वस्तुतः दो पदार्थ मिलकर एक रूप कभी नहीं रखते, लेकिन लोकव्यवहार अथवा स्थूल दृष्टिसे ऐसा मान लो जैसे कि दो नदियाँ मिलकर एक जगह बह रही हैं। पहिले वे अलग अलग नदी थी, अब इकट्ठी मिलकर एक जगह बहने लगी तो वहाँ लेकिन वहाँ अखण्डता नहीं रहती। वहाँपर भी उन नदियोंका जल पृथक्-पृथक् है। यों ही अगर वस्तु स्वसहाय नहीं है, वस्तुका परिणमन परका सहाय लेकर होता है। तो वहाँ अखण्डता नहीं रह सकती है। वस्तु है निर्विकल्प, उसमें कोई खण्ड नहीं है। एक सत् है और प्रतिसमय उसका एक परिणमन चलता। है तो वस्तु स्वतः सिद्ध अनादि निधन स्वसहाय एवं निर्विकल्प है, इसी कारण वह सन्मात्र है। ऐसा न माननेपर तो फिर एक यह भी दोष आयगा कि सत् पदार्थका विनाश हो जायगा, क्योंकि वह स्वयं अपने सहायसे तो है नहीं, अपने पुष्ट सत्त्वको रख रहा नहीं। तो वह कभी मूलतः नष्ट भी हो जायगा लेकिन ये चार दोष कि असत्की उत्पत्ति, परसे उत्पन्न वस्तुमें खण्डपना होना, पृथक् सिद्ध हो जाना और सत्का भी नाश हो जाना ये चार दोष, वस्तुमें हैं नहीं लेकिन वस्तुका स्वरूप सन्मात्र स्वतः सिद्ध स्वसहाय न माननेपर ये चारों दोष आने लगेंगे। अब तो उन चारों दोषोंपर क्रमशः विचार करते हैं।

असतः प्रादुर्भावे द्रव्याणामिह भवेदनन्तत्त्वम्।
को वारयितुं शक्तः कुम्भोत्पत्तिं मृदाद्यभावेऽपि ॥ १० ॥

असत्की उत्पत्ति माननेपर द्रव्योंके परिमाणके अभावका व उत्पत्तिकी अव्यवस्थाका—प्रसङ्ग—असत् पदार्थकी उत्पत्ति माननेपर यह दोष आता है कि द्रव्योंमे अनन्तता हो जायगी। याने जो वस्तु पहिले किसी रूपमें भी न थी उसके परमाणुवोंकी सत्ता ही नहीं है। ऐसे असत्की उत्पत्ति माननेसे वस्तुमें मर्यादा नहीं रह सकती कि ये कितनी वस्तुयें हैं। जब अपने सत्ताके बिना ही नवीनरूपसे उत्पत्ति माने जाने लगी तो संसारमें अनन्त द्रव्य होते जायेंगे। कितने नये बनेंगे द्रव्य और कौनसे झटपट बन जायेंगे। इससे कोई मर्यादा न रह पायेगी। फिर तो मिट्टी

आदिक न भी हो तो भी घड़ेकी उत्पत्ति हो जाय। जब असत्‌की उत्पत्ति मानी जाने लगी। कुछ भी नहीं और हो गया। क्या हो गया? उसकी भी कोई मर्यादा न रहेगी कि वहाँ यह ही होगा और कुछ न होगा। और फिर जो चाहे वह हो जाय। कारण कूट मिलानेकी भी जरूरत क्या? मिलावे भी तो उससे उठेगा क्या? कहो कुम्हार मिट्टीसे कुछ बनाना चाहता है और बन बैठे कपड़ा, गधा आदिक कुछ भी न हो, शून्य है। कैसी भी जो चाहे चीज बनने लगेगी। उसका कोई निवारण न कर सकेगा। तो असत्‌की उत्पत्ति माननेमे यह दोष रहा, क्योंकि कार्य कारण भाव तो रहते नहीं। जब उपादानभूत कोई पदार्थ हो तब तो कार्यकारण भावकी व्यवस्था बने। मिट्टी मे सम्भव होने वाले कार्य ही हो सकेंगे। यह बात तभी तो बनेगी जब उन सब कार्यो का आधारभूत मिट्टी उपादान माना गया। अब जहाँ उपादान कुछ है ही नही, वहाँ कार्य कारणभाव जब कही नही रहता तो कोई भी वस्तु कही भी किसी भी तरह उत्पन्न हो ले, उसमें कोई बाधा नही है, कार्य कारणभाव माननेमे यह दोष नही आता क्योंकि वहाँ यह व्यवस्था रहेगी कि कार्य अपने कारणसे ही होता है। तो जहाँ असत् की उत्पत्ति स्वीकार करली जाय वहाँ कोई नियम नही ठहर सकता। तब वस्तु अट-पट और अनन्त जो चाहे पैदा होते रहेंगे, फिर तो कुछ लोक व्यवहार ही न बन सकेगा। मानव जीवन भी न चल सकेगा। भोजन कैसे बने? नियम तो कुछ है ही नहीं कि आटेसे अथवा अन्यसे भोजन ही बनता है। उससे शेर हाथी वगैरह न बनने लगेंगे अथवा इस ही पदार्थसे भोजन बनता है, ऐसी जब व्यवस्था न रही उपादानके न माननेसे तब फिर कोई करेगा क्या? जगतमे अव्यवस्था बनेगी। कुछ सिद्ध ही नहीं हो सकता। पर ऐसा तो नही है। सब कुछ नियमित दिख रहा है तभी तो लोग जैसा पदार्थ चाहते हैं उस उपादानसे उस पदार्थके परिणमनकी आशा रखते है। तो असत् की उत्पत्ति माननेसे सारी अव्यवस्था और द्रव्योंकी अनन्तता अविश्वास कही भी कुछ भी उत्पन्न होने लगें, यो प्रसग आयगा और तब न लोक व्यवहार रहेगा न जीवन ही रहेगा। कुछ बात ही न होगी। अतः असत्‌की उत्पत्ति नही मानी जा सकती। अब परसे सिद्ध माननेमे क्या दोष है? उसे बताते हैं।

परतः सिद्धत्वे स्यादनवस्थालक्षणो महान् दोषः।
सोपि परः परतः स्यादन्यस्मादिति यतश्च सोपि परः ॥११॥

वस्तुको परतः सिद्ध माननेपर अनवस्था दोषका प्रसङ्ग—वस्तुको पर से सिद्ध माननेपर अनवस्था नामका महान दोष आता है। किस तरह कि देखिये! वस्तु जब परसे सिद्ध हो गयी तो जिस परसे निष्पन्न हुई है वह पर भी तो किसी पर-पदार्थसे निष्पन्न होना चाहिए। वह द्वितीय पर भी किसी तृतीय परसे निष्पन्न होना चाहिए। तो परसे निष्पत्तिकी कल्पना करनेपर नवीन नवीन परकी परसे उत्पत्ति

मानते रहनेमें ही बुद्धि थक जायगी। और जो अप्रमाणिक तत्त्वकी कल्पना है उसका विश्राम न हो पायगा। यो अनवस्था दोष आता है। वस्तु परसे सिद्ध है यह जो अभी प्रसगमे मूल बात मान ली है यही गलत है यह अप्रमाणिक बात है तभी तो इसमें यह दोष आया कि उस परकी निष्पत्तिके लिये अन्य पर भी देखना होगा। इस तरह अनन्त परकी कल्पना करते जावो तो अभी उसकी व्यवस्था ही नही बन पायी। निष्पत्तिकी कल्पना करनेमें परको ढूंढना पड़ेगा और ऐसी कल्पनाका कहीं विश्राम भी न होगा। जहां विश्राम करेंगे, जिस संख्याके पदपर रखेंगे वहां ही यह प्रश्न खड़ा होगा इसकी किस परसे उत्पत्ति हुई है ? तो कहीं अप्रामाणिक परसे निष्पत्ति की कल्पनाका विश्राम न हो पायगा। यो अनवस्था दोष आता है। इस कारण वस्तु को परत. सिद्ध न मानकर स्वतः सिद्ध मानना ही श्रेयस्कर है अन्यथा स्वरूप नहीं बन सकता। कुछ विवेक पूर्वक विचार करें तो यहीं दिखने वाले पदार्थोंमें यह व्यवस्था जानी जा सकती है कि उसका वजूद सत्त्व स्वत. सिद्ध है या परतः सिद्ध है ? भले ही किसी निमित्तसे कहीं कोई परिणमन बन गया इतनेपर भी जो परिणमा है वह तो स्वत सिद्ध ही है। उसकी सत्ता परसे हुई है। वह स्वयं सत् सत् है, इसके विरुद्ध कोई कल्पना ही नहीं जग सकती। सत् कैसे उत्पन्न हो जायगा ? जब असत् की उत्पत्ति ही नही सम्भव है तो उसे परसे उत्पन्न हुए मानना यह बात बन ही नहीं सकती। कोई पर किसीको यही क्यो बना दे और वह पर भी आया कहांसे ? परसे उत्पन्न माननेमें अनवस्था और व्यवस्थाका भङ्ग होता है। अतः वस्तु परत सिद्ध नहीं है, किन्तु स्वत. सिद्ध ही है। अब वस्तुका जो लक्षण कहा गया था उसको न मानने मे चार दोषोका प्रसग बताया था। उसमे तृतीय दोषके सम्बन्धमे कहते हैं कि यदि पदार्थको युत सिद्ध मान लेते हैं, पृथक सिद्ध मान लेते हैं तो क्या दोष आता है ?

युतसिद्धत्वेप्येवं गुणगुणिनोः स्यात्पृथक्प्रदेशत्वम् ।
उभयोरात्मसमत्वाल्लक्षणभेदः कथं तयोर्भवति ॥ १२ ॥

गुणगुणीको युतसिद्ध माननेपर दोनोंकी स्वतन्त्रतामे समता होनेसे गुणगुणीके लक्षणभेदकी अनुपपत्ति—युतसिद्ध माननेपर यह स्थिति बनानी पडेगी कि गुणके प्रदेश भिन्न हैं और गुणीके प्रदेश भिन्न हैं। वस्तु एक अखण्ड है, उसमें गुणकी कल्पना की गई है और यह कल्पना अटपट नही है किन्तु अर्थसम्मत है। जिस प्रकारकी कल्पनासे हम वस्तुके सही मर्मपर पहुँचनेका यत्न करते हैं वह कल्पना सभी आचार्योंकी एक समान है। और इस ही प्रकारकी धारा दिव्यध्वनिकी परम्परासे चली आई है। अत. यह मनचाही कल्पना नही है, नियत अर्थ सम्मत है। लेकिन वस्तुको स्वत. सिद्ध अनादिनिधन स्वसहाय निर्विकल्प न माननेपर ऐसी कल्पना जगेगी कि यह गुण है यह गुणी है, पृथक सिद्ध है, इसका मेल किया जाता है तब वस्तु

बनती है। तो इस कल्पनाका निष्कर्ष यह होगा कि गुणके प्रदेश अलग हो गए और गुणीके प्रदेश अलग कहलाये। जब गुण गुणी दोनो पृथक हो गए, प्रदेश भी पृथक, आधार भी पृथक तो दोनोकी समता हो गई। जैसे गुण सत् है ऐसे ही गुणी सत् है। जब दोनो एक समान हो गए फिर उनमे यह भेद करना कि यह अमुक गुण है, अमुक गुणी है, ऐसा गुण और गुणीका भिन्न-भिन्न लक्षण न बन सकेगा यह गुण गुणी रूपसे लक्षित न हो सकेगा। बात तो यह है कि अनन्त गुणो का अखण्ड पिण्ड स्वरूप वस्तु होता है। वस्तु है, उसको समझानेके लिए पर्याय दृष्टि करके शक्ति भेद किया गया है। तो वस्तु तो परमार्थत. अभिन्न अखण्ड है। अब विवक्षावश उसमे गुण गुणीका लक्षण भेद किया गया है। तो यह बात वस्तुको अखण्ड माननेपर बन सकती है लेकिन अब वस्तुको खण्डित कर दिया, गुण अलग है। गुणी अलग है। गुण सत् है, गुणी सत् है। गुणके प्रदेश अब अलग हो गए जब कि गुणको पूर्ण सत् मान लिया गया। जो भी सत् होता है वह प्रदेशवान होता है। तो गुण गुणी पृथक सिद्ध सत् हो गए तो ये दोनो प्रदेशवान भी हुए। अब प्रदेश हो जानेसे दोनो ही स्वतन्त्र बन गए। जब स्वतन्त्र बन गए तो उनमे यह कहना कि ज्ञान गुण है आत्मा गुणी है, यह व्यवस्था न बन सकेगी। क्यो न उल्टी बात बन जाय कि आत्मा गुण है और ज्ञान गुणी है। जब ज्ञानके भी प्रदेश निराले और आत्माके के प्रदेश निराले, तो दोनो समान हो गए। जैसे जीव पुद्गल, धर्म अधर्म या अनन्त जीवोमे परस्परके सभी जीव सभी अणु ये सब भिन्न सिद्ध हैं, अपने अपने प्रदेशमे रहते हैं तो वे सब समान है। उनमे यह व्यवस्था तो नही बन सकती कि यह जीव जीव गुण है और यह जीव गुणी है। यह परमाणु गुण है और यह परमाणु गुणी है। जब वे प्रदेश हैं सत् हैं तो उनमे गुण गुणीका लक्षण नहीं बन सकता। तो युत सिद्ध माननेपर वे स्वतंत्र बन जायेंगे गुण और गुणी। और उनमे गुण गुणीकी कल्पना भी नही की जा सकती है।

भेदैकान्तमें दोषप्रवाह भेदके एकान्तका ही परिणाम है यह कि जो मीमासक सिद्धान्तमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये ७ पदार्थ माने जाने लगे। ये ७ कहाँ हैं ? पदार्थ तो एक है। किसी भी एक पदार्थको उदाहरणमे लेकर सोचो! पदार्थ तो अनन्त होता है, पर वह द्रव्य, गुण, कर्मादिक रूपसे अनन्त नही है। किंतु जो द्रव्य हैं वे अब अनन्त हैं, अनन्त जीव हैं, अनन्त परमाणु है। यो तो अनन्त द्रव्य हैं, अनन्त पदार्थ है, पर उन अनन्त पदार्थोंको तो एक द्रव्य शब्दसे ही कह दिया। अब इसके अलावा गुण कर्म आदिकके और पदार्थ माननेमे कल्पना की जाने लगी, सो ऐसा नही है। गुण कर्म सामान्य विशेष ये चार बातें पदार्थकी ही विशेषताओंकी हैं। समवाय कोई चीज होती नही। गुण कर्म सामान्य विशेष पदार्थमे स्वयंवच्छावश विदित होते है। ये पदार्थमे ही तादात्म्यरूपसे हैं। तो

तादात्म्यका ही नाम समवाय है समवाय नामक कोई अलग पदार्थ नहीं है। यो ही प्रत्येक वस्तुमे अन्य समस्त वस्तुओका नास्तित्व है। वह अभाव कोई स्वतत्र नहीं, किंतु वस्तु ही स्वयं इस प्रकार है कि उसमे कोई पर पदार्थ नहीं है। तो अभाव भी पृथक पदार्थ नहीं। पदार्थ है कोई एक और उसको भेदद्दृष्टिसे समझनेके लिए गुणकी व्यवस्था बनाई और द्रव्य चूंकि निरन्तर परिणमते रहते हैं। यह हुआ कर्म और वस्तु अनुवृत्ति ज्ञानका आधार है सो हुआ सामान्य और उसमें व्यावृत्ति यह भी नहीं है ऐसा व्यतिरेकका ज्ञान होता है सो यह हुआ विशेष। यो पदार्थ अखण्ड है। विवक्षासे उसमें गुणका कथन किया गया है। वस्तुका खड न माना जायगा। खंड माननेपर गुण-गुणीका भेद नही रहता। अत वस्तुको युतसिद्ध मानना दूषण सहित है।

अथवा सतो विनाशः स्यादितिपक्षोपि बाधितो भवति ।
नित्यं यतः कथञ्चिद् द्रव्य सुज्ञै-प्रतीयतेऽध्यक्षात् ॥१३॥

सत्के विनाशके पक्षकी बाधितता—तत्त्वका स्वरूप ८वें छंदमे बताया गया था कि वह सत् लक्षण वाला है अथवा सन्मात्र है क्योकि वह स्वतः सिद्ध है, अनादि निधन है, अपने सहाय है और निर्विकल्प है। ऐसा पदार्थ स्वरूपको न मानने पर चार दोप बताये गए थे—वे चार दोप अनुचित हैं उन दोपोकी निवृत्तिके लिए तत्त्वका स्वरूप ऐसा ही मानना चाहिए जैसा कि बताया गया है। वे दोप कैसे अनुचित हैं। उनमे तीन दोपोका तो वर्णन किया गया और उनका निराकरण कर दिया कि ये दोप आते हैं। और इनसे वस्तुकी व्यवस्था विगडती है। अत तत्त्वस्वरूप जो कहा गया वह ठीक है। अब इस छन्दमे चौथे दोपके विषयमें वर्णन किया जारहा है। यदि सत्का विनाश माना जाय तो प्रथम तो यही बात कि माना कैसे जाय? वह तो बाधित है मत। सभी जनोको और विद्वज्जनोंको वस्तु कथचित् नित्य प्रतीत होती ही है। यदि द्रव्य कथचित् नित्य न हो अर्थात् सत् अविनाशी न हो तो एकत्व प्रत्यभिज्ञान हो ही नहीं सकता। जैसे किसी पुरुषको कभी पहिले देखा था और अब फिर एक वर्ष बाद भी दीखनेमें आ रहा है तो उसे निरखकर ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है कि यह वही पुरुष है जिसे हमने पहिले देखा था। तो यह वही यह बुद्धि इस बातका निर्णय करती है कि तबसे लेकर अब तक वही बराबर है। तो नित्यता सिद्ध हुई ना? वहाँ विज्ञानदृष्टिसे भी देखा जाय तो जो पदार्थ सत् है उसका विनाश कभी नहीं होता। कैसे विनाश हो? उसका अभाव कैसे हो जाय? कहाँ जाय वह वस्तु? कहाँ मिल जाय? बडे बडे काठ जला दिये जाते हैं तो क्या पुद्गल नष्ट हो गया, राख बन गया? राख यदि हवामें उडकर आसमानमे फैल जाती है तो क्या वहाँ पुद्गल नष्ट हो गया? सूक्ष्मरूप बनकर फैल गया? और कभी वह दीखे भी नहीं तो भी मत दीखे! उसका अस्तित्व कही नहीं गया, किसी अवस्थामे बना हुआ है। जो सत

है उसका कभी नाश नही होता । तो वस्तुको सर्वथा नाश होनेका प्रसङ्ग मान लिया जाय, यह बात नही कही जा सकती है । प्रत्येक सत पदार्थ वस्तुत. अविनाशी है। अपने आपके बारेमे भी सोच लें—जबसे हम इस मनुष्य भवमे आये हैं तबसे लेकर अब तक हम वही एक हैं अथवा नही । जो अनुभव हुये थे सो भी हमने ही किया था और अब अनुभव जो किया जा रहा है वह भी इसके ही द्वारा किया जा रहा है । मैं वही सत हू, ऐसा सबको यह प्रत्यय हो रहा है । क्षणिकवाद सिद्धान्तमे यद्यपि इस बातको ढकनेके लिए ऐसा कहा गया है कि हम तो एक समय ही कुछ थे और मिट गए, पर इस धारामे इस देहमे एक आत्माके बाद दूसरा आत्मा उत्पन्न होता रहता है और ऐसे उत्पन्न होते हुए आत्माओके प्रवाहमे पूर्व पूर्वके आत्माका अनुभव उसका स्मरण दूसरे-दूसरे आत्मा करते आते है । लेकिन वह धारा क्या किया कहीं तो एकत्वपर टिकना होगा । परम्परा, धारा, सतान किसी भी शब्दसे कहकर एकत्व ही तो स्वीकार किया गया । अब जो सुगमसे प्रत्यक्ष सिद्ध है उसका तो विरोध किया जाय और परिकल्पित अन्य बात मानी जाय यह तो कोई प्रतीत विवेक नही है । सबको प्रतीति सिद्ध है कि मैं आत्मा एक हू सदा रहने वाला हू । जैसे एक भवमे ६०-७० वर्षकी उम्र तक अपने आपके एकत्वकी प्रतीति हो रही है इसी प्रकार इस भवके मरणके बाद अगले भवमे जन्म लेनेपर भी वही मैं एक हू । जो सत् है उसका कभी भी विनाश नही होता । तो सत्का विनाश हो जाय यह बात मानना युक्त नही है । यो चतुर्थ दोष भी दोष है । वह गुण रूप न बनेगा । तब साराश इस समस्त उक्त कथनका क्या हुआ सो कहते हैं ।

तस्मादनेकदूषणदूषितपक्षाननिच्छता पुंसा ।
अनवद्यमुक्तलक्षणमिह तत्त्व चानुमन्तव्यम् ॥ १४ ॥

निर्बाधितया तत्त्वलक्षणकी प्रसिद्धि—इस कारण उन एक दूसरेसे दूषित पक्षोको जो नही चाहता है उसे यह स्वीकार करना ही चाहिए जैसे कि ८ वे छदमे तत्त्वका लक्षण बताया गया है । अर्थात् तत्त्व अथवा वस्तु सत् स्वरूप है, स्वत. सिद्ध है, अनादि निधन, स्वसहाय और निर्विकल्प है । किसी भी पदार्थको सम्मुख लेकर यह बात घटित करें कि वह पदार्थ जो सत् है उसका है पना क्या उससे अलग चीज है ? यही वस्तु है, सत् स्वरूप है । कुछ लोग सत्ताको वस्तुसे पृथक तत्त्व मानते हैं लेकिन उसमे बडा दोष आता है । वस्तु है तो वस्तुका है पना वस्तुसे पृथक नही है । वह वस्तु स्वतत्र ही है । तो वस्तु सत् स्वरूप है और उसका ऐसा सत् स्वरूप होना किसी परवस्तुसे सिद्ध नही है । वह स्वत' सिद्ध ही है । किसीके है को किसने बनाया? किस दूसरे पदार्थसे उसका है पना आया ? किसी दूसरेसे है पना आ जाय तो वह वस्तु है पनसे रहित हो जायगा क्या ? आता ही नही है । अर्थात् दूसरी जगह प्रत्येक वस्तु है

और वह अपने स्वरूपसे है । स्वतन्त्र है यही कारण है कि वस्तु अनादिसे अनन्त काल तक प्रत्येक वही वही रहता ही है । ऐसे है पनका होना और वस्तुका रहना यह किसी परके आधीन नहीं है । वह अपने ही सहायपर है । वस्तुका ऐसा मर्म न समझने वाले लोग कितने गहरे अन्धकारमें रहते हैं और इसी कारण वे मोहसे विह्वल रहते हैं । कुछ लोग धर्मके नामपर अपने कल्याणकी बात करते हैं । पर तत्त्वके इस स्वरूप तक निगाह नहीं पहुँचती तो वह दर्शनके नामपर अनेक तरहकी गढंत कल्पनायें करने लगते हैं । फल यह होता कि उन्हें शान्तिका मार्ग प्राप्त नहीं हो पाता । तो वस्तुका स्वरूप यही है जो बताया जा रहा । सब प्रयत्न करके इस स्वरूपका परिचय करना चाहिए । वस्तु स्वसहाय है । ना, तो स्वयं स्वरक्षित है, स्वयं अपने सहायपर है, स्वयं अपनेमें अपनी योग्यतासे अपना परिणमन किया करता है । ऐसा यह सत् स्वरूप वस्तु सम्पूर्ण भेदा रहित अखण्ड निर्विकल्प है । उस वस्तुमें भेद नहीं पड़ा हुआ है । वह तो जो है सो है । कैसा स्वरूप है यह दृष्टिमें आ जायगा, पर कथनमें न आ सकेगा, वचनोंके अगोचर है वस्तु स्वरूप । जैसे एक आत्मा ही वस्तु है । उसे ग्रहण करे तो अनुभवमें आयगा । जान लिया । अब यह प्रति समयमें जो परिणमन करता है वह एक ही तो है । उस परिणमनमें भेद नहीं पड़ा हुआ है । लेकिन भेद किए बिना समझे बिना कल्याणका मार्ग भी तो न चल सकेगा । दूसरे जीव कैसे समझ सकें कि आत्म-तत्त्व क्या है ? उनको उस परिणमनमें ही भेद कर करके समझाना होगा । इसी उद्देश्यसे हमारे पूर्व आचार्योंने गुण भेद करके और परिणमन भेद करके भव्य जीवों को सम्बोधा है । देखो ! जिसमें श्रद्धा करनेकी शक्ति है, जानने देखने और आनन्द माननेकी शक्ति है वह आत्मतत्त्व है । आत्माको समझना समझाना अति आवश्यक है, अतएव भेद दृष्टिसे समझा गया है, पर वस्तुतः आत्मा और सभी द्रव्य निर्विकल्प हैं, अखण्ड हैं तो जो वस्तुका स्वरूप कहा गया है कि सत् स्वरूप है स्वतः सिद्ध है, अनादिनिधन है, स्वसहाय है, और निर्विकल्प है, यह स्वरूप सत्य है ।

किञ्चैवं भूतापि च सत्ता न स्यान्निरङ्कुशा किन्तु ।
सप्रतिपक्षा भवति हि स्वप्रतिपक्षेण नेतरेणेह ॥ १५ ॥

सत्ताकी स्वतन्त्र द्रव्यताका निषेध व सप्रतिपक्षताका प्रदर्शन - जिस सत्का ८ वें छंदमे स्वरूप कहा गया है वह सत्ता भी निरकुश नही है अर्थात् स्वतन्त्र, अलग पदार्थ नही है । सत्की सत्ताका भी एकान्त आग्रह नहीं है । वहाँ अपने प्रति-पक्षीकी अपेक्षासे सत्तामे सप्रतिपक्षता है । जैसे सत्ता कोई एक समझमे आये तो सत्ता कथंचित् एक है और कथंचित् अनेक है । सत्ता सत्स्वरूपसे समझमें आये तो सत्ता कथंचित् सतरूपसे है और सत्ता कथंचित सत्वरूपसे नहीं है । सत्ताको असत्वरूपसे भी परखा जाता है । इसका वर्णन आगे करेंगे । यहाँ तो यह जानना चाहिए कि सत्ता

निरंकुश नहीं है। संक्षेपमें ऐसा समझें कि सत्ता सत्तास्वरूपकी दृष्टिसे एक है क्योंकि जितने भी सत् हैं सबमे सत्ताका होना सत्त्वके स्वरूपकी दृष्टिसे एक प्रकारकी बात है, पर परिणमन सबका जुदा-जुदा है। उत्पादव्ययध्रौव्यका विकास भी जुदे-जुदे रूपमे है इस कारण सत्ता अनेक है अर्थात् आवान्तर सत्त्वकी अपेक्षा सत्ता अनेक है। जब कभी समझमे आये कि सत्ता सत्त्व स्वरूपसे है, महासत्ता रूपसे है तो वही आवान्तर सत्त्वरूपसे सत्ता न रही। जब सत्ताका आवान्तर सत्त्वके रूपसे सत्त्व देख रहे तो महा सत्ताकी दृष्टिमे वह सत्त्व नही है। यो अनेक प्रकारसे सत्ता सप्रतिपक्ष है।

नित्य एक व्यापक स्वतन्त्र-सत्ता पदार्थके मन्तव्यकी अयुक्तता—कोई सिद्धान्त सत्ताको सर्वथा स्वतन्त्र पदार्थ मानते हैं। जैसे द्रव्य स्वतन्त्र है इसी प्रकार सत्ता भी स्वतन्त्र है और उनके सिद्धान्तमे गुण कर्म सामान्य विशेषको भी स्वतन्त्र पदार्थ माना गया है। प्रकृतमे सत्ताकी बात कही जा रही है। द्रव्यकी भाँति सत्ता भी स्वतन्त्र पदार्थ माना है। उनके मतके अनुसार सत्ता यद्यपि वस्तुमे रहती है फिर भी उस सत्ताको वस्तुसे सर्वथा जुदा माना गया है और वह स्वतन्त्र सत्ता नामक पदार्थ नित्य है व्यापक है और एक है। विचार करनेपर यह एकान्त नही ठहरता। सत्ता वस्तुसे यदि भिन्न है तो इसके मायने यह है कि वस्तु स्वयं कुछ न रही, अभाव रूप है क्योंकि वह तो सत्त्वहीन है, उसमे सत्त्वका स्वरूप ही नही पडा हुआ है। सत्ता अलग चीज है। तो सत्तासे भिन्न द्रव्यादिक फिर क्या वस्तु रहे ? जब 'है' ही नही स्वयं तब वस्तु ही क्या ? साथ ही यह भी विचार करें कि इतना कष्ट क्यों किया गया कि सत्ता स्वतन्त्र पदार्थ है और वस्तुमे अनादिसे नित्य सम्बन्ध रखे हुए है और अनन्त काल तक नित्य सम्बन्ध रखे रहेंगे। भिन्न-भिन्न पदार्थोंमे एक तो यो हुआ ही नही करता कि नित्य सम्बन्ध हो। और, वह नित्य सम्बन्ध कथंचित् तादात्म्यरूप माना गया है। तो तादात्म्य है तो है ही। अब वहाँ भिन्न-भिन्न पदार्थ कहना यह कैसे विवेक कह सकता है। सत्ता वस्तुमे अभिन्न है, वह कोई स्वतन्त्र पदार्थ नही है। पदार्थकी शक्ति और व्यक्ति है वह। शक्तिका नाम गुण है व्यक्तिका नाम पर्याय है पर जैसे द्रव्य सत् है ऐसे ही गुण सत् और पर्याय सत् स्वतन्त्ररूपसे नहीं है। एक दृष्टिसे यह निरखा जा सकता है कि गुण भी सत् है पर्याय भी सत् है, पर सर्वथा भेद दृष्टि बनाकर यह बात युक्त नही बैठती। सत्ताको जिस सिद्धान्तने एक और व्यापक माना है तो जरा व्यापकपनेमे भी विचार करें कि सत्ता कैसे व्यापक है ? जैसे बम्बईके मनुष्यमे सत्त्व है और यहाँ दिल्लीके मनुष्यमें भी सत्त्व है और सत्ता है एक तो बीच की जगहमे सर्वत्र मनुष्य क्यो नही होते ? मनुष्य सत्त्व एक और व्यापक है। तो यदि सत्ता व्यापक है तो बीचमें भी तो कुछ होना चाहिए ? या सभी पदार्थ मनुष्य हो जायेंगे ? मनुष्यत्व जो धर्म है उसे माना व्यापक तो इसका अर्थ यह है कि मनुष्यत्व धर्म एक और सब जगह है। जहाँ मनुष्यत्व हो वही मनुष्यत्व है। अब बीचके जो

जीव हैं-वे भी मनुष्य बन बैठें अथवा जहाँ कुछ भी नहीं है वहाँ मनुष्यत्व कैसे है ? तो यो सत्ता एक हो, नित्य हो, व्यापक हो, यह बात नहीं बनती। सत्ताको यो स्वतंत्र माननेमें और भी दोष आता है जिसका यथास्थान वर्णन किया जायगा।

सत्ताकी सत्त्वरूपता, असत्त्वरूपता, नित्यरूपता, अनित्यरूपता, एकरूपता, अनेकरूपता आदिका वर्णन निर्णय—सत्ताको सप्रतिपक्ष और सत् पदार्थसे अभिन्न न माननेपर अनेकों दोष आते हैं उन सब दोषोके परिज्ञानसे यह ही निर्णय करना चाहिए कि सत्ता स्वतन्त्र पदार्थ नही है किन्तु वस्तु है ना ! तो वस्तुस्वरूपसे ही है, स्वतः है। वस्तुमे अस्तित्व गुण है यह भेददृष्टिसे कहते हैं। कहते हैं, कहें, पर वह अस्तित्व क्या है ? वस्तु ही स्वयं सत् है उसका वर्णन कर रहे हैं। वस्तुमे अस्तित्व नामक गुण वस्तुसे अभिन्न है। जितने भी पदार्थ हैं वे सब स्वयं सत्स्वरूप हैं, उनकी सत्ता उन उन पदार्थोंमे अभिन्न है और जब हम प्रत्येक वस्तुका विचार करते है तो प्रत्येक पदार्थ परस्पर एक दूसरेसे भिन्न हैं और उन सबने भिन्न-भिन्न सत्ता पाई जाती है। एक ही सत्ता सब पदार्थोंमें व्यापक बनकर सत् कहलवादे उन्हे ऐसा नहीं है। सत्ताके सम्बन्धमे एक यह एकान्त धारणा है कुछ दार्शनिकोकी कि सत्ता नित्य अपरिणामी है लेकिन सत्ता कोई स्वतंत्र पदार्थ नही। और, हो भी पदार्थ तो पदार्थ का स्वरूप ही उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है, सत् है तो वहाँ उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीन बातें अवश्य हैं। तो वस्तु परिणमनशील है और वस्तुमे अस्तित्व भी है तो अस्तित्व कहीं अलग स्वतन्त्र नही है अतएव वस्तु परिणमनशील है, परिणमती रहती है तो इसका अर्थ है कि सभी गुण परिणमनशील हैं, निरन्तर परिणमते रहते हैं। यही बात सत्ताके सम्बन्धमे भी जानें कि सत्ता गुणमें भी परिवर्तन होता है। अभी कोई जीव मनुष्य पर्यायमे है। उसका मनुष्यरूपसे सत्त्व है तो वही जीव देवपर्यायमें पहुचे तो देवरूपसे सत्त्व है, इस दृष्टिसे सत् भी परिणमनशील बन गया। इसका अर्थ यह नहीं है कि सत्का परिणमन असत्रूप हो जाय। वस्तुकी अवस्थाके बदलके साथ ही सर्व गुणोंकी बदल रहती है। इस कारण सत्ता कथचित् अनित्य भी है। सर्वथा नित्य न समझना एक ही वस्तुमें द्रव्य दृष्टिसे देखा जाय तो सत्ता वहाँ एक है, पर उस ही द्रव्यमे जब भिन्न भिन्न पर्यायोके रूपमे देखा तो वहाँ सत्ता अनेक है। तभी यह कह सकते हैं कि जो पूर्व पर्याय थी सो अब नही है। पर्यायकी अपेक्षा सत्ता अनेकरूप है, द्रव्यकी अपेक्षासे वह एकरूप है। यो सत्ताका प्रतिपक्ष असत् भी सिद्ध होता है। वह पदार्थान्तररूप परिणमनकी दृष्टिसे नहीं है। अथवा महा सत्त्वकी दृष्टिमे जो सत्त्व है वह आवान्तर सत्ताकी अपेक्षामे नहीं है, यों सत्ता प्रतिपक्ष सहित है उसे निरंकुश एकान्तमय नहीं माना जा सकता है।

अत्राहैवं कश्चित् सत्ता या सा निरकुशा भवतु।
परपक्षे निरपेक्षा स्वात्मनि पक्षेऽवलम्बिनी यस्मात्॥ १६॥

सत्ताको निष्प्रतिपक्ष स्वतन्त्र पदार्थ बतानेकी आरेका—यहाँ कोई दार्शनिक शङ्का कर रहा है कि सत्ता तो स्वतंत्र ही हो सकती है क्योंकि वह अपने स्वरूपमे परपक्षसे निरपेक्ष है। अर्थात् सत्ता निष्प्रतिपक्ष है। उसके सम्बन्धमे अनेक पन समझना यह भूल है। सत्ता स्वयं स्वतत्र पदार्थ है और वह एक है नित्य है, व्यापक है। इसके विपरीत उसका कोई प्रतिपक्ष नही हो सकता। यह शङ्का उस दर्शनकी अपेक्षामे है जहाँ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष आदिक अनेक पदार्थ माने है। और गुणोमे जितने भी गुण हैं वे भी भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। उस दृष्टिमे यह शङ्का की जा रही है कि सत्ता सत्रूप है, असत्रूप है, नित्य है, अनित्य है, एक है, अनेक है, यो सत्ताका प्रतिपक्ष नही बताया जा सकता है ? उक्त शङ्काके उत्तरमे कहते हैं।

तन्न यतो हि विपक्षः कश्चित्सत्त्वस्य वा सपक्षोपि।
द्वावपि नयपक्षौ तौ मिथो विपक्षौ विवक्षितापेक्षात् ॥ १७ ॥

दो नयपक्ष होनेसे सत्ताकी सप्रतिपक्षताकी सिद्धि—उक्त शङ्का यो ठीक नही है कि सत्ताका कोई सपक्ष है तो विपक्ष भी अवश्य है। ये दोनो ही नयपक्ष हैं और विपक्षके भेदसे ये दोनों बाते सम्भव हैं। पदार्थ द्रव्यपर्यायात्मक होता है। तो जब द्रव्य दृष्टिसे देखा जाता है तो उस समय पर्याय गौण हो जाता है। जब पर्याय दृष्टिसे देखा जाता है तब वहाँ द्रव्य गौण हो जाता है। तो द्रव्य और पर्यायमे जब परस्पर विपक्षता है तो उनके विपक्षमें सत्त्वमे भी सपक्ष और विपक्ष बन जायगा। केवल सत्त्व स्वतन्त्र पदार्थ कहाँ है ? जो पदार्थ है सो है, उसका जो 'है' रूप है, अस्तित्व है उसीको ही सत्त्व कहते हैं। तो सत्त्व प्रत्येक पदार्थमे रहने वाला है और वह पदार्थसे अभिन्न है और पदार्थ चूंकि द्रव्य पर्याय स्वरूप है। तो जब उसमे द्रव्य-दृष्टि की जाती है तो द्रव्यके गुणकी तरह द्रव्यकी विशेषताकी तरह सत्त्वमें भी विशेषता प्रतीत होती है। और जब पर्याय दृष्टिकी प्रधानता होती है तो पर्यायकी विशेषताकी तरह सत्तामें भी विशेषतायें प्रतीत होने लगती हैं। यो द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु होनेसे सत्तामे भी सप्रतिपक्षता आ जाती है। इस सप्रतिपक्षताका आगे विस्ताररूपसे वर्णन होगा। यहाँ सक्षेपमें समझ लेना चाहिए कि पदार्थ है। तो पदार्थकी अवस्थाके अनुसार सत्त्व भी उस उस रूपसे समझियेगा। पदार्थमे पर्याय है, गुण है, तो जैसे गुण, पर्याय पदार्थसे निराला नही है, पदार्थकी प्रकृति है उत्पादव्ययध्रौव्यरूप—इसी प्रकार सत्त्वका भी यही स्वरूप बनेगा कि वह भी उत्पादव्ययध्रौव्यरूप है।

अत्राप्याह कुदृष्टिर्यदि नयपक्षौ विवक्षितौ भवतः।
का नः क्षतिर्भवेतामन्यतरेणेह सत्त्वससिद्धिः ॥ १८ ॥

दो नयपक्ष माननेपर भी किसी भी नयसे स्वतन्त्र सत्ताकी सिद्धि होनेसे सत्ताकी सप्रतिपक्षताकी असिद्धिकी आशंका—अब एकान्तका आग्रही शङ्काकार शंका करता है कि अभी बताया गया था कि दो नयपक्ष होते हैं और वे परस्परमें विवक्षितकी अपेक्षासे विपक्ष हो जाते हैं तो यहाँ यही कहना है कि नय पक्ष होता है और विवक्षित होता है तो होओ, इसमे कोई हानि नही, किन्तु वहाँ सत्त्वकी सिद्धि एक नयसे ही हो जायगी। जब किसी भी नयसे सत्ताको माना जा रहा है तो बस उस नयसे स्वतत्र सत्ताकी सिद्धि हो जायगी। फिर वहाँ दूसरे नयका विपक्ष माननेकी क्या जरूरत है? नय हैं दो। ठीक है द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय, द्रव्यार्थिकनयसे सत्ताका जो वर्णन हुआ सो हुआ बस वही है। स्वतंत्र सत्ता है। जब कभी पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे सत्ताका वर्णन होता हो, वह भी स्वतत्र है। अब वहाँ यह मानना कि द्रव्यार्थिकनयसे जो सत्की बात समझी गयी है उससे उल्टा है पर्यायार्थिकनयसे समझी हुई बात यो विपक्षकी वहाँ क्या गुंजाइस है? किसी भी नय दृष्टिसे सत्ताकी स्वीकारता की जाय तो उस दृष्टिसे वह स्वतंत्र है। फिर विपक्ष नयकी दृष्टिसे सत्ताका प्रतिपक्ष क्यो कहा गया है? जो वर्णन है वह ठीक है और उस वर्णन मे वह बात है स्वतत्र है। वहा विपक्षताकी बात कहाँसे आयगी? इससे सत्ता सप्रतिपक्ष है यह सिद्धान्त नही बनता। अब इस शङ्काके समाधानमे कहते हैं।

तन्न यतो द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयात्मकं वस्तु।
अन्यतरस्य विलोपे शेषस्यापीह लोप इति दोषः॥ १६॥

द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु होनेसे सत्ताकी सप्रतिपक्षताके निराकरणकी अयुक्तता—"सत्ता अप्रतिपक्ष नहीं है" शङ्काकारका यह मन्तव्य अनुचित है, क्योंकि वस्तु द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक स्वरूप है। उन दोनोमेसे किसी भी नयका लोप कर देनेपर दूसरेका भी लोप हो जाता है। वस्तुके स्वरूपकी बात यो समझिये कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक होता है। किसी भी वस्तुकी परीक्षा करें, वहाँ सामान्य विशेष स्वरूप मिलेगा। तो सामान्य स्वरूपको ही यदि कोई माने, विशेष स्वरूपको न माने तो विशेषके बिना सामान्य कुछ न रहेगा और कोई विशेष स्वरूपको ही माने सामान्य स्वरूपको न माने तो सामान्य बिना विशेष स्वरूप कुछ न रहेगा। जैसे मनुष्य और कोई मनुष्य व्यक्ति विशेष। अब यहाँ कोई उस पुरुषमे मनुष्य सामान्य ही माने, व्यक्तिरूप न माने, जैसे कि आकार, रग, मुद्रा गुण आदिकरूप है उस तरहका व्यक्ति विशेषरूप पुरुष न माने तो फिर वह सामान्य मनुष्य क्या? उसकी मुद्रा सकल क्या? उसका कोई सत्त्व न रहा। इसी प्रकार कोई पुरुष व्यक्तिमात्र माने, मनुष्य सामान्य न माने तो मनुष्यसामान्य हुए बिना व्यक्तिका क्या अर्थ है? तो जैसे यहाँ मनुष्य सामान्य और व्यक्तिविशेष ये दो बातें जमकर तन्मय रहती हैं। एकका अंगीकार न करनेपर

दूसरेका अभाव हो जाता है, ऐसी ही वात प्रत्येक वस्तुमे जानें कि प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। सामान्य यदि विशेषकी अपेक्षा न करे तो सामान्य नही रह सकता, क्योकि विशेषके बिना सामान्यका स्वरूप क्या ? सामान्य अपने स्वरूपका लाभ भी नहीं पा सकता। इसी प्रकार यदि सामान्यकी अपेक्षा न रखकर विशेषको स्वतंत्र माना जाय तो विशेष भी नही रह सकता। तो यहाँ सामान्यके मायने है द्रव्यार्थिकनयका विषय और विशेषके मायने है पर्यायार्थिकनयका विषय।

वस्तुके द्रव्यपर्यायात्मक होनेसे सत्ताके सप्रतिपक्षत्व सिद्ध होनेका संक्षिप्त विवरण—अब यहाँ शङ्काकार जैसा आशय रख रहा था कि जिस नयसे सत्ता माना उसी नयसे सत्ताको स्वतंत्र मानने लगे। प्रतिपक्ष नयकी क्या आवश्यकता है ? किसी विपक्ष नयमे असत्ताकी स्वीकारताका क्या अर्थ है ? सो यहाँ यह दोष है कि यदि विपक्ष नही माना जाता, द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय उभयरूप वस्तु नही माना जाता, तव फिर कुछ भी नही ठहरता। तो वस्तु सामान्यविशेषात्मक है। जिस किसी भी वस्तुका वर्णन करेंगे उसमे सामान्य धर्म और विशेष धर्म दोनोसे पहिचान बनेगी। केवल सामान्य धर्म देखकर ही पहिचान नही की जा सकती और सामान्य धर्मको स्वीकार किए बिना मात्र विशेष धर्मसे भी पहिचान नही बन सकती। तो चूंकि वस्तु सामान्यविशेषात्मक है, द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयस्वरूप है इस कारण सत्ताको भी दोनो नयोसे बताना होगा। जैसे वस्तु उभयात्मक है तो वस्तुके सभी गुण उभयात्मक हैं। वस्तुकी सत्ता उभयात्मक है, वस्तु अपने स्वरूपसे है, परस्वरूपसे नही है ऐसा तो मानना ही होगा। जैसे पुस्तक अपने स्वरूपसे है पर चौकी आदिकके स्वरूपसे नहीं है, इसमें यदि एक बात माने, दूसरी बात न माने तो न बन सकेगा। कोई ऐसा ही आग्रह करे कि वस्तु उदाहरणमे पुस्तक अपने स्वरूपसे है यह तो हम मान लेंगे, परन्तु पुस्तक चौकी आदिकके रूपसे नहीं है, यह नही मानते। तो, नही मानते, इसका अर्थ यह हुआ कि पुस्तक चौकी आदिकके रूपसे है तो फिर पुस्तक ही क्या रही ? वह तो चौकी आदिक बन गयी। तो इन दोनोमेसे एकको माने यह न बन सकेगा। कोई कहे कि हम यह तो मानते हैं कि पुस्तक चौकी आदिकके रूपसे नही है लेकिन यह न मानेंगे कि पुस्तक अपने स्वरूपसे है। तो पुस्तक अपने स्वरूपसे है इसके न माननेका अर्थ क्या है कि पुस्तक है ही नही। तब वस्तुकी सत्ता सिद्ध नही हो सकती। तो वस्तुके साथ ही अस्तित्व लगा है उस अस्तित्वमें भी ये दो बातें हो जायेंगी कि वह अस्तित्व अपने स्वरूपसे है और अन्य पदार्थके रूपसे नही है। तो जैसे वस्तुमे सत्त्व और असत्त्व दोनो धर्म विदित हुए ऐसे ही सत्तामे भी सत्त्व और असत्त्व दोनो धर्म विदित हो जाते हैं। तो सत्ता सप्रतिपक्ष है, यह बात यो सिद्ध है कि वस्तु सप्रतिपक्ष है, वस्तुका वर्णन सप्रतिपक्ष है। वस्तुके साथ ही सत्ता लगी हुई है। अब सत्ता परस्परमे किस प्रकार सप्रतिपक्ष है इसका वर्णन करते हैं।

प्रतिपक्षमसत्ता स्यात्सत्तायास्तद्यथा तथा चान्यत् ।
नानारूपत्वं किल प्रतिपक्षं चैकरूपतायास्तु ॥२०॥

सत्तामें सत्ताके प्रतिपक्षभूत असत्ताकी सिद्धि—सत्ताकी सप्रतिपक्षता समझनेके लिए ३-४ प्रसग बताये जा रहे हैं जिनमें पहिला प्रसंग यह है कि, सत्ताका प्रतिपक्ष असत्ता है याने सत्ता सत्तारूप भी है और असत्तारूप भी है । प्रतिपक्ष कहते हैं विरोधी धर्मको । अपने विरोधी धर्म सहित है । अब सत्ताका विरोधी कौन हुआ ? तो उसके पहिले नञ् समास कर देनेसे विरोधीपना आ जाता है । तो सत्ताका प्रतिपक्ष असत्ता है और सत्ता नाना रूप है । यह बात बहुतसे दार्शनिक भी कह रहे हैं और सामान्य सत्त्वकी अपेक्षा यह बात दिख भी रही है कि सभी पदार्थोंमे सत्ता है अतएव सत्ता नानारूप हो गयी । जीव भी सत् है पुद्गल सत् है, धर्म सत् है और जीव पुद्गल में प्रत्येक जीव और अणु सत् है । तो सत् नाना हो गए । सत्की नानारूपता है । उसका प्रतिपक्ष है कि सत् एकरूप है । अब विशेष दृष्टिसे जो पदार्थ है वह अपने ही रूप है, ऐसी पदार्थमे जो सत्ता है वह एक रूप है । अब विशेष दृष्टिमें जो पदार्थ है वह अपने ही रूप है । ऐसी पदार्थमे जो सत्ता है वह एक रूप है । एक-एक पदार्थकी सत्ता देखनेसे सत्ता एक रूप प्रतीत होती है । और अनेक पदार्थोंमे वह सत्त्व पाया जा रहा है तो सत् नानारूप प्रतीत होता रहता है । समझनेकी बात है । यदि इसे कोई यों भी समझें कि चू कि सामान्य सत्त्व सबमे है उस दृष्टिसे सत्ता एक रूप है और प्रत्येक पदार्थका सत्त्व भिन्न-भिन्न है । पदार्थ ही अन्य पदार्थोंसे पृथक रहता है इस कारणसे सत्ता नानारूप है । किसी भी दृष्टिमें निरखा जाय, यह मर्म जान लेना चाहिए कि सत्ता यदि सत्ता है तो असत्ता भी है । सत्ता यदि नानारूप है तो एकरूप भी है, इसके समझनेका मार्ग यह है कि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे सत्ताके दो भेद होते हैं । द्रव्यार्थिक दृष्टिमे वह महासत्तारूप है और पर्यायार्थिक दृष्टि में वह विशेष सत्तारूप है, आवान्तर सत्तारूप है । एक तो सत्त्व जो सामान्यरूप है और एक प्रत्येक पदार्थका सत्त्व जिससे भेदविज्ञान होता है जिससे वस्तुव्यवस्था विदित होती है वह है आवान्तर सत्ता । अब यहाँ जब यह विवक्षित है कि महासत्ता अपने स्वरूपकी अपेक्षासे सत्ता है तो वहीं यह भी मानना होगा कि आवान्तर सत्ताकी अपेक्षासे सत्ता नहीं है । जैसे एक ही पुरुषमे मनुष्य सामान्य और पुरुष विशेष दोनों बातें पाई जारही हैं । पर मनुष्य सामान्यकी अपेक्षासे जो निरखा गया मनुष्यत्व है, वह पुरुष विशेषकी अपेक्षासे नही है । क्योकि पुरुष विशेषकी अपेक्षासे व्यक्ति विशेष ही विदित होगा, मनुष्यत्व सामान्य विदित न होगा । तो यो महासत्ता अपने स्वरूपसे सत्ता है तो वह आवान्तर सत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है । यों ही जब पदार्थ विशेषके सत्त्वपर दृष्टि देते हैं तो वहाँ आवान्तर सत्ता ही है, महासत्ता नही है । तो यह आवान्तर सत्ता महासत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है ।

सत्तामें सत्ता असत्ताकी भाँति नानारूपता व एकरूपताकी सिद्धि— प्रत्येक पदार्थमे स्वरूप और परस्वरूपकी अपेक्षासे सत्त्व और असत्त्व होता है। इसी वजहसे प्रत्येक पदार्थ कथचित् सत्रूप है और कथचित् असत्रूप है, यह बात कही जाती है। जैसे सप्तभङ्गीमे बताया गया है कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है, परस्वरूपसे नही है-यह बात तभी तो सिद्ध होगी जब कि सत्ताको सप्रतिपक्ष माना जाय। इसी तरह दूसरे प्रसङ्गकी भी बात समझले कि सम्पूर्ण पदार्थोंकी सम्पूर्ण अवस्थाओंमे महासत्ता है। तब यह नानारूप कहा जाता है और एक-एक पदार्थकी अपेक्षासे देखा जाय तो वह स्वरूपसत्ता हुई, वह एकरूप ही है। तो सत्ता नानारूप भी है और एकरूप भी है। यो सत्ता प्रतिपक्ष सहित है यह बात युक्तिसिद्ध होती है, न कि सत्ता कोई एक है और स्वतत्र है, उसका सब पदार्थोंमे समवाय है तब सब सत् कहलाते हैं। प्रत्येक पदार्थ स्वत सिद्ध है। जो तत्त्वका लक्षण कहा है वह पूर्णतया सही है कि तत्त्व सन्मात्र है, स्वत सिद्ध है, अनादि अनन्त है, स्वसहाय है और अखण्ड है।

एक पदार्थस्थितिरिह सर्वपदार्थस्थितेर्विपक्षत्वम्।
ध्रौव्योत्पादविनाशैस्त्रिलक्षणा चास्त्रिलक्षणाभावः॥२१॥

सत्ताकी एकपदार्थस्थितिका विपक्ष सर्वपदार्थस्थिति, व त्रिलक्षणाका विपक्ष अत्रिलक्षण—सत्ता एक पदार्थमे स्थित है। इसका विपक्ष है कि सत्ता सब पदार्थोंमे स्थित है। इसी प्रकार सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है याने त्रिलक्षणात्मक है। इसका प्रतिपक्ष है कि सत्तामे त्रिलक्षणका अभाव है, अत्रिलक्षणात्मक है। यहाँ दो प्रसङ्गोपर विचार किया गया है। सत्ता स्वरूपसे सामान्यसे देखा जाय तो अस्तित्वका नाम सत्ता है और एक यह भाव है और यह सत्ताभाव सब पदार्थोंमे स्थित है अर्थात् सभी सत् है। तो इस दृष्टिसे सत्ताकी यह विशेषता हुई कि वे सब पदार्थ स्थित हैं। तो इसका प्रतिपक्ष यह है कि सत्ता भी एक पदार्थ स्थित है। आवान्तर सत्त्वकी अपेक्षासे जब निरखा जाता है तो प्रत्येक पदार्थकी सत्ता उसकी उसके अपने आपमे है। यो कोई भी एक सत्व एक पदार्थमे ही रहता है। तो सत्ता इस तरह सप्रतिपक्ष तन्मय है। पर्यायार्थिक दृष्टिसे वस्तुका प्रतिसमय उत्पाद और व्यय होता है, वस्तुसे सत्व अलग नही है। जिस वस्तुका उत्पादव्यय हुआ वही सत्ताका उत्पाद व्यय हुआ। याने अब यह सत्त्व किसी नवीन अवस्थारूपसे उत्पन्न है और पहिली अवस्था रूपसे उत्पन्न है और पहिली अवस्थारूपसे उसका व्यय है। इतनेपर भी सत्त्व ध्रौव्य रहता है। वही एक सत्त्व है जो कालानुसार उत्पाद व्ययमे रहा करता है। यो सत्ता त्रिलक्षणात्मक है। तो इसी प्रकार ये तीन अवस्थायें एक समयमे होने वाली त्रिलक्षणात्मक पर्याय हैं। फिर भी ये तीनरूप नही है, क्योकि उनमे व्यतिरेक पाया जाता है। जिस स्वरूपसे वस्तुमे उत्पाद है उस स्वरूपसे ध्रौव्य और व्यय नही है। जिस स्व-

रूपसे वस्तुमे विनास है उस स्वरूपसे उत्पाद और ध्रौव्य नही है, इसी प्रकार जिस स्वरूपसे ध्रौव्य है उस स्वरूपसे उत्पाद और व्यय नही है। तब सत्ता त्रिलक्षण न रही एक पर्यायकी अपेक्षासे देखा जाय तो उस ही पर्यायकी विवक्षामे उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीन नही विदित होते। जिसकी विवक्षा है उसके ही धर्म विदित होते हैं। यो सत्ता त्रिलक्षण नही है किन्तु एक-एक लक्षणरूप है। यो इस चौथे प्रसंगमे भी सत्ताकी सप्रतिपक्षता कही गयी है। तो सत्ता कोई स्वतंत्र पदार्थ है, निरंकुश है अपने आपका स्वतंत्र स्वरूप लिए हुए है। द्रव्य, गुण, पर्याय सबसे निराला है, एक सर्व व्यापक है, ऐसा कोई स्वतंत्र सत्ता नामक पदार्थ नही है, किन्तु सत्ता वस्तुका ही गुण है। वस्तु ही स्वयं सत् स्वरूप है। गुण भी क्या कहै, किन्तु भेद दृष्टिसे कहना पडता है। वस्तु है ना, तो उस है हीका नाम सत्त्व है। तो यो वस्तु सत् स्वरूप है और वस्तुके निर्णय के अनुसार सत्ताका भी निर्णय होता रहता है। यो सत्ता सप्रतिपक्ष है और उसकी सप्रतिपक्षताके चार प्रसग बताये गए हैं। अब इसके प्रसग और सुनो।

एकस्यास्तु विपक्षः सत्तायाः स्यादहो अनेकत्वम् ।
स्यादप्यनन्तपर्यय प्रतिपक्षस्त्वेकपर्ययत्वं स्यात् ॥ २२ ॥

सत्ताकी एकताका प्रतिपक्ष अनेकता व अनन्तपर्ययताका प्रतिपक्ष एक पर्ययता—सत्ता एक है। यह सामान्य दृष्टिसे कथन है। इस एकका प्रतिपक्ष है अनेक। सत्ता अनेक है। सत्ताका केवल स्वरूप देखा जाय तो उस सामान्य दृष्टिमें सत्ता एक है। सत्त्व है, सत्त्वमें विभिन्नता क्या ? है पनेमे नानारूपता क्या ? उस है का अस्तित्त्व क्या ? तो यो अस्तित्व सामान्यकी दृष्टिमे सत्ता एक है लेकिन सर्वथा एक नहीं कहा जा सकता। सर्वथा एक माननेमे स्वतत्र सत्ता माननी होगी। और, वह सिद्ध होती नही। है ही नहीं ऐसा। तो प्रतिवस्तुका सत् स्वतत्र है तो प्रतिवस्तुकी अपेक्षा सत्ता अनेक है तव पदार्थ अनन्त हैं, अनन्त जीव द्रव्य हैं, उनसे भी अनन्त गुणे पुद्गल द्रव्य हैं, एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य और असख्यात कालद्रव्य। जब यों पदार्थ अनन्त हैं तो सत्ता भी अनन्त है यों एक सत्ताका प्रतिपक्ष अनेक सत्ता है। अब छठवें प्रसगकी बात सुनो ! सत्ता अनन्त पर्याय स्वरूप है क्योकि प्रति पर्याय, प्रति पदार्थके भेदसे सत्ता भिन्न-भिन्न ध्यानमें आती है। तो यो अनन्त पर्यायरूप होकर भी सत्ताका प्रतिपक्ष है एक पर्यायरूप होना। जिस दृष्टिसे सत्ता अनन्त पर्यायरूप है। मानो अनन्त पर्यायोमे सत्त्व रहता है इस कारण वह एक सत्त्व अनन्त पर्यायरूप है तो प्रतिअवस्थामे सत्त्व जुदा-जुदा है अन्यथा पर्यायें विविध न हो सकेंगी। जो विविध हो वह विविध सत्त्वसे सम्पन्न है। यो एक एक पर्यायमें एक एक सत्त्व है, यो सत्त्व एक पर्यायरूप है जब सामान्य दृष्टिसे एक पर्यायरूप देखा कि सत्ता तो एक रूप है, एक अवस्था है तो विशेष दृष्टिमे सत्ता अनन्त पर्यायरूप देखी गई।

यों अनन्त पर्यायताका प्रतिपक्ष एक पर्यायता है इसी प्रकार सत्ताके सम्बन्धमे सप्रतिपक्षताका वर्णन किया। सप्रतिपक्षताका कथन उस शकाके उत्तरमे किया गया है जहाँ यह माना कि सत्ता कोई है, वह ठीक है, लेकिन वह स्वतंत्र ही है, निरपेक्ष है। इस शङ्काके समाधानमे सत्ताके स्वरूप और विशेषताकी बात कही गई कि सत्ता स्वतंत्र निरंकुश नहीं हो सकती।

एकस्मिन्नहि वस्तुन्यनादिनिधने च निर्विकल्पे च।
भेदनिदानं किं तद्येनैतज्जृम्भते वचस्त्विति चेत्॥ २३॥

अखण्ड वस्तुमें भेद किये जानेके कारणकी जिज्ञासा —अब इस प्रसंगमे यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वस्तु तो वास्तवमे अखण्ड एक द्रव्य है। कोई भी पदार्थ हो, वह स्वयं अपने आपमे अभेद और अखण्ड है। एक जीव है। उस जीवमे खण्डपना कहाँ है। एक ही है अभेदरूपसे, तब जो अनुभव होता है वह एक अनुभव होता है, निरन्तर अनुभव होता है। एक परिणमन आत्माके किन्हीं प्रदेशोमे हो, किन्ही प्रदेशो मे न हो, ऐसा अन्तर वहाँ नही पाया जाता। तो वस्तु अखण्ड है। पुद्गल द्रव्य एक अखण्ड द्रव्य है। धर्म द्रव्य लोकाकाशमे व्यापक होकर भी एक अखण्ड है। अगुरुलघुत्व गुणके कारण जो परिणमन होता है वह उस असंख्यात प्रदेशी एक धर्म द्रव्यमे पूरेमें होता है। यो ही अधर्म और आकाश भी एक–एक अखण्ड द्रव्य है। कालाणु लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक अवस्थित है और वह एक प्रदेशी है। अपनेमे अखण्ड है। यो वस्तु प्रत्येक अखण्ड ही होता है और वह अनादि है। कोई भी वस्तु किसी दिनसे निस्पन्न हो यह हो नही सकता। यदि किसी दिनसे निस्पन्न होता है तो उससे पहिले वह असत् कहलाया, तो सर्वथा असत्का कभी उत्पाद नही होता। इसी प्रकार वस्तु अनन्त है। इसका कही भी अन्त नही है। यदि वस्तुका अन्त मान लिया जाय कि किसी दिन यह वस्तु समाप्त हो जाती है, तो उसका अर्थ यह हुवा कि सत्त्व नही रहता। तो जो उसमे सत्त्व है, प्रदेश है, शक्ति है, गुण है वह कैसे सर्वथा असत् हो जायगा। वह तो रहेगा ही। चाहे किसी भी रूपमे रहे। तो वस्तु अनन्त है और निर्विकल्प भी है। तो जब वस्तु यो अभेद रूप है तो उसमे भेद डालनेका कारण क्या है? जिससे कि यह कथन शोभा पावे। सत्ता सप्रतिपक्ष है, एक है अनेक है। एक एक पदार्थमे है, सर्व पदार्थमे है, आदिक बातें युक्त बैठे ऐसे भेदका कारण है क्या? वस्तुका जहाँ यथार्थरूपसे स्वरूप कहनेकी बात आती है तो वहा यह बताया ही जाता है कि वह वस्तु अवक्तव्य है, अखण्ड है, और है भी ऐसा। जो भी सत् है वह अपनेमें परिपूर्ण है और अखण्ड एक है। तो ऐसे अखण्ड सत्मे अनेक प्रतिपक्ष बताना यह सामान्यका प्रतिपक्ष विशेष है। सत्ता इस दृष्टिसे सामान्यरूप है, एक दृष्टिसे विशेष रूप है तो यह भेद कहांसे आ गया? सत्ता एक दृष्टिसे एक है, एक दृष्टिसे अनेक है,

तब जो पदार्थ परमार्थत अखण्ड है। अभेद है तो उसमे फिर भेदकी क्या बात? कौन सा गुण है, हेतु है, कारण है कि जिससे उसका भेद किया जाय। वस्तुको बताया है कि वह त्रिलक्षणात्मक है। यह भी एक भेद डालनेकी बात है। प्रथम तो यह भी न कहना चाहिए था। अखण्ड द्रव्यमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य होना, विरुद्ध धर्म बताना, यह कैसे सम्भव होगा? खैर बताया गया कि वस्तु त्रिलक्षणात्मक है। तो अब उसका भी प्रतिपक्ष बताया कि एक, एक लक्षणरूप है। वस्तु अत्रिलक्षण है। तो इत्यादिक विधियोमे अखण्ड वस्तुके खण्ड करना प्रथम तो यह बात युक्त नही जचती जो एक निर्णय हो गया और जिस निश्चयपर एक बार बुद्धिको पहुचाये। जिस निश्चयसे परमार्थ और निश्चयकी बात कहा करते हैं फिर उस परमार्थ स्वरूपसे मुड करके इन उपचरित बातोका कहना कहाँ तक युक्त है? अखण्ड वस्तुमे भेद करनेका कारण क्या है सो बताओ।

> अंशविभागः स्यादित्यखण्डदेशे महत्यपि द्रव्ये।
> विष्कम्भस्य क्रमतो व्योम्नीवांगुलिवितस्ति हस्तादिः ॥ २४ ॥
> प्रथमो द्वितीय इत्याद्यसंख्यदेशास्ततोप्यनन्तांश्च।
> अंशा निरंशरूपास्तावन्तो द्रव्यपर्ययाख्यास्ते ॥ २५ ॥
> पर्यायाणामेतद्धर्मं यत्त्वंशकल्पनं द्रव्ये।
> तस्मादिदमनवद्यं सर्वं सुस्थं प्रमाणतश्चापि ॥ २६ ॥

अखण्डप्रदेशी द्रव्यमें अंशविभागकी परिकल्पनाका निदान विष्कम्भक्रम यद्यपि पदार्थ अखण्डप्रदेशी होता है और महान भी होता है तो भी उसमे विस्तारक्रम से अंशविभाग कल्पित किया जाता है। जैसे आकाशमे एक अगुल, दो अगुल, १ विलस्त, एक हाथ, एक गज आदिक अंशविभाग किए जाते हैं, कही अंशविभाग करनेसे आकाशके खण्ड नही हो जाते। वह तो अखण्ड ही है और साथ ही यह भी देखो कि उस अखण्ड आकाशमे जो अंशविभाग किया है वह भी सत्य है। तो जैसे अखण्ड आकाशसे अंशविभाग किए जाते हैं ऐसे ही द्रव्यमे जो कि अखण्ड है अंशविभाग वहाँ भी किया जाता है। जितने एक द्रव्यमें अंश हैं उतनी ही उस द्रव्यकी पर्यायें समझना चाहिए। जब द्रव्यके प्रदेशमें अंशकी कल्पना होती है और जब जो पर्याय विदित होती है उस पर्यायको द्रव्य पर्याय कहते हैं। द्रव्यमे अंशोकी कल्पना करना ही पर्यायोका स्वरूप है। यह अंशकल्पना तिर्यक्रूपसे भी होता है, शक्तिरूपसे भी होता है और ऊर्ध्वांश रूपसे भी होता है। जैसे द्रव्योंमें प्रदेश अंश कल्पना करके तो द्रव्य पर्याय बनती है। पदार्थमें शक्त्यंशकी कल्पना करके गुण समझा जाता है और कालकृत अंश करके याने एक समयका परिणमन, यो समय-समयके परिणमन, यो अंश करके गुण

पर्याय समझी जाती है। द्रव्य उन समस्त अंशोका समूह है। जैसे वर्तमानमें अनन्त शक्तियोका समूह द्रव्य है। यदि उनमेसे कोई शक्ति न मानी जाय तो द्रव्य पूर्ण नही हुआ, द्रव्य अखण्ड न बना और इसी कारण उसका सत्त्व भी नही बना। यो ही कालकृत पर्यायोमे यदि किन्ही पर्यायोको छोड दिया जाय तो वह द्रव्य नही बना, क्योंकि द्रव्य होते हैं अनादि अनन्त। यो सब प्रकारके अंशोके समूहको एक अखण्ड द्रव्य कहते हैं। द्रव्यकी जितनी भी अनादि अनन्त पर्यायें हैं उन पर्यायोका समूह द्रव्य है। यद्यपि द्रव्य प्रतिसमय परिपूर्ण हैं फिर भी द्रव्यके बारेमे जानकारी न समझियें। यदि नही यो जानते कि अनन्त पर्यायोका समूह द्रव्य है। प्रत्येक द्रव्यकी एक समयमे एक पर्याय होती है, और काल (समय) है अनन्त। काल समय भूतमें भी अनन्त याने अनादि है और भविष्यमे भी अनन्त है, और सर्व समयोमे द्रव्य रहता है। उसकी पर्यायें रहती हैं। तो वस्तु भी अनादि अनन्त हैं तब जो वस्तुका स्वरूप कहा गया कि पदार्थ सन्मात्र है, स्वतः सिद्ध है, स्वसहाय है, अनादि अनन्त है और अखण्ड है यह बात पूर्ण प्रमाण सिद्ध है फिर भी उसका परिज्ञान अंश किए बिना हो नही सकता इस लिए देशास गुणांश तथा गुण, और यो भेद करके उस अखण्ड द्रव्यको समझाया गया है। वस्तु कोई भी हो, वह अनन्त गुणमय है और अपने आपमें अखण्ड सत् है। ऐसे अखण्ड पदार्थमे अशोकी कल्पनाकी जाती है। तो अशकल्पना दो पद्धतियोमें होती है एक तिर्यकरूप, दूसरी ऊर्द्धांशरूप। एक समयके सत्को अनेक अंशोमे विभाजित करना सो तिर्यक अश कल्पना कहलाती है। कालभेदको दृष्टिमें न लेकर उस पदार्थके अश करना सो तिर्यक अश कल्पना कहलाती है। इन प्रत्येक अविभागी अंशोको द्रव्य पर्याय कहते हैं। तिर्यक अंशकी कल्पना करनेसे दो दृष्टियाँ बनती हैं एक तो प्रदेशकृत अश, दूसरा शक्ति सम्बन्धी अश। जहाँ प्रदेश सम्बन्धी अंशकी बात है उसे तो कहते हैं द्रव्य पर्याय और जहाँ शक्ति सम्बन्धित बात है उसे कहते हैं गुण।

पदार्थमें ऊर्द्धवांशविभागका निदान कालकृत क्रम—अब कालकृत भेद दृष्टिसे निरखा जाय तो द्रव्यका एक समयमे एक आकार है। दूसरे समयमे दूसरा आकार है। यो प्रतिसमय भिन्नाकार है। तो अनन्त समयका अनन्त आकार है। आकारके मायने आकार भी है और परिणमन भी है। तो यों क्रमसे द्रव्यके अनन्त आकार अथवा परिणमन होते हैं। यो काल भेदमे अश कल्पना करना ऊर्द्धवांश कल्पना है। पदार्थ परमार्थतः जैसा अखण्ड है उसे वैसा समझनेके लिए जो विवेकीजन पद्धति अपनाते हैं वह परम्परा समान होती है और इस पद्धतिमें कहीं सूक्ष्म नामान्तर विवक्षाभेदमे हो तो भी उनका आशय ग्रहण करना चाहिए। द्रव्यसम्बन्धी आकारको व्यञ्जनपर्याय कहा है और। कही उस व्यक्त परिणमनको भी व्यञ्जनपर्याय कहा है। तो जहाँ प्रदेशके आकारको व्यञ्जनपर्याय कहा वहाँ उसका प्रतिपक्षी है गुण-पर्याय। और जहाँ व्यक्त परिणमनको व्यञ्जनपर्याय कहा है वहाँ उसका प्रतिपक्षी है

अर्थपर्याय। अर्थपर्याय तो पदार्थके प्रत्येक परिणमनको कह सकते हैं, पर शब्द तो सीमित हुआ करते हैं। भाव उससे कई गुणित होता है। रूढ़िसे अथवा समभिरुढनय से शब्दोका अर्थ कोई विवक्षित होता है। तो द्रव्य पर्यायरूप अंशकल्पना प्रदेशवत्व गुणके निमित्तसे होता है। सो प्रदेश निमित्तक अंश कल्पना द्रव्य पर्याय है और शक्ति-स्वभाव निमित्तक अं कल्पना गुणपर्याय है। अब कालक्रमसे एक गुणकी अनन्त समयोंमें अनन्त अवस्थायें होती हैं, इसीका नाम है गुणमें ऊर्द्धवांशकी कल्पना। अब अर्थ पर्यायके सम्बन्धमें दो आशय हैं अथवा दो प्रकारके भेद विदित होते हैं एक तो एक समयकी जो पर्याय है वह अर्थपर्याय कहलाती है। एक समयकी पर्यायें स्थूल नही होती, उपयोगमे ग्रहण नही होती, वह सूक्ष्म अर्थपर्याय है। दूसरे आशयमे अगुरु-लघुत्व गुणके कारण अन्य निमित्तके बिना वस्तुके सहज स्वभावसे जो षड्गुण हानि वृद्धि परिणमन है वह अर्थपर्याय कहलाता है। तो एक गुणकी एक समयमें जो अवस्था है अनेक अवस्थायें होती हैं, उनमे जो अंश कल्पना है वह तो है ऊर्द्धवांश कल्पना। किन्तु अब जो एक गुणकी अवस्थामे जो अविभाग प्रतिच्छेदरूप अंश कल्पना है वह गुणमें तिर्यक अंश कल्पना है। जैसे एक ज्ञान गुणका एक समयका परिणमन है, दूसरे समयका दूसरा परिणमन है तो यह हुई ऊर्द्धंश कल्पना। अब उनमेसे एक ही समयका परिणमन लिया और उस परिणमनमे यह कह सकना कि इसमे इतना अविभाग प्रति-च्छेद है यह है गुणपर्यायमें तिर्यक अंश कल्पना। जैसे दूधमें चिकनाईका तारतम्य है। बकरीके दूधसे गायका दूध चिकना है, गायके दूधसे भैंसका दूध चिकना है। अब वहाँ कोई दूध है, उस दूधमे यह बुद्धि बनती कि इसमे ८० प्रतिशत चिकनाई है, तो जो है वह तोएक समयकी परिणति है। अब उसमें भी डिग्रियोंका अविभाग प्रतिच्छेदका जो परिकल्पन हुआ है वह है गुणपर्यायकी तिर्यक अंश कल्पना। गुण एक ही समय उस द्रव्यके सर्व प्रदेशोंमे रहता है। इस कारण गुणोंकी कल्पना एक प्रदेशक्रमसे नही बनती है किन्तु भावज्ञानमे उस भावके और अश कर करके कल्पना बनती है। तो यहाँ यह ही सब कथन चार प्रकारोंमे विभाजित होता है।

देश, देशांश, गुण, गुणांशकी परिकल्पनाकी संगतता–देश, देशांश, गुण, गुणांश। देश तो देश ही है, अखण्ड एक पदार्थ है उसमें विशेषता बतानेके लिए ३ भेद किए हैं देशांश, गुण और गुणांश। देशांश तो प्रदेशक्रमसे होगा जिसमे आकर जैसी पर्याय बनती है और गुण स्वभावके कल्पित अंशोंमे मिलेगा। जैसे एक पदार्थ वह एक स्वभावरूप है। अब उसमे भेद होना, इसमे यह शक्ति है, यो अनन्त शक्तियो का मानना यह कहलायेगा गुण और उस गुणका प्रतिसमयकी परिणतिका भेद करना वह हुआ गुणांश। एक गुणमे अनन्त गुणांश होते हैं, जैसे एक ज्ञान गुणका दृष्टान्त ले तो ज्ञान गुणके जघन्य अविभाग प्रतिच्छेद जहाँ विकसित है वह है सूक्ष्मनिगोद लब्धपर्याप्तक जीव। वहाँ अक्षरके अनन्तवाँ भाग व्यक्त है ज्ञान। यद्यपि वह सबसे

जघन्य विकास बताया है लेकिन वहाँ भी अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद है ? जघन्य ज्ञान से बढकर निगोदियोमे बहुतसे ज्ञान पाये जाते है जो अपेक्षाकृत एक दूसरेसे बडे हैं। उससे अधिक दो इन्द्रियमे उससे अधिक तीन इन्द्रियमे, उससे अधिक चार इन्द्रियमे उससे अधिक असज्ञी पंचेन्द्रियमे और उससे अधिक संज्ञी पञ्चेन्द्रियमे होते हैं। जैसे यहीं मनुष्योमें देखो तो नाना प्रकारसे कम-बढ ज्ञान विदित होते हैं। तो ज्ञानका एक समयका जो परिणमन है वह कैसा है ? यह समझानेके लिए उसमे भी अविभाग प्रतिच्छेद बनाया जाता है। तो यो देशाशगुण और गुणाशकी कल्पना बिना यह अखण्ड द्रव्य समझा नहीं जा सकता। उसका सत्त्व विदित न होगा इस कारण यह भेदकल्पना सत्ताकी सप्रतिपक्षताके वर्णनका कारण होती है।

सत् पदार्थका चार विभागोमे अवगम—उक्त कथनका सारांश यह है कि कोई भी पदार्थ सत् है तो वह चार भागोमे विभक्त विदित होता है। वे चार भाग हैं—देश देशांश, गुण और गुणाश। देश नाम है उस परिपूर्ण पदार्थका। अनन्त गुणमय पदार्थके अखण्ड अंशोके नाम प्रदेश हैं। जैसे गुण पर्ययवान कहा, गुण समुदाय कहा, पर्ययसमुदाय कहा। जो एक अखण्ड सत् है उसे देश कहते हैं। उस अखण्ड पिण्डरूप देशमे प्रदेशकी अपेक्षासे जो अशकल्पना की जाती है वह देशाश कहलाता है, है कोई एक पदार्थ। अब यह पदार्थ है प्रदेशी। प्रदेश हुए बिना सत्त्व नही होता। उसकी अपेक्षाका कुछ तो विस्तार होगा क्षेत्र होगा। तो जो प्रदेश है वह ही देशाश कहलाता है और उस अखण्ड पिण्डमे जो स्वभाव है उस स्वभावका विधिपूर्वक भेद करके जान पाते हैं तो वह भेद शक्ति नामसे विदित होती है। तो उस पिण्डमे जो शक्तियाँ हैं उनको गुण अथवा शक्ति कहते हैं और शक्ति कोई भी व्यक्ति पाये बिना रहती नही अर्थात् सभी कुछ किसी न किसी परिणमनको लिए हुए होते ही हैं। तो गुणोका जो परिणमन है, चूंकि धर्मीकी भाँति गुणकी भी अनन्त पर्यायें हैं, उनमे से एक पर्यायको ग्रहण कर रहे हैं, या सबको नहीं, किंतु कुछको ग्रहण कर रहे हैं तो वह गुणाश कहलायेगा, क्योंकि गुण तो त्रैकालिक है, उसमेसे हम कुछ गुणके परिणमनकी बात करते है तो वह गुणाश है। इस प्रकार देश, देशाश, गुण गुणाश, ऐसे विभाग किए बिना, हम वस्तुका सत्त्व नही समझ सकते।

देश, देशांश, गुण, गुणांशमे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अनर्थांतरता

देश, देशाश, गुण गुणाशका अब और भी मर्म देखिये ! ये चारो ही इन शब्दोसे कहे जाते हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। तो जो देश है वह तो द्रव्य है और जो देशांश है वह क्षेत्र है। याने पदार्थके प्रदेशका अपेक्षासे जो वस्तु बनती है वह अशकल्पना किए बिना नही बनती। तो उस देशाश कल्पनासे हमने पदार्थ विस्तार जाना और फिर विस्तारका ही नाम क्षेत्र है। यह पदार्थ कितने क्षेत्रमे है ? यहाँ क्षेत्रसे मत-

लव आकाशके क्षेत्रसे नही है, किन्तु तद्भूत पदार्थका निजी क्षेत्र। स्वयं वह अपने स्वरूपको कितने विस्तारमे लिए हुए है। वह क्षेत्र होता ही है पदार्थोंमें सो वह तो हुआ देशांश और गुणके मायने भाव है। भावको हम दो दृष्टियोसे निरख पाते हैं—अभेद दृष्टि और भेद दृष्टि। जब भावको अभेद दृष्टिमे देखते हैं तो एक स्वभावमात्र पदार्थ विदित होता है। जब हम भावको भेद दृष्टिमे देखते हैं तो वहाँ गुणका परिचय होता है। एक स्वभावको भावकी सीमामे ही भिन्न किया गया तो ऐसे उसमे कई भाव नजर आये, उन्हीका नाम तो गुण है अर्थात् पदार्थमें जो शक्ति है उसका नाम गुण है, इसीको कहते हैं भाव। और, उन गुणोकी जो अवस्थायें हैं प्रत्येक गुणमें होने वाले परिणमन हैं उन परिणमनोको कहते हैं काल। ये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चार दृष्टियोंसे पदार्थोंका परिचय किया जाता है, और इन चारो बातोके परिचयसे ही यह परखसे आता है कि प्रत्येक पदार्थ व उनका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अन्य पदार्थों से भिन्न है ऐसा विदित होनेपर ही निश्चय किया जा सकेगा कि यह पदार्थ सत् है। इस कारण भेद कल्पना आवश्यक हुई। और यह भेदकल्पना है आधार इस बातको समझानेका कि सत्ता सप्रतिपक्ष होती है वह कही निरंकुश स्वतन्त्र नही होती है।

एतेन विना चैकं स्वयं सम्यक् प्रपश्यतश्चापि।
को दोषो यद्भीतेरियं व्यवस्थैव साधुरस्त्विति चेत् ॥ २७ ॥

देश, देशांश गुण, गुणांश माने विना ही एक मात्र द्रव्यको निरखनेमे निर्दोषताकी आरेका—अब यहाँ शङ्काकार शङ्का करता है कि जो देश देशांश गुण गुणांशके कथनसे व्यवस्था कराया है वह भिन्न-भिन्न रूपकी व्यवस्था प्रत्यक्षगोचर तो नही है। प्रत्यक्षमे तो केवल एक द्रव्य ही फलीभूत दिखनेमे आ रहा। जैसे जैनशासन में सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा है अर्थात् इन्द्रिय द्वारा पदार्थको स्पष्ट जानना उस प्रत्यक्ष से तो पूरा पदार्थ ही नजर आता है। उस पदार्थमे देशांश है, शक्तियाँ हैं, ऐसी कोई विभिन्नतायें दृष्टिमे नही आती। तो एक द्रव्य ही माना जाय जो कि प्रत्यक्षमे दिख रहा है तो इसमे कौन सा दोष था ? जिसके डरसे ऐसी कल्पना करनी पडी जो प्रत्यक्षसे ग्रहणमें नही आती। सारांश यह है कि एक देशको ही मान लिया जाय। पदार्थ ही माना जाय कि जो स्थूलरूपसे दिख रहा है, इन्द्रिय द्वारा गोचर हो रहा है उस द्रव्यमे फिर देश, देशांश, गुण गुणांश ये चार प्रकारकी कल्पनायें करनेकी क्या आवश्यकता है ? और जब चार कल्पनाओकी आवश्यकता न रही तो फिर सत्ताके सप्रतिपक्षका आधार भी कुछ नही रहता? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

देशाभावे नियमात्सत्त्वं द्रव्यस्य न प्रतीयेत।
देशांशाभावेपि च सर्वं स्यादेकदेश मात्रं वा ॥ २८ ॥

देशके अभावमें द्रव्यकी सत्ताकी अप्रतीति—शङ्का यह कही गयी थी कि एक पदार्थ ही मान लीजिए, जैसा कि इन्द्रियसे ग्रहणमे आ रहा है उसमे देश देशाश, गुण गुणाश, यह भेद न माना जाय तो इस ही पर विचार करना है कि यदि पदार्थमे देश देशाश, गुण गुणाश नही माना जाता तो पदार्थका परिचय हो सकेगा क्या ? इस ही बातको क्रमसे सुनो ! यदि द्रव्यमे देश नही माना जाता याने अनन्त गुणोका अखण्ड इस प्रकार कहलाया वह देश तो गुण पिण्डरूपसे अगर हम नहीं देखना चाहते हैं पदार्थको, या नही देख रहे हैं तो उसे द्रव्यकी सत्ता प्रतीत नही हो सकती। पिण्ड रूप देश न माना जाय तो द्रव्यकी सत्ता कैसे ज्ञात होगी ? कुछ भी देखा उस देखनेमे देखा क्या ? गुणरहित द्रव्य, पर्यायरहित द्रव्य ? क्या देखा ? जहाँ ही द्रव्य कह देते हैं, कहे जो भी नजर आया वह एक समुदाय है अभिन्न समुदाय, अखण्ड पिण्ड। इस रूपसे न निरखा तो पदार्थ निरखा भी क्या गया ? तो देशके न माननेपर द्रव्यकी सत्ता नही ठहरती।

देशाशके अभावमे द्रव्यकी एक प्रदेशमात्रता आदि दोष—अब वह पदार्थ कितना बडा है यह भी तो प्रत्यक्षसे दिख रहा है ना ? तो पदार्थ कितना है ऐसा हम प्रत्यक्षमे भी देखते हैं, बुद्धिसे भी सोचते हैं तो पदार्थका विस्तार देशाश स्वीकार किए बिना बन ही नही सकता। जैसे किसी वस्तुका कोई परिमाण सोचा जाता है देखा जाता है कि यह वस्तु एक हाथ प्रमाण है। तो जब यह समझमे है कि एक एक अंगुल करके २४ अगुल बराबर है तब तो समझमे आया देशाश। इसके बिना वह एक परिमाण जाना नही जा सकता। बडेसे बडे परिमाणके परिचयमें भी देशका परिचय आधार है। तभी बहुत बडे परिमाणकी चीज भी कही जायगी जैसें यह एक कोश है तो उस कोशका सही परिचय करने वालेकी दृष्टिमे एक एक इच, एक एक सूतका जो परिचय है, उसे चाहे अधिक अभ्यासके कारण उपयोगमे नही ले रहे लेकिन सोचिए अगर एक सूत या एक इंचका कोई परिमाण नही है तो उन सबका समुदायरूप एक कोश भी कुछ चीज नही ठहरती। तो पदार्थका विस्तार कि यह इतने परिमाण है, इसके परिज्ञाका उपाय देशाश ही है, और परिमाणके परिचय बिना पदार्थका ज्ञान भी न हो पायगा इस कारण देशाश मानना अति आवश्यक है। उन देशाशोंसे ही तो यह परिचय होता है कि जिस द्रव्यके जितने अश होते हैं वह द्रव्य उतना ही बडा समझा जाता है। इन देशाशोकी कल्पना करनेसे एक तो विस्तार न जाना जायगा। दूसरे यह दोष है कि सभी द्रव्य बराबर हो जायेंगे। जीव कितना बडा ? जितना बडा पुद्गल। अजी नहीं, पुद्गल तो एक प्रदेशी है। अणुका तो एक ही परिमाण है और जीव असख्यात प्रदेशी है। उसका विस्तार नाना प्रकारोंमे देखा जाता है। हाँ ठीक तो है मगर यह सब जाना कैसे गया ? देशाशके परिज्ञानसे ही जाना गया। अणु एक प्रदेशी है। ऐसे ऐसे असख्यात प्रदेश जीवमे है। जब जाना

गया कि जीवका परिमाण होय अणुके परिमाण होकर असंख्यात गुणा है तो देशांशका कार्य हुआ तब ही तो इसे बड़ा समझा गया। अब देशांश न हो तो सब द्रव्य समान समझे जायेंगे। उनका देशांश न माननेपर उसका विस्तार ही कुछ न होगा। और सभी पदार्थ निरंश एक प्रदेशी हो जायेंगे। पर ऐसा है तो नहीं। इससे यह निर्णय रखना चाहिए कि पदार्थ अखण्ड गुणोंका पिण्ड है और उनमें अनेक देशांश हैं। जिसका समूह अखण्ड है वह एक पदार्थ है। तो यों देश देशांशके माने बिना पदार्थका परिचय नहीं हो सकता। अतः देश और देशांश इनका तो मानना ही पड़ेगा।

देश देशांशके परिचयकी सुगमता — गुण गुणांशकी अपेक्षासे देश देशांश का परिज्ञान सभी जीवोंको प्रायः हो रहा है। गुण गुणांश तो इन्द्रिय द्वारा गोचर नहीं होते, पर देश देशांश इन्द्रिय द्वारा विषयभूत हो रहे हैं। यद्यपि उन स्कन्ध गुणों के पिण्डको कहते हैं, पर उनके साथ ही साथ प्रदेश समूह भी है। गुण पर्यायवान द्रव्य होता है। तो जहाँ पर पदार्थ देख रहे हैं स्कंध पदार्थ मान लीजिए यद्यपि वह परमार्थतः स्वतंत्र द्रव्य नहीं है मगर अणुवोंका ही तो पिण्ड है और वह भी बिखरा हुआ पिण्ड नहीं है, इसी कारण पुद्गलको भी अस्तिकाय कहा है और संख्यात प्रदेश, असंख्यात प्रदेश अनेकरूपमें बताया गया है, इसे ही दृष्टान्तमें लो। जब हम किसी स्कंधको देखते हैं तो क्या नजर आता है ? आकार विस्तार। आकार विस्तार तो कुछ आता नहीं और उस स्कंधको समझा जाय तो ऐसा कोई समझ पा रहा है क्या? देश देशांशकी कुछ विशेष स्पष्टरूपसे प्रतीति हो रही है तो यह देश देशांश अगर नहीं माना जाता, नहीं नजरमें लिया जाता तो पदार्थ ही क्या जाना गया ? तो सिद्ध हुआ कि देशके अभावमें तो द्रव्यकी सत्ता न प्रतीत होगी, इस लिए देशका परिज्ञान करना आवश्यक है और देशांशके न माननेपर या देशांशका अभाव होनेपर सर्व पदार्थ एक देश प्रमाण हो जायेंगे। उन पदार्थोंमें विस्तारकी विभिन्नता न रहेगी कि कौन पदार्थ बड़ा है और कौन पदार्थ छोटा है ? इससे यह स्वीकार करना ही होगा कि देश देशांश के परिचयसे ही हम वस्तुका परिचय करते हैं और यह देश देशांश है।

तत्रासत्त्वे वस्तुनि न श्रेयसाम्य साधकाभावात् ।
एव चैकांशत्वे महतो व्योम्नोऽप्रतीयमानत्वात् ॥ २६ ॥

वस्तुको असत् अथवा एकांशमात्र माननेमे दोष—ऊपरकी गाथामे बताया गया था कि देश, देशांश, गुण, गुणांश इन चारोंमेंसे यदि देशको न माना जाय तो द्रव्यकी सत्ताका ही निश्चय न होगा। इसपर कोई आग्रह करे कि वस्तु अगर असत् ठहरती है तो ठहरने दो। उसका उत्तर इसमें दिया गया है कि वस्तुको असत्

रूप स्वीकार करना ठीक नही है, क्योकि वस्तु असत् स्वरूप है, ऐसा सिद्ध करने वाला कोई भी प्रमाण नही है। प्रत्यक्षसे वस्तुका सत्त्व विदित होता है। है वस्तु, बस इसी के मायने उसका सत्त्व है। अन्य प्रमाणसे भी वस्तुका सत्त्व सिद्ध होता है। दूसरी बात यह है कि यदि वस्तुको असत्रूप मान लेते हैं तो इससे कौन सा कार्य सिद्ध होगा ? फिर तो व्यवहार परमार्थ किसी भी कार्यकी सिद्धि न हो सकेगी। इस कारण देश मानना ही होगा याने सब गुणोका पिण्ड अखण्ड द्रव्य समझना ही होगा। इसी तरह देशाश न माननेपर क्या आपत्ति आती है ? यह बताया था उक्त गाथा मे कि देशाशका अभाव होनेपर सभी पदार्थ एक अंशमात्र रह जायेंगे। तो इसपर भी कोई यदि यह हठ करे कि एक अंशरूप रह जाय सब कुछ, तो उसके उत्तरमे इस गाथामे उत्तरार्द्धमे बताया है कि अंशरूप कोई पदार्थ नही है। आकाश क्या अशरूप है ? वह कितना महान है ? यह बात सर्वजन विदित है। फिर अशमात्र वस्तु माननेसे आकाश महत्ताका ज्ञान कैसे होगा ? इस कारण पदार्थका देशाश भी मानना चाहिए। यो देश देशाँशकी भेदकल्पना जगती है, उससे वस्तुमे जो सत्त्व धर्म है उसकी सप्रतिपक्षता विदित होती है।

किञ्चैतद शा कल्पनमपि फलवत्स्याद्यतोनुमीयेत।
कायत्वमकायत्वं द्रव्याणामिह महत्वममहत्वम्॥ ३०॥

पदार्थमे अशकल्पनाकी फलवत्ता—देशांशके रूपमें जो वस्तुमे अंश कल्पना की गई है अथवा भाव आदिकके रूपमे भी जो अश कल्पनायेंकी गई है वे सब फलवान कल्पनायें है। देखिये पहिले देशके सम्बन्धमें ही विचार करिये। अखण्ड पिण्ड देशरूप पदार्थमे जो देशाश परिकल्पित है अर्थात् बहुत विस्तार वाले एक अखण्ड पदार्थमे जो प्रदेशकी परिकल्पना है इस कल्पनाके होनेसे द्रव्योमे यह भेद सिद्ध होता है कि अमुक द्रव्य अस्तिकाय है और अमुक द्रव्य अस्तिकाय नही है। सिद्धान्तमे जैसे बताया है और ज्ञानसे यह बात विदित होती है कि जीव, धर्म, अधर्म, आकाश ये चार द्रव्य अस्तिकाय हैं और पुद्गल भी उपचारसे अस्तिकाय है। यो ५ तो अस्तिकाय बताये गए और कालद्रव्य अस्तिकाय नही किन्तु अकाय है, यह बताया गया। तो अस्तिकाय और अकायका भेद देशाशकी कल्पनासे ही बन सकता है कि जिस द्रव्यमे दो आदिक बहुत प्रदेश होना वह अस्तिकाय है। और जिस द्रव्यमें एक एक ही प्रदेश हो सदैव, वह अकाय है। इसी प्रकार द्रव्योमे जो यह परिचय किया जाता है कि यह द्रव्य महान है यह द्रव्य छोटा है, यह विभाग भी देशाश कल्पनाके आधारपर ही होता है। तुलना मे भी जब यह विचार किया जाता है कि किससे किसमे प्रदेश अधिक है, कितने अधिक है, तब इस बातोंका समाधान भी देंशाशके आधारपर होता है। इस कारण अशोकी कल्पना करना सफल है और उसका व्यवहार बनता है, वस्तुका यथार्थ परि-

चय भी होता है। किसी भी वस्तुका स्पष्ट परिज्ञान तब होता है जब उसका निजी क्षेत्र, विस्तार ध्यानमे रहता है। यहाँ दिखनें वाले स्कंधोंमे तो यह बात स्पष्ट ही है कि घर चौकी, चटाई पुरुष आदिकका जो बोध है सो वहाँ कुछ प्रदेशका, आकारका बोध होता है तब सम्भव है। तो प्रदेशकार विस्तारका बोध हुए बिना पदार्थका परिचय नहीं हो पाता। अतः देशांशकी कल्पनाका पदार्थ परिचयमे बडा सहयोग है। अब एक शङ्काकारके इस सम्बन्धमे शङ्का है वह नीचेकी गाथामे प्रकट की जाती है।

भवतु विविक्षितमेतन्ननु यावन्तो निरंशदेशांशाः ।
तल्लक्षणयोगादप्यणुवद्द्रव्याणि सन्तु तावन्ति ॥ ३१ ॥

निरंश देशांशमात्र द्रव्य माननेकी आरेका—शङ्काकार कहता है कि आप जो द्रव्यमें निरंश अंशोकी कल्पना करते हो सो कीजिये ! जिस अंशका दूसरा अंश नही हो सकता ऐसे उन अंशोकी गणनाओसे विस्तारका परिचय कराना हो तो किसी द्रव्यमे निरंश अंशकी कल्पना करना है तो कीजिए, पर जितने भी निरंश देशांश हैं अर्थात् जितना एक एक प्रदेश माना है उन एक एक प्रदेशोको एक एक द्रव्य समझ लीजिए। वहाँ यह कल्पना क्यो बनाते हो कि वस्तु तो अखण्ड है और उनमें देशांश है।

निरंश देशांशमात्र द्रव्य माननेकी एक और आरेका—यो जो देशांश है वह प्रत्येक देशांश ही एक–एक द्रव्य है। जैसे परमाणु एक द्रव्य है और फिर जब असंख्यात संख्यात अनन्त परमाणुओका पिण्ड स्कंध होता है तो उन स्कंधोमे उन प्रदेशोंकी कल्पना की जाती है कि इसमे अनन्त प्रदेश हैं परमाणु हैं, असंख्यात प्रदेश अथवा परमाणु हैं। यदि ऐसी वहाँ कल्पना की जाती है तो कल्पना होने दो। परन्तु वास्तविकता तो वहाँ यह ही है कि वह एक–एक निरंश देशांश एक–एक द्रव्य है। एक–एक परमाणु वस्तुतः वह परिपूर्ण एक–एक द्रव्य है। इसी प्रकार जिन पदार्थोंमें भी देशांश माना गया है वे एक–एक देशांश ही एक–एक द्रव्य हैं, ऐसा क्यों नहीं स्वीकार किया जाता ? द्रव्यका जो लक्षण बनाओगे वह लक्षण प्रत्येक अंशोमे जाता ही है। जो स्वतः सिद्ध हो, स्वसहाय हो, अनादि अनन्त हो सभी बातें स्कंधोमें भी घटित हो जाती हैं। फिर जो एक एक देशांश हैं उन्हींको पूरा पूरा द्रव्य मान लेना चाहिये। समुदायको द्रव्य माना है। उसरूपसे भी कोई बाधा नही आती है। एक देशांशमें भी गुण समुदाय उतना ही है, ऐसा स्वीकार किया गया है कि एक द्रव्यमें जितने गुण हैं वे सभी गुण उस द्रव्यके प्रत्येक प्रदेशमें हैं। उनमें यह बटवारा नही है कि द्रव्यके आधे, इस प्रदेशमें यह गुण है, कुछ इस प्रदेशमे यह गुण है, क्योकि द्रव्य द्रव्यको अखण्ड माना और गुणको सर्व प्रदेश व्यापक माना तो इस कथनमे इतना तो

माना ही गया है कि किसी भी द्रव्यमे गुणसमुदाय प्रत्येक प्रदेशमे रहता है और गुण समुदायको द्रव्यं कहते हैं। तो जो एक-एक निरश देशाश है वह भी गुण समुदायरूप है, अत उस हीको द्रव्य कहलीजियेगा। यह शङ्का निरश सिद्धान्तवाद सिद्धान्तकी ओरसे हो सकता है। निरशवादी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चारोमे निरंश अशको परिपूर्ण स्वीकार करते हैं। जैसे द्रव्यमे एक एक अणु पूर्ण द्रव्य है, क्षेत्रमे एक एक प्रदेश पूर्ण क्षेत्री द्रव्य है, कालमे एक एक परिणमन पूर्ण द्रव्य है और भावमे प्रत्येक अविभागी भाव स्वलक्षण भाव पूर्ण द्रव्य है। तो उस ही सिद्धान्तके अनुसार यह शङ्का है कि प्रत्येक निरंश देशाश ही एक एक द्रव्य होना चाहिए। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि—

नैवं यतो विशेषः परमः स्यात्पारिणामिकोऽध्यक्षः।
खण्डैकदेशवस्तुन्यखण्डितानेकदेशे च ॥ ३२ ॥

खण्डस्वरूप एक एक निरश देशांशमात्र वस्तु माननेकी प्रमाणवाधितता—उक्त शङ्का ठीक नही है क्योकि खण्ड स्वरूप देशाशमात्र वस्तु माननेसे अखण्ड स्वरूपकी जो प्रतीति हो रही है उस प्रतीतिमे विरोध आता है। यह बात प्रत्यक्ष है कि अखण्डस्वरूप अनेक प्र शात्मक वस्तुका सत्त्व है। यदि शङ्काकारके कथनके अनुसार देशाशको ही पूरा पूरा द्रव्य मान लिया जाय तो द्रव्य एक प्रदेशी अथवा खण्ड खण्डरूप हो जायेगा, पर अखण्डरूप अनेक प्रदेशी नही ठहर सकता लेकिन वस्तुमें तो सर्वत्र यह विदित हो रहा है कि पदार्थ बहु प्रदेशात्मक एक अखण्ड है। स्कधोकी तरह टुकडे हो जायें, बिखर जायें अणु ऐसी बात नही है। परमार्थत: स्कध भी अखण्ड द्रव्य नही हैं, वह तो अखण्ड अनेक द्रव्योका समुदाय है। जो वस्तुत पदार्थ है जिसका एक परिणमन उन सर्व प्रदेशोंमे होना ही पडता है। वह अखण्ड द्रव्य कहलाता है। जैसे यहाँ हम निरखते हैं कि कोई चौकी यदि जल रही, जलना जिस भागमे हो रहा वही भाग जल रहा, सर्व भाग नहीं जलता, तो वहाँ एक परिणमन सर्वत्र नही हुआ तब उस एक चौकीको हम एक पदार्थ न कह सकेंगे। वह अनन्त परमाणुओका पिण्ड है। हाँ एक परमाणुमे जो परिणमन होगा वह उस अणुमे परिपूर्ण होगा। इस नीति के अनुसार एक जीवमे जो परिणमन होता है वह समग्रमे होता है, किन्तु उसका प्रदेश विस्तार बहुत है तब वहाँ देशाशकी कल्पना करनेसे ही उसका परिचय किया जा सकता है।

प्रथमोद्देशितपक्षो यः परिणामो गुणात्मकस्तस्य।
एकत्र तत्र देशे भवितुं शीलो न सर्वदेशेषु ॥ ३३ ॥

द्रव्यको निरंश देशांशमात्र माननेपर सर्वदेशमें परिणमनकी अनुपपत्ति शङ्काकारने खण्डरूप एक प्रदेशी पदार्थ माननेकी बात कही थी अर्थात् पदार्थमें जब देशांश बताया गया और उस देशांशके पिण्डका नाम पदार्थ कहा तो यह शंका की गई थी कि वह देशांश ही सब प्रथक प्रथक पूर्ण पदार्थ क्यों न मान लिया जाय ? उसके समाधानमे बताया गया था कि खण्डरूप एक देशांशमात्र वस्तु मानने और अखण्ड स्वरूप अनेक देशात्मक पदार्थ माननेमें परिणमनका भी बडा भारी भेद पडता है और तब खण्डरूप एक देशांशको एक द्रव्य माननेमें क्या दोष आता है उसकी बात इस गाथा मे कही जा रही है। देखिये ! यदि एक देशांशमात्रको पूर्ण द्रव्य मान लिया जाय तो गुणोका जो परिणमन होगा वह सम्पूर्ण वस्तुमे न होकर एक ही प्रदेशमे होगा। पदार्थ कितने होते हैं इसका परिचय इस पद्धतिसे मिलता है कि यह निरखो कि कोई भी एक परिणमन कितने पूरेमें होना ही पडा। जितनेमें वह परिणमन हुआ है वह एक पदार्थ है। अब यहाँ मान लिया गया एक एक प्रदेशको एक एक पदार्थ, तो अब उसमे जो गुण परिणमन होगा वह उस ही प्रदेशमे होगा। सर्वत्र अखण्ड अस्तिकायमे न हो पायगा, क्योंकि शङ्काकार एक देशांशको ही वस्तु समझ रहा है तब गुण परिणमन भी उस प्रदेशमे ही होगा, सर्वत्र नही हो सकता है। कोई यहाँ ऐसा आग्रह करले कि अगर गुण परिणमन एक प्रदेशमे ही हो जाता है तो होने दो। सो ऐसा आग्रह नहीं किया जा सकता। उसमे प्रत्यक्षसे बाधा आती है। इसी बातका अब वर्णन करते हैं।

तदसत्प्रमाणबाधितपक्षत्वादक्षसंविदुपलब्धेः।
देहैकदेशविषयस्पर्शादिह सर्वदेशेषु ॥ ३४ ॥

द्रव्यके एक देशमे ही परिणमन माननेकी प्रमाणबाधितता— खडस्वरूप एक देशांशका पूर्ण द्रव्य मान लेनेमे यह दोष बताया गया था कि तब एक परिणमन एक प्रदेशमें ही हो जायगा। तो यों एक देशमे परिणमनका प्रसङ्ग आता है। कोई यहाँ ऐसा ही आग्रह करले कि चलो गुणोका परिणमन एक देशमे ही रहा आये सो इस गाथामें बताया है कि अपने मनके अनुसार कुछ भी समझ लेनेसे बात नही बनती। यह तो प्रत्यक्ष बाधित है कि गुणोका परिणमन एक प्रदेशमें ही नहीं होता, किन्तु उस समस्त अस्तिकायमे होता है। जिसमे प्रमाणसे बाधा आये वह पक्ष किसी भी प्रकार ठीक नही माना जा सकता। देखो यहीं परख लो—इन्द्रियजन्य ज्ञानसे यह बात प्रतीत होती है कि शरीरके एक देशमे अगर कोई स्पर्श हो तो सम्पूर्ण शरीरमे रोमाच होता है। तो वहाँ हुआ क्या कि एक देशके स्पर्शसे तुरन्त हुआ समग्र आत्मामे ज्ञान और वहाँ उस स्पर्शका लगाव इस ढंगका है उस आत्मामें विकार इस ढंगका है, शरीरमें लगाव भी इस पद्धतिसे है कि उस स्पर्शसे सारे देहमे रोमाञ्च हो

जाता है। बात केवल इतनी ही बताना है कि एक अनुभवन वस्तुके समग्र स्वक्षेत्रमें होता है। देखिये ! शरीरप्रमाण आत्मद्रव्य है। इस कारण शरीरके एक स्थानमें एक देशमें स्पर्श होनेसे सारे शरीरमें रोमाञ्च होता है। या यो निरख लीजिये कि जब कभी आत्मामे कोई वेदना होती है तो वह समग्र आत्मामे होती है। यदि शङ्काकार के कहनेके अनुसार एक एक आत्मा मान लिया जाय तो शरीरके जिस हिस्सेमे चोट लगी हो, पीड़ा केवल उतने हिस्सेमे ही होनी चाहिए। लेकिन अनुभव तो दुःखकी पीडाका सर्वत्र हुआ है ना ! वेदनासे ऊपर उठकर अब ज्ञानकी बात समझिये ! जब कभी यह जीव ज्ञान करता हो तो बतलाओ ज्ञानका अनुभवन परिणमन जानन क्या किसी एक देशमे होता है कि आत्माके सर्व देशमे होता है ? इस सम्बन्धमे इतनी जानकारी और वेदनाओकी स्थितियाँ ऐसी है कि वे पर द्रव्यका निमित्त पाकर होती है। इस कारण तुरन्त ऐसा लगता है कि लो, वेदना भी इस हिस्सेमे हुई और ज्ञान भी मस्तकमे हुआ है। इस तरहका कुछ एक देशमें होने जैसा प्रतिभास करते हैं कोई लेकिन यह बात तथ्यभूत नही है। वह तो निमित्तकी प्रधानतामे कथन है, भले ही शरीरके किसी अवयवमे फोडा फुन्सी हो तो लोग बताते हैं कि हमारे अमुक अङ्गमे दर्द है, और इलाज भी उसी अवयवका किया जाता है। इतनेपर भी बात ऐसी है कि उसके जितनी वेदना होती है, जितना भी कष्टका अनुभव होता है वह आत्मामे सर्वत्र होता है। इसी प्रकार इन्द्रिय मन आदिक विशिष्ट अवयवोके निमित्तसे यह जीव ज्ञान करता है। तो ज्ञान करते हुएमे भी वे प्रधानता देते हैं उस उत्पत्तिके साधनोकी लेकिन नैमित्तिक होनेपर भी यह ज्ञान आत्माके सब प्रदेशोमे होता है। विवेक और अन्तर्ज्ञान से यह बात स्पष्ट विदित हो जाती है। तो यो यदि एक एक देशांशको पूर्ण द्रव्य मान लिया जाय तो यह दोष आता है कि फिर परिणमन पूर्ण वस्तुमे न होगा, एक ही अंशमे होगा, पर ऐसा है ही नही, यह तो प्रत्यक्षसे प्रमाणित है। अब देखिये ! इस ओर कि यदि अखण्ड अनेक प्रदेशी द्रव्य मान लेते हैं तो किस तरह वहाँ परिणमन सिद्ध होता है ?

पृथगेतरपक्षे खलु यः परिणामः स सर्वदेशेषु।
एको हि सर्वपर्वसु प्रकम्पते ताडितो वेणुः ॥ २५ ॥

दृष्टान्तपूर्वक बहुप्रदेशी अखण्ड द्रव्यकी सिद्धि—अनेक प्रदेशी अखण्डरूप द्रव्य माननेसे जो परिणमन होगा वह सम्पूर्ण वस्तुमे होगा। इस गाथामें एक दृष्टान्त दिया गया है कि देखिये ! जैसे एक वेंत (बांस) में अनेक पोर होते हैं, बहुत लम्बा भी होता है, सो उस बांसका एक पोर हिलाया जानेपर सारा बांस हिलने लगता है। यद्यपि बांस एक द्रव्य नही है, वह अनन्त परमाणुओका पिण्ड है, और स्कंध अवस्था मे माननेसे यह एक द्रव्यकी बात बतानेके लिए दृष्टान्त बन गया है। जैसे वेंतको एक

तरफसे हिलानेपर सब देश हिल जाता है, यो ही द्रव्यमें कोई परिणमन हो वह सब प्रदेशोंमे होगा, यह देशांश और देशके प्रसङ्गमें दृष्टान्त दिया है। गुण और गुणांशके लिए दृष्टान्त नही दिया गया। तो चूंकि अनन्त परमाणुओंके प्रदेश एक स्कंधमें बंध रूप हुए हैं, इस कारण देश देशांशके दृष्टान्तमे यह उपर्युक्त बैठ जाता है। बेंत एक तरफसे हिलनेपर सर्वदेशमे हिलता है, ऐसे ही द्रव्यमे एक परिणमन होनेपर वह परिणमन द्रव्यके समस्त प्रदेशोंमे होता है। यदि उस बेंतको अखण्ड न माना जाय तो यों ही चाहिये था कि जिस ओर हिलाया बस, उस ओर ही हिल जाती, पर सब ओरसे वहाँ समान हिलना देखा गया है सो यह बात सिद्ध हो जाती है कि वह बेंत एक अखण्ड है। यों ही वस्तुमें एकमें जो परिणमन हो रहा है वह सब प्रदेशोंमें हो रहा है अतएव सब प्रदेशात्मक वह एक अखण्ड पदार्थ है, यह सिद्ध होता है।

एक प्रदेशवदपि द्रव्य स्यात्खण्डवर्जितः स यथा।
परमाणुरेव शुद्धः कालाणुर्वा यथा स्वतः सिद्धः॥ ३६॥

एकप्रदेशी द्रव्यमे भी द्रव्यत्वलक्षणकी सुघटितता—इस गाथामें यह बताया गया है कि कोई पदार्थ एक प्रदेशी भी होता है तो वह पदार्थ उतना ही पूर्ण होता है। उसका विस्तार नही है, अतएव द्रव्यका जो लक्षण है वह उतनेमें घटित हो जायगा और परिणमन भी उतनेमें परिसमाप्त हो जायगा। एक प्रदेश वाला है द्रव्य परमाणु और कालाणु। वह अपने आपमे एक प्रदेशी है, उसका भी खण्ड नहीं होता। एक प्रदेशी पदार्थका खड नही होता। इसमें तो किसीको विवाद भी नही है। यह अखण्ड एक प्रदेशी द्रव्य, लेकिन यह भी स्वतः सिद्ध है, अनादि अनन्त है, स्वसहाय है और निर्विकल्प है। द्रव्यका, सत्त्वका जो लक्षण बताया गया है वह सब द्रव्योंमें घटित होता है। चाहे वह द्रव्य अस्तिकाय हो, चाहे वह अकाय ही एक परमाणु भी सन्मात्र है, उसका जो सत्त्व है वह उसका लक्षण है। अथवा इतने भेदमे ही क्यो जाय? वह परमाणु है, बस जो है सो है, सन्मात्र है, क्योंकि स्वतःसिद्ध है, किसी भी सत्को किसीने बनाया नहीं। जो भी सत् है वह अपने आप ही सिद्ध है और इसी कारण वह परमाणु अनादिसे है, अनन्त काल तक है, स्वसहाय है, किसी दूसरे पदार्थ की अपेक्षासे दूसरेके सहयोगसे परमाणुमें सत्त्व आया हो, यह बात कभी भी नही कही जा सकती। अतएव वह अखण्ड है, वचनके अगोचर है, इसी प्रकार काल द्रव्यमे भी यह लक्षण घटित होता है, लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य अवअवस्थित है। जो बात जैसी है वैसी ही आचार्य सतोंने बताई है। उस अपने-अपने काल द्रव्यके स्थानपर जो पदार्थ मौजूद है उस पदार्थके परिणमनका कारण उस काल द्रव्यका सकाय परिणमन है। और, यो लोकाकाशमें जितने भी पदार्थ हैं सब पदार्थों का परिणमन होता है कालद्रव्यके समय परिणमनके निमित्तसे। लेकिन आकाश तो

लोकाकाशके बाहर भी है, लेकिन है ना यह आकाश अखण्ड। तो किसी भी जगह निमित्तके सन्निधान होनेपर किसी भी द्रव्यमे जो परिणमन होगा वह परिणमन समस्त द्रव्योंमे होता है। इस कारण यहाँके कालद्रव्यके परिणमन ही उस सम्पूर्ण आकाशके परिणमनमे निमित्त होते है। तो यो काल अरूपी एक प्रदेशी है और वह भी स्वतः सिद्ध है, अनादि अनन्त है अपने सहायपर ही है। कालका सत्त्व भी किसी परकी अपेक्षाके सहयोगसे नही है, अतएव वचनके अगोचर है। ऐसे एक प्रदेशी द्रव्यमे भी जो परिणमन है वह अपने आपमे सम्पूर्ण होता है।

न स्याद्द्रव्यं क्वचिदपि बहु प्रदेशेषु खण्डितो देशः।
तदपि द्रव्यमिति स्यादखण्डितानेकदेशमदः॥ ३७॥

बहुप्रदेशी द्रव्योमे सर्वप्रदेशात्मक अखण्ड द्रव्यमें द्रव्यत्वलक्षणकी सुघटितता—यद्यपि कालाणु और परमाणु एक प्रदेशी द्रव्य है सो रहे। वह एक प्रदेशी होकर अपने आपमे अखण्ड है। वहाँ अंशोकी कल्पनाकी गुंजाइस भी नहीं है। अतः स्पष्टतया अखण्ड प्रतीत होती है, लेकिन ऐसा भी कोई द्रव्य नही है जो बहु-प्रदेशी होकर भी खण्डित रह सके। ऐसे द्रव्य जीव द्रव्य, धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य हैं, इनके कभी भी अंश न होगे। जैसे जीव असख्यातप्रदेशी है और उसका संकोच विस्तार होनेके कारण अनेक प्रकारका फैलाव भी है, इतनेपर भी कोई जीव खण्डप्रदेशी नही होता, इस कारण जो अस्तिकाय है, बहु प्रदेशी द्रव्य है वह अखण्ड-रूप ही है। उसमें जो देशाश हैं वे परिकल्पित हैं। देशाश ही समस्त द्रव्य न बन जायेंगे। कभी दिखनेमे ऐसा आता है कि युद्ध करते समय किसी मनुष्यका शिर अलग हो गया फिर भी धड कुछ सेकेण्ड तक अपनी हरकत करता है, शिर अपनी जगह कुछ चलित रहता है। तो कहीं वहाँ आत्माके खण्ड नही हुए, देहका खण्ड हो गया। अब कुछ सेकेण्ड जो यह बात रहती है तो वहाँ एक ही अखण्ड है और वह शिर धड दोनो मे और दोनोके अतरालमे बराबर एक आत्मा है। कुछ समय बाद उसका प्राणात होता और समूचा ही निकलकर दूसरे किसी शरीरको धारण कर लेता है। अन्य भी ऐसी अवस्थायें हैं जिनमे आत्माका कोई विभिन्न प्रकारसे विस्तार होता है, लेकिन है सर्वत्र यह अखण्ड द्रव्य। तो देशमे देशाश परिकल्पित है और देशको समझनेके लिए देशाशकी कल्पना करना अति आवश्यक है। अथवा जैसे जो पदार्थ हैं उसमे उस तरहकी परिकल्पना चलती है। जीवादिक पदार्थं विस्तार तो है ही। इसे कोई मना नही कर सकता। एक प्रदेशी नही है एक प्रदेश। अब उस विस्तारको जानने और समझानेके लिए जो भी उपाय है वह इस ही प्रकारका उपाय है कि उसके प्रदेश समझ कर उन प्रदेशोकी गणनासे उस पदार्थका विस्तार बताया जाय, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नही है। जैसे आकाश अनन्त प्रदेशी है, तो उसकी कुछ सीमा बनाकर

तरफसे हिलानेपर सब देश हिल जाता है, यों ही द्रव्यमें कोई परिणमन हो वह सब प्रदेशोंमें होगा, यह देशांश और देशके प्रसङ्गमें दृष्टान्त दिया है। गुण और गुणांशके लिए दृष्टान्त नहीं दिया गया। तो चूंकि अनन्त परमाणुओंके प्रदेश एक स्कंधमें बंध रूप हुए हैं, इस कारण देश देशांशके दृष्टान्तमें यह उपयुक्त बैठ जाता है। बेंत एक तरफसे हिलनेपर सर्वदेशमें हिलता है, ऐसे ही द्रव्यमें एक परिणमन होनेपर वह परिणमन द्रव्यके समस्त प्रदेशोंमें होता है। यदि उस बेंतको अखण्ड न माना जाय तो यों ही चाहिये था कि जिस ओर हिलाया बस, उस ओर ही हिल जाती, पर सब ओरसे वहाँ समान हिलना देखा गया है सो यह बात सिद्ध हो जाती है कि वह बेंत एक अखण्ड है। यों ही वस्तुमें एकमें जो परिणमन हो रहा है वह सब प्रदेशोंमें हो रहा है अतएव सब प्रदेशात्मक यह एक अखण्ड पदार्थ है, यह सिद्ध होता है।

एक पूदेशवदपि द्रव्यं स्यात्खण्डवर्जितः स यथा।
परमाणुरेव शुद्धः कालाणुर्वा यथा स्वतः सिद्धः ॥ ३६ ॥

एकप्रदेशी द्रव्यमें भी द्रव्यत्वलक्षणकी सुघटितता—इस गाथामें यह बताया गया है कि कोई पदार्थ एक प्रदेशी भी होता है तो वह पदार्थ उतना ही पूर्ण होता है। उसका विस्तार नहीं है, अतएव द्रव्यका जो लक्षण है वह उतनेमें घटित हो जायगा और परिणमन भी उतनेमें परिसमाप्त हो जायगा। एक प्रदेश वाला है द्रव्य परमाणु और कालाणु। वह अपने आपमें एक प्रदेशी है, उसका भी खण्ड नहीं होता। एक प्रदेशी पदार्थका खंड नहीं होता। इसमें तो किसीको विवाद भी नहीं है। यह अखण्ड एक प्रदेशी द्रव्य, लेकिन यह भी स्वतः सिद्ध है, अनादि अनन्त है, स्वसहाय है और निर्विकल्प है, द्रव्यका, तत्त्वका जो लक्षण बताया गया है वह सब द्रव्योंमें घटित होता है। चाहे वह द्रव्य अस्तिकाय हो, चाहे वह अकाय ही एक परमाणु भी सन्मात्र है, उसका जो सत्त्व है वह उसका लक्षण है। अथवा इतने भेदमें ही क्यो जाय ? वह परमाणु है, बस जो है सो है, सन्मात्र है, क्योंकि स्वतःसिद्ध है, किसी भी सत्को किसीने बनाया नहीं। जो भी सत् है वह अपने आप ही सिद्ध है और इसी कारण वह परमाणु अनादिसे है, अनन्त काल तक है, स्वसहाय है, किसी दूसरे पदार्थकी अपेक्षासे दूसरेके सहयोगसे परमाणुमें सत्त्व आया हो, यह बात कभी भी नहीं कही जा सकती। अतएव वह अखण्ड है, वचनके अगोचर है, इसी प्रकार काल द्रव्यमें भी यह लक्षण घटित होता है, लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य अवअवस्थित है। जो बात जैसी है वैसी ही आचार्य सतोंने बताई है। उस अपने-अपने काल द्रव्यके स्थानपर जो पदार्थ मौजूद है उस पदार्थके परिणमनका कारण उस काल द्रव्यका सकाय परिणमन है। और, यो लोकाकाशमें जितने भी पदार्थ हैं सब पदार्थोंका परिणमन होता है कालद्रव्यके समय परिणमनके निमित्तसे। लेकिन आकाश तो

लोकाकाशके बाहर भी है, लेकिन है ना यह आकाश अखण्ड । तो किसी भी जगह निमित्तके सन्निधान होनेपर किसी भी द्रव्यमे जो परिणमन होगा वह परिणमन समस्त द्रव्योमे होता है । इस कारण यहाँके कालद्रव्यके परिणमन ही उस सम्पूर्ण आकाशके परिणमनमे निमित्त होते है । तो यो काल अरूपी एक प्रदेशी है और वह भी स्वत सिद्ध है, अनादि अनन्त है अपने सहायपर ही है । कालका सत्त्व भी किसी परकी अपेक्षाके सहयोगसे नही है, अतएव वचनके अगोचर है । ऐसे एक प्रदेशी द्रव्यमे भी जो परिणमन है वह अपने आपमे सम्पूर्ण होता है ।

न स्याद्द्रव्यं क्वचिदपि बहु प्रदेशेषु खण्डितो देशः ।
तदपि द्रव्यमिति स्यादखण्डितानेकदेशमदः ॥ ३७ ॥

बहुप्रदेशी द्रव्योमें सर्वप्रदेशात्मक अखण्ड द्रव्यमें द्रव्यत्वलक्षणकी सुघटितता—यद्यपि कालाणु और परमाणु एक प्रदेशी द्रव्य है सो रहे । वह एक प्रदेशी होकर अपने आपमे अखण्ड है । वहाँ अशोकी कल्पनाकी गुंजाइस भी नहीं है । अत स्पष्टतया अखण्ड प्रतीत होती है, लेकिन ऐसा भी कोई द्रव्य नही है जो बहु-प्रदेशी होकर भी खण्डित रह सके । ऐसे द्रव्य जीव द्रव्य, धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य हैं, इनके कभी भी अश न होगे । जैसे जीव असख्यातप्रदेशी है और उसका संकोच विस्तार होनेके कारण अनेक प्रकारका फैलाव भी है, इतनेपर भी कोई जीव खण्डप्रदेशी नही होता, इस कारण जो अस्तिकाय है, बहु प्रदेशी द्रव्य है वह अखण्ड-रूप ही है । उसमें जो अाश हैं वे परिकल्पित हैं । देशाश ही समस्त द्रव्य न बन जायेंगे । कभी दिखनेमे ऐसा आता है कि युद्ध करते समय किसी मनुष्यका शिर अलग हो गया फिर भी धड कुछ सेकेण्ड तक अपनी हरकत करता है, शिर अपनी जगह कुछ चलित रहता है । तो कही वहाँ आत्माके खण्ड नही हुए, देहका खण्ड हो गया । अब कुछ सेकेण्ड जो यह बात रहती है तो वहाँ एक ही अखण्ड है और वह शिर धड दोनो मे और दोनोके अतरालमे बराबर एक आत्मा है । कुछ समय बाद उसका प्राणात होता और समूचा ही निकलकर दूसरे किसी शरीरको धारण कर लेता है । अन्य भी ऐसी अवस्थायें हैं जिनमे आत्माका कोई विभिन्न प्रकारसे विस्तार होता है, लेकिन है सर्वत्र यह अखण्ड द्रव्य । तो देशमे देशाश परिकल्पित है और देशको समझनेके लिए देशाशकी कल्पना करना अति आवश्यक है । अथवा जैसे जो पदार्थ हैं उसमें उस तरहकी परिकल्पना चलती है । जीवादिक पदार्थ विस्तार तो हैं ही । इसे कोई मना नही कर सकता । एक प्रदेशी नही है एक प्रदेश । अब उस विस्तारको जानने और समझानेके लिए जो भी उपाय है वह इस ही प्रकारका उपाय है कि उसके प्रदेश समझ कर उन प्रदेशोकी गणनासे उस पदार्थका विस्तार बताया जाय, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नही है । जैसे आकाश अनन्त प्रदेशी है, तो उसकी कुछ सीमा बनाकर

और यहाँ कोई अविभागी नापसे जैसे कोई इंच या सूतका नाप करे उस नापसे उसका परिमाण बता देते हैं कि यह एक हाथ है, यह एक गज है। तो अविभागी परिमाण है एक प्रदेश, जिसको कोई मनुष्य कर ही नहीं सकता। और, न एक एक प्रदेश करके कोई माप सकता, लेकिन है यह अविभागी अंश। तो उन देशांशोंसे जैसे आकाशका कोई सीमित परिमाण बना दिया जाता है ऐसे ही प्रत्येक द्रव्यका विस्तार प्रदेश गणनापर निर्भर होता है। तो जो भी बहु प्रदेशी द्रव्य हैं उनमें देशांश माने गए हैं। उस द्रव्यको समझनेके लिए वे समस्त द्रव्य अखण्ड ही हैं। देशांशको पूर्ण द्रव्य मानकर जितने देशांश हैं उतने ही द्रव्य माने जायें यह बात युक्तिसंगत नहीं है।

अथ चैव ते प्रदेशाः सविशेषा द्रव्यसंज्ञया भणिताः।
अपि च विशेषाः सर्वे गुणसंज्ञास्ते भवन्ति यावन्तः॥ ३८॥

द्रव्यनामसे सविशेष प्रदेशोंका कथन और गुण नामसे विशेषोंका कथन इस प्रकार यहाँ देश और देशांशका वर्णन किया गया। देश मायने वह समस्त द्रव्य और देशांश मायने उस द्रव्यके एक-एक प्रदेश। तो यहाँ जिन प्रदेशोंकी बात कही गई वे प्रदेश प्रदेश ही क्या हैं? जो पदार्थका विशेष धर्म है उस धर्मसे युक्त है। अथवा यों कहो कि पदार्थ स्वयं अपने असाधारण धर्मको लिए हुए है। कितने परिमाण वाला है, यह बात देशांशने बतायी गयी है। तो जिन देशांशोंका वर्णन किया गया है वे देशांश गुणसहित हैं और यों गुणसहित नहीं कि देशांश कोई भिन्न तत्त्व हो, गुण भिन्न तत्त्व हो। और फिर उन दोनोंका मेल किया गया हो। नहीं, वह गुण पिण्ड ही है और उन गुण पिण्डोंके विस्तारमें देशांश दिखाया गया है। तब गुणसहित उन्हीं देशांशकी द्रव्य संज्ञा होती है। द्रव्य मायने क्या कि सविशेष देशांशका पिण्ड। और गुण मायने क्या? उन देशांशोंमें रहने वाले विशेष। जैसे जीव द्रव्य है वह एक बड़े विस्तारको लिए हुए है तो उस विस्तारमें, उन प्रदेशोंमें कोई कैवल्य हो अर्थात् मात्र प्रदेश हो ऐसी बात क्या हो सकती है? कुछ भी नहीं। जो भी प्रदेश है वह गुणमय है। गुणोंको छोड़कर प्रदेशका कोई वहाँ अस्तित्त्व नहीं है। वह गुण ही उतने विस्तारमें है, उसको विस्तारके लिए यह देशांश है। द्रव्य अनन्त गुणोंका समूह है। इस कारण जितने भी द्रव्यके प्रदेश हैं सबमें अनन्त गुणोंका अंश है। यहाँ एक विस्कम्भके रूपसे यह गुणोंके अंशकी बात कही गई है। वैसे गुणका स्वरूप कहीं फैलावके रूपमें नहीं बताया जा सकता। वह तो भावरूप है, और उसका परिचय ऊर्ध्वांशके रूप में तो बताया गया है, पर एक विस्कम्भके अंशरूपमें नहीं बताया गया क्योंकि इस प्रकार गुणका जो स्वरूप मर्म है वह परिचयमें नहीं आता। लेकिन प्रदेश गुणसे भिन्न चीज कुछ नहीं है। तब उन प्रदेशोंका और द्रव्यको समझानेके लिए कि है क्या वहाँ वास्तविक, यहाँ एक फैलाव रूपमें गुणांश समझाया गया है। जिससे यह ज्ञान होता

कि उन गुणो सहित जो प्रदेश हैं उनका पिण्ड ही द्रव्य कहलाता है।

गुणरहित द्रव्यकी व द्रव्यसे पृथक गुणकी असिद्धि—जैसे जीव द्रव्यमे ज्ञानगुण है। ज्ञान गुणसे अलग कर लिया जाय बुद्धिमें और फिर ज्ञान रहित इस जीवके प्रदेश देखे जायें तो क्या मिलेगा ? द्रव्यके स्वक्षेत्रकी विधि ही यही है। वह स्वक्षेत्र गुणमय है, गुणरहित क्षेत्र नही है। जैसे आकाशमें अनेक पदार्थ पडे हैं, तो यो उस क्षेत्रसे इन पदार्थोंकी विभिन्नता है। तभी यों भी हो सकता है कि आकाशके उस भागसे उठाकर उन पदार्थोंको दूसरी जगह डाल दिया जाय तब उन पदार्थोंसे रहित आकाश रह गया। ऐसी बात वहाँ देखी जाती है, किन्तु आकाश भिन्न सत् है, और जो अनेक पदार्थ रखे हुए हैं वे भिन्न सत् हैं, किन्तु स्वक्षेत्रमें यह पद्धति नही बन सकती। वह स्वक्षेत्र उस वस्तुके प्रदेश गुणमय हैं। गुणोंको ही प्रदेशके रूपमे यहाँ समझाया गया है। अतएव गुण प्रदेशसे जुदे हैं जिससे कि यह सिद्धान्त बन सके कि गुण जुदा सत् है और देशांश अथवा देश जुदा सत् है। एक इस ही पदार्थकी विशेषता ही बतायी जानेके लिए आधार आधेय भावसे द्रव्य और गुणका कथन होता है। जैसे जीवमे ज्ञान गुण है। कहीं जीव प्रथक हो ज्ञान प्रथक हो ऐसी बात नही है। ज्ञानमय ही जीव है। तब जीवका अब जितना विस्तार है वह विस्तार क्या है ? उन अखण्ड गुणोका विस्तार है। वस्तुत: पदार्थ अवक्तव्य है। अवक्तव्य होनेपर भी इस मनुष्यको ऐसा विशिष्ट मन मिला है, ऐसा ज्ञान विकास है कि जिसके द्वारा उस अखण्ड वस्तुके मर्मको हम कुछ समझ सकते हैं और कुछ बता सकते हैं। वस्तु सर्वथा ही अवक्तव्य नही है, किन्तु वक्तव्यकी विधिसे जब वस्तुका मर्म विदित होता है तभी अवक्तव्यपनेकी बात विदित होती है। वक्तव्य होकर अवक्तव्य है, कुछ वक्तव्यता हुए बिना अवक्तव्यपनेकी महिमा भी नही जानी जा सकती है। तो देशमे अर्थात् उस द्रव्यमे जो देशांश बताया गया है वह देशांश क्या है ? अनन्त गुणोका वह विस्तार है। और उसका ही वह अंश है। तब द्रव्य नाम हुआ गुण सहित देशांशोका अखण्ड पिण्ड। यहाँ तो देश देशांश और गुणकी चर्चा की है और तीनोकी अखण्डता अभिन्नता बताया ? है उस सम्बन्धमें अब वर्णन करते हैं।

तेषामात्मा देशो नहि ते देशात्पृथक्त्वसत्ताकाः।
नहि देशे हि विशेषाः किन्तु विशेषैश्च तादृशो देशः॥ ३६॥

द्रव्यकी गुणात्मकता—उन गुणोंका आत्मा ही देश है। गुणोंका समूह यहाँ गुणोका आत्मा इस शब्दसे कहा गया है। अर्थात् वह समूह कोई भिन्न-भिन्न पदार्थोंका नही है, किन्तु वह देश गुणात्मक ही है। देशसे भिन्न गुणोकी सत्ता नही है इसी कारण तुम नहीं कह सकते कि देशमे गुण रहते हैं। किन्तु उन गुणोंका आत्मा

ही देश है, द्रव्य हैं। भिन्न-भिन्न सत् पदार्थोमे कारकभेदकी बात बताई जाती है पर जो स्वरूप है वही है, उसको समझानेके लिए भेद करके बताया जाता है, वहाँ तो वह सब तन्मय ही है। तो यह देश अथवा द्रव्य गुणमय है। गुणसे पृथक देश हो और फिर उन देशोमे गुणोका समवाय हो इस तरहसे उसे असाधारण धर्म वाला माना जाय यह बात नही बनती। कुछ दार्शनिक ऐसा मानते हैं कि पदार्थ ७ प्रकारके होते हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव तो उन्होंने द्रव्यको और गुणको पृथक पृथक पदार्थ माना है अर्थात् गुणोंकी सत्ता जुदी है, द्रव्यकी सत्ता जुदी है। और वहाँ द्रव्यको आधार माना है, गुणोको आधेय माना है। द्रव्यमें गुणोका समवाय माना है, लेकिन न आधार आधेय भाव है, न समवाय सम्बन्ध है, न द्रव्य और गुण पृथक पृथक सत्ता है, किन्तु वह द्रव्य ही गुणात्मक है। एक पदार्थकी विशेषता बताई जा रही है। कहीं वह विशेषता जुदा सत् हो पदार्थ जुदा सत् हो ऐसा नही बन जाता गुणात्मक ही द्रव्य है। अतएव द्रव्य आधार है, गुण आधेय है, यह बात नहीं बनती। किन्तु व्याप्य व्यापक भाव बताकर व्यापकको आधार और व्याप्यको आधेय रूपसे समझानेकी पद्धति है। यो देश, देशांश, गुण, गुणांश ये चार भेद किए जाने आवश्यक हैं, और इन्हीं भेदोकी वजहसे सत्ताको सप्रतिपक्ष कहा गया है।

अत्रापि च संदृष्टिः शुक्लादीनामिय तनुस्तन्तुः।
नहि तन्तो शुक्लाद्याः किन्तु सिताद्यैश्य तादृशस्तन्तुः॥ ४०॥

दृष्टान्तपूर्वक द्रव्यकी गुणात्मकताका विवरण—गुण और गुणीमें भेद नहीं है। गुणोंका ही अभेद पिण्ड द्रव्य कहलाता है। इस विषयको समझानेके लिए इस गाथामे तंतुका दृष्टान्त दिया जा रहा है। जैसे डोरा शुक्ल आदिक गुणोका ही शरीर है। कही शुक्लादिक गुण अलग हो, डोरा अलग हो, और यो बताया जाय कि देखो इस डोरेमे सफेदी आदिक गुण है सो ऐसा नहीं कहा जा सकता। भले हीं लोक व्यवहारके लिए उस अभिन्न गुण गुणीका भी आधार आधेय भाव करके कथन किया जाता है। उसका कारण है व्याप्य व्यापक भाव अर्थात् पदार्थमें गुण अनेक होते हैं। तो अनेक होनेके कारण गुण व्याप्य हुए जो गुण है सो ही रहा। दूसरा गुण नहीं बना, लेकिन गुणी व्यापक है अर्थात् उसमे यह भी गुण है और भी गुण हैं, इस तरह का बोध होता है। तो व्यापकको आधार बनाकर व्याप्यको आधेयकी बात व्यवहारमे कही जाती है, किन्तु परमार्थतः गुण गुणी अभिन्न है इस कारण गुणीमें गुण है, डोरेमें सफेदी आदिक गुण हैं यो कहना युक्तिसगत नही है किन्तु यह कहना चाहिए, कि शुक्ल आदिक गुणोंके द्वारा ही डोरा वहाँ बना है, अर्थात् शुक्ल आदिक गुणोका अभेद पिण्ड ही वह डोरा है यो ही गुणोके द्वारा वह द्रव्य वैसा है याने गुणोका अभेद पिण्ड वह पदार्थ है ? तो गुणोसे पृथक द्रव्य कोई वस्तु नहीं किन्तु गुणमय ही है।

गुण गुणी अभेद हैं तब तो वे अवक्तव्य हैं, अखण्ड हैं। इस अखण्डमे देश देशांशका गुण गुणांशका भेद कहना इसका कारण क्या है ? इस शङ्काके समाधानमे यह प्रसंग चल रहा है। तो वहाँ भेद व्यवहार कारण बताया गया। उसका ही एकान्त करके जब शङ्काकारने यह प्रश्न किया, तब भिन्न ही मान लीजिए। गुण भिन्न हैं, पदार्थ भिन्न हैं। फिर उनका समवाय होता है तब गुणोकी व्यवस्था बनती है। इस एकान्त का भी निराकरण करके यह निर्णयमें आया कि गुण और गुणी परमार्थतः अभिन्न तत्त्व हैं।

अथ चेद्भिन्नो देशो भिन्ना देशाश्रिताविशेषाश्च।
तेषामिह संयोगाद्द्रव्यं दुण्डीव दुण्डयोगाद्वा ॥ ४१ ॥

विभिन्न विभिन्न देश और देशाश्रित विशेषोके संयोगसे द्रव्य माननेकी आरेका—अब शङ्काकार पुनः आशङ्का करता है कि यदि देश भिन्न माना जाय और देशाश्रित विशेषोको भिन्न माना जाय और फिर संयोगको द्रव्य मान लिया जाय, जैसे कि दंडके सम्बन्धसे पुरुषको डडी कहते हैं तो इस व्यवस्थामे क्या दोष है ? यह शङ्का पहिले भी की गई थी और वह भिन्न भिन्न रूपसे सिद्ध करनेकी विधिमें कहा गया था यहाँ दृष्टान्त देते हुए संयोग द्वारा गुणी सिद्ध करनेकी बात कही जा रही है। जैसे पुरुष निराला है और डंडा अलग चीज है, तब पुरुष डंडेको पकडता है, डंडेका सयोग होता है तो उस पुरुषको डंडी कहते हैं अर्थात् यह डंडा वाला है। ऐसे ही गुण अपनी सत्ता रखता है और द्रव्य अपनी सत्ता रखता है। द्रव्यमें द्रव्यपना है, गुणोमे गुणपना है, फिर भी भिन्न भिन्न द्रव्य गुणोका जब सयोग होता है तब वे गुणी कहलाते हैं, द्रव्य कहलाते हैं। ऐसी व्यवस्था माननेमें क्या दोष है? ऐसी आशङ्का की जारही है।

नैवं हि सर्वसङ्कर दोषत्वाद्वा सुसिद्धिदृष्टान्तात्।
तत्किं चेतनयोगादचेतनं चेतनं न स्यात् ॥ ४२ ॥

गुण और द्रव्यको भिन्न-भिन्न मानकर सम्बन्ध माननेमें सर्वसंकरदोष की आपत्ति--समाधानमे कहते हैं कि उक्त शङ्का ठीक नहीं है क्योकि द्रव्यको भिन्न और गुणोको भिन्न मान लेनेपर यहाँ सर्व संकर दोष आयगा। जब गुण भिन्न मान लिया गया और पदार्थ भिन्न मान लिया गया तो अब जो भिन्न हो गए उनमे कोई सम्बन्ध या अभेदकी बात तो रही नही कि यह गुण इसी द्रव्यमे रहा करे। वह तो स्वतन्त्र वस्तु है। अब उस गुणका सम्बन्ध आज अखण्ड द्रव्यमे है तो फलत. भिन्न द्रव्यमें भी हो सकता है। जैसे एक दृष्टान्त लीजिए ! जीव द्रव्य है और उसमे ज्ञान गुण माना गया है। तो बात तो वास्तविक ऐसी है कि ज्ञानमय जीव है, जीवसे ज्ञान

पृथक नही है। लेकिन आशङ्काके अनुसार जब यह स्वीकार कर लिया जाता है कि, ज्ञान भिन्न है, जीव भिन्न है, तो जब ज्ञान गुण स्वतन्त्र हो गया तो यह जीवसे ही सम्बन्धित हो, ऐसा नियम तो नहीं बंधा। कभी जीवसे सम्बन्धित हो गया, कभी पुद्गलसे भी सम्बन्धित हो जाय। सो यो पुद्गल भी चेतक बन जायेंगे, क्योंकि अब चेतना गुणको या ज्ञान गुणको गुण तो माना नहीं जीवका विशेष तो माना नही, उसे स्वतन्त्र पदार्थ मान लिया। तो जैसे यह ज्ञान गुण जीवमे रह सकता है, उसी प्रकार कभी अजीव जीवमे, पुद्गल आदिकमें भी रह जायगा। फिर तो अजीव भी जीव कहलाने लगेगा और यो फिर पदार्थोंका कोई नियम नहीं बन सकता। जो चाहे जिस रूप हो जाय, पुद्गलका गुण है मूर्तपना, यह मूर्तित्व आज है, कल न रहे तो पुद्गल अमूर्त हो गया। धर्म द्रव्यमें पहुंच जाय तो वह मूर्तिक बन गया। फिर पदार्थों का कोई नियम नही रह सकता, इस कारण गुणका द्रव्यसे भिन्न सत्त्व वाला मानना मिथ्या है। पदार्थ है, है, वह है कैसा है? जैसा है सो है ही। अब उसके उस विशेष को बतानेका उद्यम किया गया है, कोई विशेषता बताई गई है। विशेषताका नाम गुण है। तो कही गुण उस पदार्थसे पृथक नहीं हो गया। तो वह पदार्थकी विशेषता नही कही जा सकती। दोनो स्वतंत्र ही तत्त्व हो गए। तब गुणोको पदार्थसे भिन्न स्वीकार करनेमें सारी अव्यवस्था होती है।

अथवा विना विशेषैः प्रदेशसत्त्वं कथं प्रमीयेत।
अपि चान्तरेण देशैर्विशेषलक्ष्मावलक्ष्यते च कथम् ॥ ४३ ॥

गुणोको देशसे भिन्न माननेपर प्रदेशसत्त्वके अभावका प्रसङ्ग—गुणोंको द्रव्यसे भिन्न माननेपर दूसरी आपत्ति यह है कि गुण तो हो गए अलग और प्रदेश देश ये हो गए अलग शङ्काकारकी कल्पनामें, तब गुणोंके बिना प्रदेशका सत्त्व कैसे जाना जायगा? क्या है वह प्रदेश? जो गुणरहित है उसका अस्तित्व होगा ही क्या? कैसे अस्तित्व होगा? तो गुणोंके बिना द्रव्यके प्रदेशकी सत्ता नहीं जानी जा सकती, हो ही नहीं सकता और इसी प्रकार प्रदेशके बिना विशेष धर्म भी लक्ष्यमें आ नही सकता। हैं गुण और प्रदेश अभिन्न, गुणो को छोड़कर प्रदेश कुछ नही हैं, प्रदेश को छोडकर गुण कुछ नही है। वह एक बात है, उसे समझनेके लिए क्षेत्र और भाव की अपेक्षासे वस्तुको जाना जा रहा है। पदार्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावस्वरूप हैं। वे चारों कही भिन्न भिन्न नहीं हैं कि पदार्थमे यह द्रव्य है, यह क्षेत्र है, यह काल है, यह भाव है, पदार्थ ही उस रूप है। अब उस रूप अर्थात् जैसा पदार्थ है वैसा समझनेके लिये उसमे भेदव्यवहार करना होता है। तो वह भेदव्यवहार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इस चतुष्टयके रूपमे चलेगा। तो यहा पदार्थका परिचय जब क्षेत्रकी अपेक्षा किया जा रहा है, तो प्रमुखता क्षेत्रस्वरूपकी रही। अतएव प्रदेशका सत्त्व है, इस रूपसे पदार्थ

पहिचाना गया। और, जब भावकी मुख्यता की तो पदार्थ गुणमय है इस तरहसे पहिचाना गया। लेकिन यह गुण प्रदेशसे अलग हो और प्रदेश गुणसे अलग हो, यह बात यहाँ सम्भव नही है। तो गुणोको पदार्थसे भिन्न माननेपर यह आपत्ति आती है कि न तो गुणोका ही सत्त्व रहेगा, न प्रदेशका सत्त्व रहेगा, न कुछ विदित हो सकेगा। अब गुण गुणीको भिन्न माननेमे एक अंतिम दोष और बतला रहे है।

अथ चैतयोः पृथक्त्वे हठादहेतोश्च मन्यमानेपि।
कथमिव गुणगुणीभावः प्रमीयते सत्समानत्वात् ॥ ४४ ॥

गुण और द्रव्यको भिन्न माननेपर गुणगुणीभावके अभावका प्रसङ्ग—यदि यह ही हठ की जाय कि गुण और गुणी भिन्न सत्ता वाले होते है तो ऐसी अवस्थामे यह दोष आयगा कि भिन्न-भिन्न मान लेनेपर दोनोकी सत्ता समान रूपसे हो गई। जो भिन्न भिन्न पदार्थ है वे सत्‌के नाते बराबरके सिद्ध हो गए। जब दोनो ही सत् हुए दोनो ही पदार्थ बन गए तो उनमें यह कैसे जाना जा सकता कि यह गुण है और यह गुणी है? जब गुण समुदायको द्रव्य कहा जाता था जैसे कि स्वरूप है तो समुदायको अर्थात् गुणी और समुदायीको अर्थात् जिनका समुदाय बताया जा रहा है उनको गुण कहते हैं। तो जब अभेद माना तब ना यह व्यवस्था बनी और जब गुण गुणीको भिन्न मान लिया गया तो दोनो ही समानरूप हो गए। जैसे भिन्न भिन्न प्रदेश हैं तो वे दोनो ही स्वतन्त्र सत् हैं। अब स्वतन्त्र सत्मे वहाँ यह नही बताया जा सकेगा कि यह इसका स्व है और यह इसका मालिक है। भिन्न सत् हैं। लोकव्यवहारमे जो प्राणियोकी यह व्यवस्था बना रखी है कि यह इसका मालिक है, यह इसका धन है, यह केवल मोहकी व्यवस्था हैं। मोहमे एक कल्पना की हुई है सत्त्वके नाते तो वहाँ यह व्यवस्था नही है कि यह इसका धन है, यह इसका मालिक है। जैसे गाय, भैंस, घोडा आदिक पशुओको धन माना है और यह पुरुष मालिक बनता है तो मोहमे बन रहा है ऐसा पर वस्तुके सत्मे यह बात नही पडी हुई है कि ये घोडे आदिक तो धन कहलायें और यह पुरुष मालिक कहलाये। वे सब सत् हैं और सत्त्वके नाते स्वतत्र हैं, स्वतन्त्र पदार्थमे यह उसका है, ऐसी बात नही कही जा सकती। तो यो ही जब गुण और गुणीको भिन्न माननेका हठ बना लिया न कोई युक्ति है न कोई अनुभवकी बात है फिर भी हठ कर लिया कि गुण और गुणी भिन्न भिन्न सत्तावान हैं। तो भिन्न भिन्न सत्तावान सामान्यतया स्वतंत्र हो गए। अब उसमे यह न कहा जा सकेगा कि ज्ञान तो गुण है और जीव गुणी है। यो भी कहदे कोई कि जीव तो गुण है ज्ञान गुणी है अथवा गुणगुणीकी बात ही नही की जा सकती है। तब तो गुण तो गुणीसे भिन्न माननेपर गुणगुणीका अन्तर ही प्रतीत न हो सकेगा। इस कारण गुण और गुणीको भिन्न नही माना जा सकता। ये स्वतन्त्र पदार्थ नही है, किन्तु यह जीव ही

ज्ञानादिक गुणोंके द्वारा इस प्रकार सत् है, यह बात ज्ञानमें आती है।

तस्मादिदमनवद्यं देशविशेषस्तु निर्विशेषास्ते।
गुणसंज्ञकाः कथञ्चित्परिणतिरूपाः पुनः क्षणं यावत् ॥ ४५ ॥

देशविशेषोंके ही गुणत्वकी सिद्धिका निर्णय—तत्त्वके स्वरूपके सम्बन्धमें उक्त चर्चाके बाद यह बात निर्दोष सिद्ध होती है कि देशविशेष ही गुण कहलाता है और वह देशविशेष निर्विशेष होता है अर्थात् गुणरहित होता है। गुण स्वयं गुण है, गुणमें अन्य गुण नहीं हुआ करते। गुण पिण्ड तो द्रव्य होता है। जिसमें गुण हों उसे द्रव्य कहते हैं। यहाँ द्रव्यका कुछ विस्तार तो है ही, जैसा कि स्पष्ट समझमें आ रहा है। जीव है तो वह भी अपनी किसी वस्तुको लिए हुए है। प्रत्येक पदार्थ अपना प्रदेश विस्तार रख रहा है। तो वहाँ जो एक एक प्रदेशकी बात सोची जा रही थी वह प्रदेश कहीं गुणरहित नहीं है। प्रदेश कुछ अलग चीज हो और उसमें गुण रहते हों, ऐसी बात नहीं है। क्योंकि समूचा द्रव्य ही गुणमय है। तो उन गुणोंका विस्तार ही वह अंश है प्रदेशमें कि जिससे हम द्रव्यका परिमाण भी बताते हैं। तो देशविशेष ही गुण हुए और गुण स्वयं निर्गुण होते हैं तथा गुण प्रतिक्षण परिणमनशील होते हैं। उनमें उत्पाद व्यय होगा पर कभी गुणका सर्वथा नाश न होगा। वस्तु है अनादि से है, किन्तु सत्त्वमें है, अपनी शक्तियोंमें है। पता रहे तो भी उतनी ही शक्तियाँ हैं, न पता रहे तो भी उतनी ही आत्मामें शक्तियाँ हैं। तो उन शक्तियोंका ही पिण्ड द्रव्य है और विस्तार क्रमसे देखनेपर प्रदेश समझमें आता है, लेकिन वह प्रदेश केवल प्रदेश क्या है? वह प्रदेश वह देशांश गुणमय है अथवा कहो गुण कहते ही हैं देशविशेषको, द्रव्यमें जो विशेष है वह गुण है, सो गुणमें गुण नहीं रहता। जिसमें गुण हो वह पदार्थ कहलाता है, द्रव्य न कहलाता है, स्वतन्त्र सत् कहलाता है, परिपूर्ण कहलाता है, पर गुण परिपूर्ण नहीं, सत् नहीं, स्वतन्त्र सत् नहीं, किन्तु द्रव्यकी ही एक विशेषता है, जिसे हम असाधारण धर्म कहते हैं। तो यों वह गुण परिपूर्ण है और द्रव्यके आश्रय रहता है तथा स्वयं गुणहीन है।

एकत्व गुणगुणिनोः साध्य हेतोस्तयोरनन्यत्वात्।
तदपि द्वैतमिव स्यात् किं तत्र निबन्धन त्विति चेत् ॥ ४६ ॥

गुणगुणीके एकत्व होनेपर उनमें भेदकल्पनाके निदानकी जिज्ञासा—गुण और गुणी दोनोंमें एकता है, क्योंकि वे दोनों ही भिन्न भिन्न रहने वाले नहीं हैं, उनमें अनन्यता पाई जाती है, फिर भी गुणगुणीमें द्वैत क्या आया? जब वह अखड पिण्ड है तो उसमें भेदकल्पना भी उठी क्यों? द्वैतभाव सा प्रतीत हुआ ही क्यों? तब

प्रकृत प्रसङ्गमे गुण गुणीको एक कहा जा रहा है, पृथक प्रदेश नही है। गुणोका स्वरूप छोडकर कोई कुछ द्रव्य नही है। सब बातें जब एक है तो ऐसे एकस्वरूप पदार्थमे द्वैतकी बात प्रचलित ही क्यो हुई ? और लोगोकी दृष्टिमे दो और बहु कितनी ही संख्याओकी गिनती क्यो है ? उत्तरमे कहते हैं :

यत्किञ्चिदस्ति वस्तुः स्वतः स्वभावे स्थितं स्वभावश्च ।
अविनाभावी नियमाद्विवक्षितो भेदकर्ता स्यात् ॥ ४७ ॥

स्वभावस्वभावीमे अभिन्नता होनेपर भी विवक्षाकी भेदकल्पनानिदानता—यद्यपि स्वभाव और स्वभावी दोनो ही अभिन्न है, इनमे परस्पर भेद नहीं है, फिर भी अपेक्षा कथनसे स्वभाव और स्वभावीमे भेद समझ लिया जाता हैं। वास्तवमें गुण गुणीमे भेद नही है। सर्वत्र एक बात कुछ है तो वह है—जैसा है सो वीतराग संतोके ज्ञानमे है। रागी पुरुषोमें वस्तुको ज्ञानमे लेनेके साथ ही साथ उसमे राग और द्वेषकी बुद्धि उत्पन्न होती है। मध्यस्थ ज्ञानी योगीजन केवल उस एक सत्के ज्ञाता होते है। तो ऐसे उस अभेदस्वभावी वस्तुका वास्तवमे भेद कुछ नही है, परन्तु विवक्षावश उसे भिन्न समझा जाता है। स्वभाव और स्वभावी ये दो अलग अलग पदार्थ नही हैं। है कुछ एक और वह है कुछ विशेषताका रूप। इस मार्गसे अगर अपने आपकी परिणति का निर्णय करें तो वहाँ भी यही हो रहा है, मैं हू और इसका भवन भाव उत्पाद होता रहता है। हम वहा हठ करते हैं तो ससारमे रुलते हैं, हठ छोड़ दें तो जो होता है होने दे। कषाय न रहनेसे, मिथ्याभाव न रहनेसे, वासना न रहनेसे वहाँ कष्ट नहीं है आकुलता नही है, कर्मबन्ध नही है। तो स्वभाव और स्वभावी ये अभेदरूपसे हैं, वस्तु अपने स्वभावमे रहती है और स्वभाव भी वस्तुसे अभिन्न है। परन्तु समझनेके लिए जब जिसकी विवक्षा की जाती है उस विवक्षासे यह सब भेद उत्पन्न होता है। गुणोके सम्बन्धमे यह ही अखण्ड पिण्ड गुणी कहलाता है। यह द्रव्य है, ऐसे द्रव्यका समर्थन करनेके लिए कुछ वर्णन किया गया है। तो जिन गुणोके वर्णनसे हम द्रव्यकी समझ बनाते हैं, वह गुण भिन्न भिन्न शब्दो द्वारा कहा जाता है। उसका वर्णन है :

शक्तिर्लक्ष्मविशेषो धर्मो रूपं गुणः स्वभावश्च ।
प्रकृतिशील चाकृतिरेकार्थवाचका अमी शब्दाः ॥ ४८ ॥

शक्ति, लक्ष्म, विशेष, धर्म व रूपकी गुणपर्यायवाचिता—शक्ति, लक्ष्म, विशेष, धर्म, रूप, गुण, स्वभाव, प्रकृति, शील, आकृति ये सब एक अर्थके वाचक हैं। अर्थात् ये सभी गुणके नाम हैं। अब जिस शब्दसे गुण वाच्यसे यह ग्रहण किया गया उस शब्दकी व्युत्पत्तिपर दृष्टि दें तो गुणोकी नित्यता जाहिर होती है गुणपर्यायवाची

शब्द कहनेसे । वे क्या क्या नाम हैं ? प्रथम बताया है शक्ति । पदार्थमें जो शक्ति है, जिस जिस रूप परिणमनेकी योग्यता है, शक्ति है, वह पदार्थोंका गुण कहलाती है । शक्तिसामान्य और शक्तिविशेष—जब हम शक्ति सामान्यपर दृष्टि देते हैं तब वह हम को एक तन्मय गुण ज्ञात होता है और जब हम शक्तिविशेषपर दृष्टि देते हैं तो हमें अन्य द्रव्योंसे पृथकता किए जानेका एक साधन मिलता है । तो गुणका एक नाम है शक्ति । पदार्थमें जो शक्ति है उसे ही गुण कहते हैं । जीवमें जाननेकी शक्ति है उसका नाम रखा गया ज्ञानगुण । यद्यपि ज्ञानगुण यहाँ समझमें नहीं आ रहा है लेकिन जीव तत्त्वको हम जानें तो शक्ति अंशमें जाननेपर हमें उसके गुण प्रकट होते हैं । इस ही गुणका दूसरा नाम है लक्ष्य, मायने लक्षण जो उस वस्तुमें अभिन्न हो, पर उसे व्याप्य बताया समझनेका व्यवहार बनानेके लिए, शक्ति और लक्ष्म पदार्थमें जो लक्षण विदित होता है वह उस पदार्थका गुण ही तो है, जिससे पदार्थका परिचय किया जाता है । अब तीसरा शब्द है विशेष । पदार्थमें जो विशेषता ध्यानमें आई, पदार्थ तो अनन्त हैं, अनेक प्रकारके हैं । उन पदार्थोंमें से जो एक विशेष समझमें आया है, जिससे अन्य वस्तुओंको छोड़कर विवक्षित वस्तुको ग्रहण किया गया है वे सब विशेष गुण कहलाते हैं । जीव भी सत् है, पुद्गल आदिक भी है, उनमेंसे जीवका ज्ञान बना, उस वास्ते सत्को विशेषरूपमें समझाया जायगा । इसीका नाम है विशेष । गुणका नाम है धर्म, जो पदार्थ अपनेमें जो स्वभाव रखता है वह उस पदार्थका गुण कहलाता है । वह धर्म जो पदार्थमें तन्मयतासे शाश्वत रहा हो ऐसा धर्म वस्तुमें अनादिसिद्ध है और तन्मय है इसी गुणका दूसरा नाम है रूप । इस वस्तुका रूप क्या है ? रूपसे यहाँ चक्षुइन्द्रिय-जन्य वर्णसे प्रयोजन नहीं है । वह भी एक परिचयका उपाय है पर यहाँ वस्तुका रूप पूछा जा रहा है तो उसके मायने है वह सर्वस्व ।

गुण, स्वभाव, प्रकृति, शील व आकृतिकी गुणपर्यायवाचिता—गुणपना जो पदार्थके प्रत्येक अंशमें पाया जाय, उसे कहते हैं रूप । जो देखा लिया जाय, परख लिया जाय उसका नाम है रूप । तो रूप भी गुणका पर्यायवाची शब्द है और गुण, गुणका नाम प्रकट करता ही है । गुणका अर्थ है—गुण्यते भिद्यते अनेन स गुणः अर्थात् जिसके द्वारा पदार्थ भिन्न किया जाय उसे गुण कहते हैं । सभी पदार्थ सत् हैं । अब उन समस्त सत् पदार्थोंमेंसे एक जीव पदार्थको हमें न्यारा देखना है । उसका आश्रय लेते हैं तो वहाँ भेद कर देने वाला अर्थात् अन्य पदार्थोंसे यह विलक्षण पदार्थ है, ऐसा जता देने वाला जो कुछ रूपक हुआ, प्रशंसा हुई उस हीका नाम गुण है । गुणका एक नाम है स्वभाव । स्वभाव अभेद विधिसे भी और भेद विधिसे भी देखा जाता है । वस्तुका स्वभाव एक होता है लेकिन जब भेददृष्टि करके उन स्वभावो की परख करते हैं तो वे स्वभाव अनेक रूपमें भिन्न-भिन्न विदित होने लगते हैं, ऐसी अवस्थाको गुण कहते हैं । स्वभाव प्रकृति, जो संस्कार हो, जो प्रकृति हो, जिस रूपमें

ढलनेकी विधि हो वह प्रकृति है। और, यही शील कहलाता है। जो शाश्वत है, स्वभाव है, जो सहजभाव है, वह कहलाता है शील। और, गुणका पर्यायवाची शब्द है आकृति। यहाँ भी आकृतिका अर्थ प्रदेश विस्तारमे नही लेना है। जैसे माप हो जाता है क्षेत्रका इस तरह यहाँ गुणोका माप हो जाय आकृतिके आलम्बनसे उसे आकृति कहते है। आकार पूछा जानेपर समस्त भेदोकी चर्चा नही हुई। एक आकार मायने व्यक्तरूप। तो यो ये सब शब्द गुणके पर्यायवाची हैं और इन सब शब्दोके वाच्य जाननेसे गुणोकी तारीफका ज्ञान होता है, पर गुणोके परिज्ञानमे स्पष्टता प्राप्त होती है, यो गुणका अखण्ड पिण्ड द्रव्य हुआ उस अखण्डपिण्डमे भेद किए जानेका कारण है।

देशस्यैका शक्तिर्या काचित् सा न शक्तिरन्या स्यात्।
क्रमतो वितर्क्यमाणा भवन्त्यनन्ताश्च शक्तयो व्यक्ताः॥ ४६॥

द्रव्यमे अनन्त गुणोंकी प्रतीतिसिद्धता—द्रव्यमे शक्तियाँ अनन्त बताई गई हैं तो उनमे पदार्थकी कोई एक शक्ति दूसरी शक्तिरूप नही होती। ऐसा प्रत्येक शक्तिका स्वरूप विचारकर और चूकि उस शक्तिका कार्य उसमे ही है, किसीका कार्य किसीमे बदलता नही है, यो वे भिन्न भिन्न शक्तियाँ अनन्त विदित हो जाती है। पदार्थ हैं शक्तियोका पिण्ड उनमे है, जो वे परिणमते है। तो जब परिणमनेमे भेद समझमे आया तो उससे शक्तियोका भेद किया गया है। कोई पदार्थ जिस व्यक्तरूपमे परिणम जाता है वहाँ वह व्यक्तरूप अनेक दीखा अथवा समझा, तो जितने वे अनेकरूप है परिणमन उतनी ही उस पदार्थमे शक्तियाँ समझनी चाहिए। वे परिणमन कुछ तो विदित होते हैं, कुछ भिन्न होकर भी अविदित हैं। यो शक्तियाँ विदित और अविदित एक पदार्थमे अनन्त होती है। शक्तियाँ एक दूसरेसे भिन्न हैं। यद्यपि वे सब शक्तियाँ एक ही पदार्थमे तन्मय है, उनके प्रदेशभेद भी नही हैं। जो प्रदेश एक शक्तिका है वही प्रदेश अन्य शक्तिका भी हैं। प्रदेशभेद न होनेपर भी उनमे स्वरूपभेद है। जैसे कि आगेकी गाथामे बताया कि स्पष्ट विदित हो जायगा कि वे शक्तियाँ अनेक क्यो हैं? तो देशदेशांश, गुणगुणांशके भेदके प्रकरणमे अब इस समय यह बताया जा रहा है कि देशमे अनन्त गुण हैं। गुणोके पर्यायवाची शब्द अभी कहे गए थे। उनमे सर्वप्रथम नाम शक्तिका बताया। इन गुणोका अनेक नामोसे, अनेक विशेषताओके साथ परिज्ञान होता है। शक्ति कहते हैं योग्यताको, उस प्रकारके परिणमनकी शक्तिको। वह है स्वभावका अंश। तो सभी नामोसे स्वभावका अंश ही विदित कराया गया है। मगर नाम अर्थके भेदसे उनमें कुछ नवीन बात विशेषतया विदित होती है। जैसे लक्ष्म चिन्ह कहा तो जो अनेक पदार्थोंसे जुदा करा देवे ऐसे चिन्हका नाम है गुण। तो वस्तुमे जो शाश्वत ऐसा कोई चिन्ह रहता हो, जो अन्य पदार्थोंमे इसकी पहिचान अलग करादे वह यही गुण तो है, किसी भी प्रकार इस ही शक्ति तक तो पहुचे। जब विशेष शब्दको कहा

गया गुण तो उसके मायने हुआ उस पदार्थकी विशेषता। तो विशेषता क्या है ? जो हो सो ही तो बताया जायगा। तो पदार्थमे जो स्वाभाविक है, शक्ति है वही विशेष शब्दसे ध्वनित होता है। यहाँ पदार्थगत इस मर्मको शीघ्र समझनेके लिए शक्ति नाम से समझाया गया है। तो यो पदार्थमे शक्तियां अनन्त हैं और वे सब एक दूसरेसे भिन्न भिन्न हैं। अब वे शक्तियां क्यो भिन्न हैं ? सो उत्तर देते हैं।

स्पर्शो रसश्च गन्धो वर्णो युगपद्यथा रसालफले ।
प्रतिनियतेन्द्रियगोचरचारित्वात्ते भवन्त्यनेकेपि ॥ ५० ॥

द्रव्यमे अनन्तशक्तियोंकी परस्पर भिन्नताकी दृष्टि— जैसे कि आमके फलमें स्पर्श, रस, गध, वर्ण ये चारो ही एक साथ पाये जाते हैं। और वे चारो पाये जाते हैं एक साथ, फिर भी हैं परस्परमे भिन्न भिन्न। अर्थात् स्पर्श रस नहीं बन गया, रस स्पर्श आदिक नहीं बन जाता। और उनकी प्रतीति जो भिन्न भिन्न इद्रिय द्वारा होती है उससे भी इसका समर्थन मिला कि वे स्पर्श आदिक गुण परस्परमे भिन्न भिन्न हैं और हैं एक ही पदार्थमे। जिस प्रदेशमे स्पर्श है उसी प्रदेशमे रसादिक हैं, ऐसा होनेपर भी भिन्न भिन्न हैं, तभी तो भिन्न भिन्न इंद्रिय द्वारा वह विदित किया जाता है। स्पर्शन इद्रियके द्वारा आमके फलमे जो स्पर्श है वही जाना जाता है, रसना इंद्रियके द्वारा रस जाना जा रहा, घ्राण इद्रियके द्वारा गंधका ज्ञान होता और चक्षु इंद्रियके द्वारा रूपका ज्ञान होता है। तो भिन्न भिन्न इन्द्रियके ये विषय हैं इससे भी यही जाहिर होता है कि ये चारो गुण परस्पर भिन्न हैं। यदि स्पर्श रस आदिक रूप बन जायें तो रस भी स्पर्शादिक रूप बन जाय। यो अटपट परिवर्तन हो तो कुछ भी न रहेगा, न स्पर्श न रूप। तो जैसे पुद्गलमे ये चार गुण हैं और हैं भिन्न भिन्न स्वरूप वाले, इसके कार्य भी तो भिन्न भिन्न हो रहे। स्पर्श गुण का कार्य है—रूखा चिकना, ठडा, गर्म आदिक होना, और रस गुणका कार्य है—खट्टा मीठा कडवा आदिक होना। तो इन कार्योंमे तो प्रकट भेद है। जो खट्टी मीठी जैसी बात है वह रूखा चिकना तो नही है, भिन्न इद्रिय द्वारा प्रतीत है, इसका स्वरूप भी परस्परमे भिन्न भिन्न है। गंध गुणका कार्य है सुगंध दुर्गन्ध होना, यह बात अन्य गुणके कार्य से बिल्कुल भिन्न है। रूप गुणका कार्य है काला, पीला आदिक होना। तो यह भी कार्य बिल्कुल भिन्न है तो विभिन्न कार्य होनेसे और भिन्न भिन्न इद्रिय द्वारा परिज्ञान होनेसे ये सब गुण परस्परमे भिन्न भिन्न हैं, यह बात स्पष्ट विदित हो जाती है ऐसे ही सभी पदार्थोंमे गुणोकी बात समझना चाहिए कि सभी गुण परस्परमे भिन्न भिन्न होत हैं। अब परमार्थतः देखा जाय तो वहाँ तो एक अखण्ड कोई सत् है और उसका एक अखण्ड स्वभाव है और प्रतिसमयमें एक अखण्ड परिणमन है। परमार्थ दृष्टिसे तो यह नजर आता है फिर भी भेददृष्टिमे जो विदित होता है वह कभी विप-

रीत नही जाना जा रहा है। पदार्थमे जो बात समाई हुई है वही जानी जा रही है। इसलिए भेदव्यवहारमे जो शक्तिभेद जाना गया, जो स्वभावांश विदित हुआ, जिसके समुदायमे एक अखण्ड स्वभावकी प्रतीति की जाती है वह सब स्वभावभेद अथवा गुण विपरीत नही है, मिथ्या नही है। है उसमे, लेकिन हैं सब अभेदरूप, अखण्डरूप। प्रत्येक प्रदेश ही अन्य समस्त गुणोके द्वारा उस रूप है। इस कारण परमार्थसे तो अखण्डता है और व्यवहारदृष्टिमे उसका खण्ड किया गया है। स्वभावके अंश बताये हैं। उन्ही शक्तियोकी बात चल रही है कि ये सब शक्तियाँ पदार्थमे अनन्त होती हैं। अब जीव पदार्थमे इन गुणोका उदाहरण बतलाते हैं।

तदुदाहरणं चैतज्जीवे यद्दर्शनं गुणश्चैकः।
तन्न ज्ञान न सुख चारित्र न कश्चिदितरश्च ॥ ५१ ॥

जीवमे अनन्त गुणोकी परस्पर अन्यताकी दृष्टि—सभी गुण परस्पर भिन्न भिन्न हैं। उन गुणोमे स्वरूप भेद है। इसका उदाहरण यह हैं कि जिस जीव द्रव्यमे जितने गुण विदित हुए उन सब गुणोका स्वरूप भिन्न है। जैसे जीवमे दर्शन, ज्ञान, आनन्द, चारित्र आदिक अनेक शक्तिया हैं, तो उन शक्तियोका स्वरूप निराला है एक दूसरेसे। जो दर्शन गुण है वह ज्ञान नही हो जाता। उनका कार्य ही जुदा जुदा है। दर्शनका कार्य है सामान्य प्रतिभास आनन्दका कार्य है सुख दुःख आनन्द आदिक किसी रूपका अनुभव। और, चारित्र गुणका कार्य है किसी ओर लग जाना, लीन हो जाना। तो ये सब कार्य भिन्न भिन्न हैं, अतएव ये शक्तियां भी भिन्न भिन्न विदित होती हैं। यदि ज्ञान दर्शन आदिक किसी रूप हो जायें, दर्शन आनन्द आदिक अन्य किसी रूप हो जायें तो पदार्थमे फिर कुछ भी न रहा, कोई गुण ही न रह सका। तो ये सब गुण किसी अन्य गुणरूप परिणम नही जाता, अतएव पदार्थमे शक्तियाँ अनन्त हैं, उन्ही अनन्त शक्तियोंका अभेद पिण्ड पदार्थ है। ये गुण और गुणी भिन्न भिन्न चीजें नही हैं, ये कोई पृथक स्वतंत्र सत् नही हैं, सत्के अंश हैं। अब सतके अंशको न हम सत् ही कह सकते न असत् ही। अगर यह गुण असत् है तो असत्का पिण्ड सत् न होगा और यदि यह गुण सत् है तो सत् होनेके कारण ये स्वतंत्र पदार्थ हो गए, आत्मा स्वतन्त्र पदार्थ हो गया। अब स्वतन्त्र पदार्थमे गुण गुणीका व्यवहार नही हो सकता, और फिर यह व्यवस्था नही बन सकती कि ज्ञान गुण आत्मामें ही रहे। जब ज्ञानगुण स्वतंत्र है आत्मा स्वतंत्र है तो किसीमे कोई रहे इसका आधार ही कुछ न रहेगा। रही सम्बधकी बात, जैसे कि कोई कार्य कर लिया तो वहाँ भी अगर ज्ञानका आत्मासे सम्बध किया तो आत्मा चेतन कहलाया। कभी यह ज्ञान पुद्गलका सम्बध कर बैठा तो पुद्गल चेतन हो गया, फिर तो कोई पदार्थकी व्यवस्था ही न रहेगी। इससे इन गुणोको न तो सत् कहेंगे, न असत् कहेंगे किंतु सतके अंश कहे जायेंगे। जैसे कि

समुद्रका जो बूंद बूंद है तो वह एक एक बूंद समुद्र है या असमुद्र ? अगर यह कहा जाय कि बूंद तो समुद्र नहीं है वह तो असमुद्र है तो असमुद्रका समुदायमे समुद्र बन नही सकता। और कहा जाय कि एक-एक बूंद समुद्र है तब तो वहां अनगिनते समुद्र हो गए और जो समुद्रका कार्य लिया जाय तो उसके बूंद कर दें पर समुद्रका एक बूंद समुद्रका कार्य तो नहीं बन पाता। उसमे जहाज चले उसमे स्नान हो जाय, एक बूंद की यह बात नहीं बनती। तो जैसे समुद्रकी बूंद न समुद्र है किन्तु समुद्रका अंश है इसी तरह ये शक्तियां ये न सत हैं न असत हैं किंतु सतके अंश हैं और ये परस्परमे एक दूसरे से भिन्न स्वरूप रख रहे हैं तभी तो ये अनन्त रह पायेंगे। यों अनन्त शक्तियोका अभेद पिण्ड पदार्थ होता है।

एवं यः कोपि गुणः सोपि च न स्यात्तदन्यरूपो वा।
स्वयमुच्छलन्ति तदिमा मिथो विभिन्नाश्च शक्तयोऽनन्ताः ॥५२॥

एक द्रव्यमे अनन्त शक्तियोंका उच्छलन—उक्त कुछ कथनोमें इन शक्तियो के सम्बन्धमें कुछ उनका स्वरूप दर्शाया गया था। उस पद्धतिका जो स्वरूप प्रतीत हो, जिससे यह विदित हो कि कोई सा भी गुण, किसी दूसरे गुणरूप नही हो सकता है। तो ये शक्तियां क्या हैं ? ये परिपूर्ण सत् नही हैं, ये अनन्त शक्तियां परस्पर भिन्न स्वरूपको लिए हुए हैं, और ये भिन्न-भिन्न कार्यों द्वारा स्वय उदित होती हैं, उछलती हैं, इन शक्तियोका परिज्ञान उन शक्तियोके कार्योंके द्वारा किया जाता है। जैसे आत्मामे जाननेका परिणमन बन रहा है सर्वलोक विदित है कि जानना किसे कहते हैं। तो उस जाननरूप कार्यके द्वारा हमे यह बोध हो रहा है कि इस पदार्थमे आत्माको जाननेकी शक्ति है तभी तो जानना हो रहा है। तो कार्यो द्वारा शक्तिका अनुमान बनता है। सो ये सब शक्तियां जो उठ रही हैं, द्रव्यमें विदित हो रही हैं वे सब भिन्न-भिन्न कार्यों-द्वारा विदित होती हैं। अभी जब परमार्थ दृष्टिमे थे तब वहां सब अद्वैत भास रहा था। अद्वैत मायने सर्वाद्वैत नही किन्तु विशिष्टाद्वैत। प्रत्येक पदार्थ अपनेमें पूर्ण सत् है, और वह केवल एक है। वहां कोई दूसरा नही है। एक सत्मे द्वैतका प्रवेश नहीं है। प्रत्येक सत् अद्वैतरूप हैं और उसका स्वभाव भी एक है अद्वैत है। जो है सो ही है। उस स्वभावमे भी अंश भेद नहीं किया है, और उस द्रव्यमें जो परिणमन है वह है एक परिणमन। तो यहां अनन्त शक्तियोकी बात और अनन्त कार्योंकी बात दृष्टिमे न थी। अब दृष्टि वही है जिसके सम्बन्धमे पहिले परमार्थ दृष्टिसे विचारा था। अब व्यवहार दृष्टिसे विचार होता है तो यह बात भी प्रमाण सिद्ध विदित होती है कि इस पदार्थमे इतने कार्यरूप परिणमन होता है और इतनी उनमें शक्तियां हैं। तो पदार्थमे ये सब शक्तियां भिन्न भिन्न हैं, एक दूसरे रूप बन नहीं सकती, अतएव अनन्त शक्तियां हैं और अपने अपने विभिन्न कार्यों द्वारा स्वयं उदित होती हैं। उछलती रहती

हैं। देखिये ! वही अखण्ड द्रव्य अब व्यवहार दृष्टिमे कैसा अनन्त वैभववान, उछलती हुई शक्तियोसे जगमगरूप विदित हो रहा है। दोनो दृष्टियोसे पदार्थका सही निर्णय हो पाता है। भले ही फ़िर किसी दृष्टिकी प्रधानतामे उस पदार्थका परिज्ञान चल रहा हो लेकिन स्पष्ट परिज्ञान उस हीका कहा जायगा जो भेददृष्टि और अभेददृष्टिसे पदार्थका परिचय प्राप्त करे। यहाँ एक बात यह कही गई कि तत्त्व अखण्ड है, निर्विकल्प है, सन्मात्र है, स्वसहाय है, स्वतः सिद्ध है, उस तत्त्वका परिज्ञान देश, देशांश, गुण, गुणांशके रूपमे किया जा रहा है। उसमे देश, देशांश और गुण इन तीनका वर्णन किया गया। देशके मायने वह परिपूर्ण द्रव्य। देशांशका अर्थ है उस द्रव्यके प्रदेश और गुणके मायने है द्रव्यकी शक्ति। उन शक्तियोके अशोकी बात कह रहे हैं।

तासामन्यतरस्या भवन्त्यनन्ता निरंशका अंशाः।
तरतमभागविशेषैरंशच्छेदैः प्रतीयमानत्वात् ॥ ५३ ॥

तरतमविशेषरूप अशच्छेदोके द्वारा गुणोके अंशोकी सिद्धि—उन शक्तियोमे किसी भी शक्तिके अनन्त निरश अंश होते हैं। उन गुणोमे भी अंश होते हैं। ये अंश देशांशकी भाँति निष्कर्म क्रमको लिए हुए नही हैं। जैसे पदार्थ इतने विस्तार वाला है, इतने क्षेत्रमे फैला हुआ है। अब वहाँ प्रदेशभेद करें इस तरहका अशभेद गुणोमे नहीं होता, क्योकि गुण प्रत्येक प्रदेशमे है और प्रत्येक प्रदेशपर जो एक गुण है ऐसे ही अनन्त गुण हैं, क्योकि गुणोसे ही वह प्रदेश बना है, विदित होता है। गुणमय है चीज। तो जैसे समस्त गुण प्रत्येक पदार्थमे रहते हैं ऐसे ही अन्य गुणके जो अश किये जा रहे हैं वे अंश भी प्रत्येक प्रदेशमे रहते हैं। तो उन शक्तियोके जो अनन्त निरश अश हैं वे हीनाधिककी विशेषतासे परिज्ञात होते हैं। गुणोके विकासके अश और उन विकासोके कारण अश विभाग समझा गया है। ऐसे निरंश अशकी जो कमसे कम वृद्धिमे आती हो याने अब यह पदार्थ एक अंश और बढ गया, इससे गुण एक अंश और बन गया, ऐसा जो कमसे कम वृद्धिमे आ सकता है उसे यहाँ निरंश अश समझ लिया जाय। यद्यपि उस वृद्धि वाले अशमें भी अनेक अश परिकल्पित हैं लोक व्यवहारकी समझमे तो भी एक अश जो कमसे कम वृद्धिमे है वह आ रहा है। जैसे बुखार मापनेका जो थर्मामीटर यंत्र होता है उस यत्रमे बुखार एक-एक अंश विदित होता है। जैसे कि मानो १० बिन्दुओसे १ डिग्री बनी तो उस एक बिन्दुमे भी अनेक अश हो सकते हैं मगर व्यवहारमे, कहनेमे, समझमे जो एक वृद्धि अश आता है, वह डिग्री बताई गई है। यो पदार्थमे जितनी शक्तियाँ हैं उन सब शक्तियोके अनेक निरंश अश होते हैं। उन निरंश अंशोका जो समुदाय है वही एक पूर्ण शक्ति है और ऐसे ऐसी अनन्त शक्तियोका जो अभेद पिण्ड है उसे पदार्थ कहत हैं। यो तत्त्वका परिचय देश देशांश और गुण गुणांशके परिचयसे प्राप्त होता है और इसी कारण बताया

गया कि सत्ता सप्रतिपक्ष है। अगर सत्ता सत् है तो असत् भी है, एक है तो अनेक भी है। ये सब बातें इस देश देशांश गुण गुणांशके रूप होनेसे बनती हैं : तो सप्रतिपक्षता के होनेका आधार यहा ये देश देशांश आदिक भेद बताये गए हैं।

दृष्टान्तः सुगमोऽयं शुक्लं वासस्ततोपि शुक्लतरम् ।
शुक्लतमं च ततः स्यादंशाश्चैते गुणस्य शुक्लस्य ॥ ५४ ॥

दृष्टान्त द्वारा गुणांशोंका स्पष्टीकरण —गुणोके अंश होते हैं लेकिन वे अंश देशांशकी तरह नहीं हैं कि विस्तारको लिए हुए हो। जैसे एक पदार्थ कितने ही लम्बे चौडे विस्तारमे है तो उसका उसमे उर्द्धक्षेत्र कर करके जो अन्तिम अविभागी अंश है वह देशांश कहलाता है, इस तरह विस्तार क्रमसे गुणोंके अंश नहीं होते किन्तु गुणोंमे तरतमताके अंश होते हैं। जैसे विस्तार है तो कोई कपडा कम सफेद है कोई उससे अधिक सफेद है कोई उससे भी ज्यादा सफेद है तो ये सब शुक्लगुणके अंश हुए, अब उस कपडेमे जो सफेदीके अंश हैं वे तरतमताके अंश हैं और सफेदी जिस प्रकार व्यक्त होती है उसके अविभागी अंश बनाये गए हैं अथवा जैसे दूधकी चिकनाई, कोई दूध कम चिकना होता है कोई विशेष चिकना होता है और उस चिकनाईके अंश भी लोग परिकल्पित करते हैं जैसे १०० डिग्री अंशकी चिकनाई हो तो वह सबसे अधिक चिकनाई मानी जाती है। उसके अनुसार किसी दूधमें कहना कि इसमें ५० डिग्री चिकनाई है इसमें ६० डिग्री चिकनाई है, तो यों सोचते हुऐमें जो एक डिग्री कल्पनामें आयी वह चिकनाईका अविभागी अंश है, और यों तरतमताके ढगसे सफेद गुणके अंश हुए। तो इस तरह गुणोके अंश गुण विकासकी डिग्रियोंके अनुसार हैं। प्रदेशके अनुसार नही हैं। प्रत्येक प्रदेशमे सभी गुण रहते हैं। तो गुणोके अंश भी प्रत्येक प्रदेशमे रहते हैं इसलिए गुणांशके विभागके लिए विस्तारक्षेत्र न होगा किन्तु उनके गुणोका तरतमताका छेद होगा। जैसे किसी मनुष्यका बुखार है तो मानो १०४ डिग्री बुखार है अब १०२ डिग्री रह गया, १०० डिग्री रह गया, तो जो भी रह गया और जब जो भी बुखार है उसमे यह विभाग नहीं है कि शरीरके १०४ भाग सोचे जायें पैरोंसे लेकर शिर तक, उसमेसे इस भागमें यह बुखार है, इस भागमें यह बात नहीं बनती किन्तु समूचे शरीरमे ही १०० डिग्री है तो वह १०४ डिग्री हैं तो सर्वत्र है, उस तापके भेद हैं वह डिग्री। और, यहाँ यद्यपि कोई ९९ डिग्री तकका बुखार पहिचानमें ला सकता है और कोई सोचे कि ९९ डिग्री बुखारमें ९९ अंश हैं तो एक डिग्री डिग्रीका बताओ। तो कोई बता नहीं सकता, लेकिन एक अंश बुखार न हो तो वह ९९ डिग्री बुखार आ नहीं सकता। तो पदार्थोंमे जघन्य गुणांश हम नहीं बता सकते, लेकिन होता है अवश्य। तो जब उनके समुदायमें बडी डिग्रियोके गुणांश हो पाते हैं। तो जो हीनाधिकतारूप अंश है सो ही गुणांश हो सकेगा। इसी बातको दूसरे

दृष्टान्तमें बताते हैं ।

अथवा ज्ञानं यावज्जीवस्यैको गुणोप्यखण्डोपि ।
सर्वजघन्यनिरंशच्छेदैरिव खण्डितोप्यनेकः स्यात् ॥ ५५ ॥

जीवके ज्ञान गुणके अशोका कथन—जैसे जीवका ज्ञान गुण है सो वह गुण यद्यपि एक है और अखण्ड भी है तो भी सबसे जघन्न अंशके भेदसे वह खण्डित होता हुआ अनेक प्रतीत हो जाता है। जैसे यहाँ मनुष्योमे देखा जाता कि किसीका ज्ञान विशेष है, किसीका कम है, किसीका अल्प है, किसीका अतिअल्प है। तो जैसे उसमे छेदोकी कल्पना है और कहते भी हैं कि उसका ज्ञान इससे दूना है तो ऐसे ज्ञानको क्या किसीने गजोसे नापा है या किसी बर्तनसे नापा है ? तो वह तरतमतासे नापा हुआ है, अशकल्पना करके समझा गया है। सूक्ष्म निगोदलब्ध पर्याप्तक जीवका अक्षरके अनन्तवे भाग बराबर जघन्न ज्ञान होता है। वैसे इन निगोदियोके अनेक प्रकारके ज्ञान होते हैं मगर किसीके जघन्न ज्ञान अगर रहे तो वह अक्षरके अनन्तवें भाग है और जो ज्ञान वहाँ प्रकट है उसमे भी अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं। जो कमसे कम ज्ञान प्रकट हुआ है सूक्ष्म निगोदलब्ध पर्याप्तकका, वह यद्यपि सब जीवोके मुकाबलेमे जघन्न ज्ञान है, लेकिन उस ज्ञानमें भी अनन्त अविभागी प्रतिच्छेद हैं, अब उनमेसे कोई जानना चाहे कि एक अविभाग प्रतिच्छेद की बात समझाओ या असंख्यात अविभाग प्रतिच्छेदकी बात समझाओ तो नहीं बताया जा सकता। अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं उसमें, इतनेपर भी स्पष्ट विदित नहीं होता कि कैसा जघन्न ज्ञान है उस निगोदका ? तो वह है जघन्न ज्ञान और उस निगोद पर्यायमे ही अन्य अनेक निगोदो की उत्तरोत्तर अवस्थामें थोडे थोडे ज्ञानकी वृद्धि होती जाती है। तब उससे अधिक ऐसे सूक्ष्म निगोदोके ज्ञानकी वृद्धि की है, उससे अधिक अन्य स्थावरोंकी ज्ञानाशवृद्धि है। उससे अधिक दो इंद्रिय, तीन इद्रिय, चार इंद्रिय, असज्ञी पञ्चेन्द्रियकी और उससे अधिक सज्ञी पञ्चेन्द्रियकी ज्ञानांशवृद्धि है उनमे भी श्रुतकेवली की, अवधि, मन. पर्यय ज्ञान वालेकी और सबसे अधिक केवलज्ञानीकी ज्ञानांशवृद्धि है। तो जघन्न ज्ञान है सूक्षम निगोद लब्ध्य पर्यायका और उत्कृष्ट ज्ञान है केवलज्ञानका। केवलज्ञानमें चराचर जगतकी प्रत्येक द्रव्यपर्यायें एक साथ स्पष्टतया ज्ञानमें आती हैं।

वृद्धिके प्रसङ्गमें वृद्धियोग्य अशोसे अविभागी अंशकी गणना—अब इन सब ज्ञानोकी डिग्रियोंके विस्तारमें वस्तुतः एक अविभाग प्रतिच्छेद नहीं बढता। जैसे सूक्षम निगोदका जो जघन्न ज्ञान है उससे ज्ञानका एक अविभाग प्रतिच्छेद न बढेगा तो अनेक अविभाग प्रतिच्छेद कमसे कम लेकिन इस समय जानकारी के लिए यह समझें कि कमसे कम जितना बढना है उतना एक अंश है। यद्यपि वह भी एक अंश नहीं है, उसमें भी अनेक अविभाग प्रतिच्छेद हैं मगर एक अविभाग प्रति-

च्छेद तो बढता ही नही है। जब बढेंगे तो अनेक बढेंगे। लेकिन कममे कम जो बढने की चीज है उसे एक अश समझ लीजिए, क्योंकि व्यवहारमे समझमे तो हम उस ही एक अंशको ले सकेंगे जिस अशमे कमसे कम वृद्धि होती है। तो यहां ज्ञानकी वृद्धिमे जघन्न वृद्धिका नाम एक अश है। वैसे तो जो अविभाग प्रतिच्छेद अश है सो नही कह सकते। तो एक ज्ञान गुणमें जघन्न अवस्थासे लेकर कहाँ तक वृद्धि होती है वह विवेकी पुरुष अनुभव कर सकते हैं। बस इसी ढङ्गमे होने वाला यह वृद्धिभेद यह बात प्रसिद्ध करता है कि ज्ञान गुणके अश बहुत होते हैं और वे ही हीनाधिक रूपसे प्रतीत होते हैं। तो जैसे ज्ञानगुणके अश अनेक हैं इसी तरह प्रत्येक गुणके अश अनत हैं। इसीका नाम अविभागी प्रतिच्छेद है। इसीको गुणाश कहते हैं। इस अविभाग प्रतिच्छेदमे जो एक अंश है वह गुणांश है। यों गुणांशमें क्रमविस्तारसे न होगा किन्तु हीनाधिकताके रूपमें होगा। उसी क्रमको और स्पष्ट समझानेके लिए कहते हैं।

देशच्छेदो हि यथा न तथा छेदो भवेद्गुणांशस्य।
विष्कम्भस्य विभागात्स्थूलो देशस्तथा न गुणभागः ॥ ५६ ॥

विस्तारच्छेदसे देशांशकी तथा तारतम्यसे गुणांशकी प्रसिद्धि—जिस तरहसे देशके अंश होते हैं उस तरह गुणोके अंश नहीं होते। देशके अश तो विस्तार चौडाईके क्रमसे होते हैं। कोई पदार्थ एक लम्बे चौडे मोटे विस्तारमे है उसके अश बनेंगे तो विस्तारमे सक्षेपमे बनेंगे। पर इस तरह गुणोंके अश न बनेंगे, क्योंकि गुणोंमें विस्तार नही है। गुण तो जो ही गुण जिस एक प्रदेशमे है वह ही गुण अन्य समस्त प्रदेशोंमे है। अगर प्रदेशके भेदसे गुणोमें भेद हो जाय तो एक द्रव्य वह न मिलेगा। फिर तो जितने प्रदेश हैं उतने वे द्रव्य कहलायेंगे। तो गुण अश तरतमताके रूपसे कहा गया है। तो गुणोका क्षेत्र याने गुणोके अविभागी अश एक ज्ञानमें आते हैं पर विस्तारमे नापनेमे नहीं आ सकते, ज्ञानमे ऐसी महिमा है कि वस्तुके सर्वतोमुखी रहस्यको जाननेमें यह कुशल बन सकता है। ज्ञानमें जो जाननेकी बात आती है, परमार्थतः ज्ञानमे प्रकृति ऐसी है, ज्ञानका शील ही ऐसा है कि जो सत् है वह ज्ञानमें आयगा। ज्ञानका ऐसा शील जिनकी समझमे नहीं आता, उन्हें इस बातपर अचम्भा होता है कि भगवान एक ही समयमें तीन लोक तीन कालकी समस्त बातें एक साथ कैसे जान लेते हैं? जिनकी दृष्टिमें जाननेका उद्यम समाया हुआ है, जैसे कि यहाँ इंद्रिय प्रयोग करके जाननेका उद्यम किया करते हैं इसी प्रकारके उद्यमकी बात समाई हुई है, उनका आचरण होता है लेकिन एक ऐसा तत्त्व है कि उसमे ऐसा ही स्वभाव पडा हुआ है कि यहाँ ही रहकर बिना ही उद्यम किए अनायास ही जो कुछ भी हो वह ज्ञानमे आ जायगा। ज्ञानकी यह परिणति वृत्ति एक अलौकिक वृत्ति है, इसको पदार्थके सम्मुख होनेकी जरूरत नहीं और पदार्थोंके नियमित होनेकी जरूरत नहीं।

जब ज्ञानावरणका आवरण पडा है और विकार भावोके लगावके कारण यह ज्ञान कमजोर बन गया है, ऐसी स्थितियोमे भले ही इन इंद्रियोके द्वारा ज्ञानका उपयोग होता है उस समय अभिमुख पदार्थका ज्ञान होता है, नियमित पदार्थोंका ही ज्ञान होता है लेकिन अभिमुख और नियमित पदार्थोका ज्ञान करनेका ज्ञानमे स्वभाव नही पडा हुआ है। ज्ञानका स्वभाव तो शाश्वत यही है कि जो भी सत् है वह ज्ञानमें आये। तो जहाँ ज्ञानावरणका पूर्ण क्षय हो जाता है वहाँ इस ज्ञानमे यह निर्बाध निसीम होता ही है कि जो सत् है वह ज्ञानमे आये। और, तब यह कहना पडेगा कि जो ज्ञानमें न आये वह सत् है ही नही। ज्ञानकी इस अलौकिक वृत्तिका चित्रण चित्तमें किया जाना कठिन है। प्रभुकी महिमा अब जानेंगे कि प्रभुका कितना बडा माहात्म्य है। प्रभुकी महिमा दो गुणोंके विकाससे जानी जाती है—ज्ञान और आनन्दसे। जिस ज्ञानगुण का विकास इतना अलौकिक है कि जिसका उदाहरण कहीं नहीं है। जो सत् है, जो सत् था, जो सत् होगा वह सब ज्ञानमें है। और यो कहा जा सकता है फिर कि जो प्रभुके ज्ञानमें नही, वह कही है ही नही। इसी तरह आनन्दकी बात देखो! प्रभुका आनन्द ऐसा निस्तरङ्ग, निराकुल, शान्त, धीर, शाश्वत, गम्भीर है कि जहाँ क्षोभका अवसर नही, किसी खण्डका अवसर नहीं, अनन्त स्वाधीन शाश्वत आनन्द है जिससे वह सदा अव्याबाद रहता है। तो ज्ञान और आनन्द गुणके ये सब विकास अंश तर्तमतारूपसे जाने जाते हैं, विस्ताररूपसे नही समझे जाते।

क्रमोपदेशश्चायंप्रवाहरूपो गुणः स्वभावेन।
अर्धच्छेदेन पुनश्छेत्तव्योपि च तदर्धच्छेदेन ॥ ५७ ॥
एवं भूयो भूयस्तदर्धच्छेदैस्तदर्धच्छेदैश्च।
यावच्छेत्तुमशक्यो यः कोपि निरंशको गुणांशः स्यात् ॥ ५८ ॥
तेन गुणांशेन पुनर्गणिता सर्वे भवन्त्यनन्तास्ते।
तेषामात्मा गुण इति नहि ते गुणतः पृथक्त्वसत्ताकाः ॥ ५९ ॥

अविभागी अशके परिज्ञानके लिये अर्धच्छेदोकी पद्धतिका विवरण—गुणका अंश बतानेमें क्रमपूर्वक कुछ कथन करते हैं, गुण स्वभावसे प्रवाहरूप है, अर्थात् जैसे द्रव्य शाश्वत् है, त्रिकालवर्ती है, अनादिसे अनन्त तक उसका प्रवाह है इसी प्रकार गुणका भी द्रव्यके साथ प्रवाह है। अर्थात् गुण अनादि अनन्त है, ध्रुव है, त्रिकालवर्ती है, अब उस गुणमें गुणोकी हीनाधिकतासे अर्द्धछेद करना चाहिए। जैसे दो पुरुषोमें हीनाधिकता जानी जाती है कि इस पुरुषका ज्ञान इससे दुगुना है तो यह कहते हैं कि इससे उसका ज्ञान आधा है। लोक व्यवहारमे ऐसा कहते हुए अनेक मनुष्य पाये जाते हैं। और अनेक मनुष्योके सम्बन्धमें ऐसा कहना बनावर चलता है कि इस मनुष्यके

ज्ञानसे इसका ज्ञान आधा है। तो गुणोंमें हीनाधिकताकी अपेक्षासे एक अर्द्धच्छेद हुआ। अब उस मनुष्यसे भी जिसका ज्ञान आधा है तो वहाँ भी अर्द्धच्छेद हुआ। उसका भी अर्द्धच्छेद हुआ। यों आधा आधा अंश कर करके अन्तिम जो निरंश अंश हुआ तो उस निरंश अंशको एक गुणांश कहते हैं। यह गुणांश गुणोंसे पृथक नहीं हैं, गुणस्वरूप ही है। वह गुण स्वयं किसरूपमें प्रकट है उसकी प्रकटता बतानेके लिए अंश कल्पना है। तो यों उन समस्त गुणांशोंका जो पिण्ड है उसका नाम गुण है। यह गुणांश गुण से भिन्न नहीं, किन्तु इन गुणांशोंका जो अखण्ड पिण्ड है वही गुण कहलाता है। गुण द्रव्यकी भांति ही सत् है, द्रव्यसे प्रथक सत् नहीं है। जैसे अभेद दृष्टिमें एक पिण्ड द्रव्यको देखा तो वहाँ वह सत् समझमें आया। तो जैसे भेद दृष्टिमें केवल एक गुण-मात्र देखा तो उस दृष्टिमें यह गुण भी सत्तात्मक हुआ, असत् नहीं है, जो है उसी की ही व्याख्या है। पर द्रव्य और गुणके मुकाबलेमें जब परखा गया तो द्रव्य तो सत् है और गुण सतंश है। यों उन गुणांशोंका जो अखण्ड पिण्ड है उसका गुण कहा गया है। यह गुणांश प्रदेश विस्तारके छेदकी भांति छिन्न नहीं होते किन्तु उनमें तरतमताके अंशोंसे उनका छेद होता है।

> अपि चांशः पर्यायो भागो हारो विधा प्रकारश्च।
> भेदश्छेदो भंगः शब्दाश्चैकार्थवाचका एते ॥ ६० ॥

पर्यायके पर्यायवाची शब्द—अब यहाँ पर्यायके नामवाची शब्द हैं—अंश, पर्याय, भाग, हार, विध, प्रकार, भेद, छेद, भंग, ये सब शब्द एक ही अर्थके कहने वाले हैं। इस अर्थके आधारसे यह जाना जायगा कि किस किस बुद्धिसे किए गए अन्शोंका नाम पर्याय है? प्रथम शब्द है अन्श। अंशका अर्थ है किसी अखण्ड पिण्डका भेद करना। एक अखण्ड द्रव्य है, उसके शक्तिभेदसे अन्श किया, भेद किया, तो गुणका कथन भी पर्यायका कथन कहलाया और एक पर्यायमें जो कि एक समयमें एक द्रव्यकी है उस पर्यायमें नाना परिणमनोंका अन्श करके एक एक परिणमन ग्रहण करना इसका नाम है अन्श। तो यह अन्श ऊर्द्धसरूप पर्याय हुआ। पर्याय नाम है परिणमनका। जो परिणमन है उसे पर्याय कहते हैं। अथवा पर्याय यह एक विशेष शब्द है क्योंकि इस गाथामें पर्यायके नामवाची शब्द बताये जा रहे हैं। भाग-भाग करके जो हिस्सा हो उसे भाग कहते हैं। यह भाग गुणोंके रूपसे भी है। परिणमनके रूपसे भी है, तो यह भाग पर्याय कहलाता है। हार-एक अखण्ड पिण्डमें कुछ हरण कह लेना, कुछ निकाल कर कहना इसका नाम हार है। और उस पर्यायके जो प्रकार हैं वे विध कहलाते हैं। अर्थात् उस प्रकारका अर्थ है और उसकी जातिके अन्तर्गत ये सब अन्श हैं। प्रकार-उस जातिके जो प्रकार हैं, जितने प्रकारसे वे विस्तार हो सकते हैं वे प्रकार भी पर्याय कहलाते हैं—जैसे सम्यग्दर्शन इतने प्रकारका

है, तो सम्यग्दर्शन एक द्रव्य स्थानीय हुआ और उसका जो प्रकार हुआ वह पर्याय स्थानीय है। मुकाबलेमे जो अभेदरूप है सो द्रव्य है और जो भेदरूप होता है सो पर्याय होती है। इसी प्रकार छेद भी है। एक अखण्ड पिण्डमे किसी भी अन्श दृष्टि द्वारा छेद करना सो छेद है और उसको तोडना सो भग है। जैसे कि व्यवहार जोड़से भी होता और तोड़से भी होता। आत्मामे ज्ञान दर्शन आदिक गुण हैं इस प्रकारके तोडका नाम व्यवहार है और आत्मामें कषाय आदिक हैं ऐसा जोड करनेका नाम भी व्यवहार है। तो यहाँ भंग शब्दसे एक तोडका अर्थ लिया गया ये सब एक अर्थ के वाचक हैं।

सन्ति गुणांशा इति ये गुणपर्यायास्त एव नाम्नापि।
अविरुद्धमेतदेव हि पर्यायाणामिहांश धर्मत्वात् ॥ ६१ ॥

गुणांशोंकी गुणपर्यायरूपताका कथन—जितने भी गुणांश हैं वे सब गुण पर्याय कहलाते हैं। यह बात बिल्कुल सिद्ध है और अंश स्वरूप ही पर्याय होती है ये अन्शके धर्म हैं पर्याय अर्थात् जिस किसी भी प्रकारसे एक अखण्ड वस्तुमें हिस्से करना इसका नाम पर्याय है। अब वे हिस्से चाहे एक शक्ति भेदरूप हों और चाहे गुणोंकी हीनाधिकतारूपसे हों, वे सब पर्यायें कहलाती हैं। यों उक्त गाथामे बताये गये अन्श पर्याय, भाग, हार आदिक, ये सब पर्यायके ही वाचक शब्द हैं।

गुणपर्यायाणामिह केचिन्नामान्तरं वदन्ति बुधाः।
अर्थो गुण इति वा स्यादेकार्थादर्थपर्यया इति च ॥ ६२ ॥

अर्थ पर्यायके नामसे भी गुणपर्यायके उल्लेख होनेका संकेत—कितने ही बुद्धिमान पुरुष गुण पर्यायोंका एक दूसरा नाम भी कहते हैं, क्या ? अर्थ पर्याय। गुण और अर्थ दोनो ही एक वाच्यके वाचक शब्द हैं इस कारणसे गुण पर्यायका दूसरा नाम अर्थ पर्याय भी कह देते हैं। निरुक्ति अर्थसे देखा जाय तो गुणका अर्थ है गुण्यते भिद्यते इति गुणः। जो गुणित किया जाय, भेदा जाय उसे गुण कहते हैं। वस्तु अपने अखण्ड स्वरूपमें है, वह शाश्वत् एक स्वभाववान है उसका भेद स्वभाव भेदके रूपमें होता है, और यों उस एक स्वभावके पहिचाननेके लिए जो भिन्न भिन्न प्रकारके स्वभाव परखे जाते हैं, जिनका अभेद अखण्ड एक स्वभाव है बस उन सब भेदोंको गुण कहते हैं, यह तो है गुणशब्दका निरुक्ति अर्थ और अर्थका अर्थ है अर्थते निश्चीयते इति अर्थः। जो निश्चय किया जाय, जाना जाय उसे अर्थ कहते हैं। अर्थ शब्दमे गुण के भावकी बात सीधे रूपमे नही है, इस कारणसे यह रूढ शब्द है। निश्चयमे तो सब कुछ आता है फिर भी सिद्धान्तमें यहाँ अर्थको गुण शब्दसे कहा है, पर अनेक

प्रसंगोमें अर्थको पदार्थ कहा गया है अथवा और व्यापक क्षेत्रमें चलिए तो अर्थको बताया गया है। जो द्रव्य गुण पर्यायमें अवस्थित हो सो अर्थ है। अर्थात् पर्याय गुण और द्रव्यसे भी व्यापकरूप है अर्थका। और, उस स्थितिमें अर्थ पर्याय होगी अगुरुलघुत्व-गुणकी हानि वृद्धिरूप। जो वाच्य हो जितना है सो है। अब उसे किस शब्दसे कहा जाय यह एक पूर्व पूर्व प्रयोगके अनुसार बात होती है। वहाँ गुणको अर्थ शब्दसे कहा गया है तो गुण पर्यायका अर्थ भी अर्थ पर्याय हुआ। यह गुण पर्यायका नामान्तर है। अब द्रव्य पर्यायका नामान्तर सुनो !

अपि चोद्दिष्टानामिह देशांशैर्द्रव्य पर्ययाणां हि।
व्यञ्जनपर्याया इति केचिन्नामान्तरं वदन्ति बुधाः॥ ६३ ॥

व्यञ्जन पर्यायके नामसे भी द्रव्य पर्यायके उल्लेख होनेका सकेत – कितने ही बुद्धिशाली पुरुष द्रव्यका दूसरा नाम व्यञ्जनपर्याय कहते हैं। प्रदेशत्व गुण के निमित्तसे होने वाली पर्याय अथवा प्रदेशत्व गुणके विकारको व्यञ्जन पर्याय कहते हैं। जिसमें प्रदेशका विस्तार है, आकार है उससे सम्बन्धित जो परिणमन है वे सब व्यञ्जन पर्यायें कहलाती हैं। उक्त प्रसंगमें देश देशांश, गुण गुणांश, कहा गया था। देशका अर्थ है देशके अन्स। देश मायने द्रव्य अर्थात् द्रव्यके अन्श अर्थात् उन प्रदेशोंके द्वारा द्रव्य पर्यायका वर्णन किया गया था। उन ही द्रव्य पर्यायोंको व्यञ्जन पर्याय नामसे अनेक बुद्धिमान पुरुष कहते हैं, द्रव्य पर्यायमें जैसे सर्वप्रथम जीवकी द्रव्य पर्यायें नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और सिद्ध, इन ५ रूपोंमें जीवकी द्रव्य पर्यायें प्रकट होती हैं। पुद्गलकी पर्यायोंमें शब्द बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, भेद अन्धकार, छाया, प्रकाश, आदिक व्यञ्जन पर्यायें प्रकट होती हैं। अमूर्त द्रव्योंकी व्यञ्जन पर्यायें प्रत्यक्ष गोचर नहीं है, वचन गोचर पदार्थोंकी है। तो पदार्थोंके प्रदेशके आकार आदिकसे सम्बन्धित जो परिणमन है वह द्रव्य पर्याय कहलाती है। उन्हींका नाम व्यञ्जन पर्याय कहलाती है। उन्हीका नाम व्यञ्जन पर्याय है। व्यञ्जन पर्यायके सम्बन्धमें भी एक अभिमत यह है कि जितनी पर्यायें प्रकट हो सकती हैं वे तो व्यञ्जन पर्यायें हैं। चाहे वह गुण पर्याय हो अथवा द्रव्य पर्याय हो वे सब व्यञ्जन पर्यायें हैं, और, पदार्थमें साधारण अगुरुलघुत्व गुणके द्वारा जो निरन्तर षड् गुण हानि वृद्धि रूप परिणमन चलते रहते हैं वे अर्थ पर्यायें हैं। वाच्य तो ये सब हैं। उनको कहने वाले शब्द एक पूर्व पूर्व प्रकारके अनुसार बनाये जाते हैं, कहे जाते हैं। यहाँपर जितने भी व्यक्त होने वाले परिणमन हैं वहाँ भी उन्हें व्यञ्जन पर्याय कहा है। और, इस गाथामें द्रव्योंके प्रदेशत्व गुणके निमित्तसे जो परिणति आकार प्रकट होता है वे सब व्यञ्जन पर्यायें हैं।

ननु मोघमेतदुक्तं सर्वं पिष्टस्य पेषणन्यायात्।
एकेनैव कृतं यत् स इति यथा वा तदंश इति वा चेत्॥ ६४ ॥

देश देशांशमेसे किसी एकके कथनसे ही कार्य चल जानेसे दोनोके कथनको व्यर्थ बतानेकी आरेका—यहाँ शङ्काकार कहता है कि ऊपर अभी जितने भी कथन किए गए हैं वे सब पिष्टपेषणकी तरह है, पिसे हुएको ही पीसा गया है। अरे जब एक शब्दके कहनेसे काम चलता है तो दूसरेके कहनेकी क्या आवश्यकता है? देखिये ! एक द्रव्यको कहकर भी काम चलाया जा सकता है, अधिगम किया जा सकता है, सो द्रव्य ही कहना चाहिए। अथवा पर्यायके वर्णनसे भी वही काम चलता है तो पर्याय ही कह लीजिए ! अब द्रव्य और पर्यायको जुदा जुदा कहना निष्फल है। द्रव्य भिन्न हो, पर्याय भिन्न हो ऐसा भी तो नही है। इस कथनसे भी यहाँ किसीकी बात कहकर बोधका उद्यम पूरा करना चाहिए। उन्हे जुदा जुदा कहना व्यर्थ है। अब इस शङ्काके समाधानमे कहते हैं।

तन्नैवं फलवत्त्वाद् द्रव्यादेशादवस्थितं वस्तु।
पर्यायादेशादिदमनवस्थितमति प्रतीतत्त्वात् ॥ ६५ ॥

द्रव्यादेशसे नित्यत्व व पर्यायादेशसे अनित्यत्व प्रतीत होनेसे द्रव्य, पर्याय दोनोके निरूपणकी सार्थकता—द्रव्य और पर्याय इन दोनोमे से एकका ही निरूपण किया जाना चाहिए, यह शङ्का युक्त नही हैं क्योंकि द्रव्यका और पर्यायका दोनोका निरूपण करना आवश्यक है। वस्तु द्रव्य दृष्टिसे नित्य है, पर्याय दृष्टिसे अनित्य है, यह बात कोई कैसे समझे ? वस्तुकी नित्यानित्यात्मकताकी प्रतीति, उनमे उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूपका ही परिचय, तो द्रव्य और पर्याय दोनोके कथनसे ही हो सकेगा। द्रव्य और पर्याय दोनोका वर्णन करना तो अति आवश्यक है, इसके बिना कुछ भी ज्ञानप्रकाश नहीं हो सकता। पर्यायोके बोध किए बिना द्रव्यका बोध नहीं हो सकता। और द्रव्यका बोध किए बिना पर्यायका बोध नही हो सकता। वस्तु है और वह निरन्तर परिणमती रहती है। यह तो वस्तुकी खासियत ही है अन्यथा वह सत् न रह सकेगा। कोई पदार्थ परिणमे तो नही और रहे, ऐसा होता ही नही है। कोई पदार्थ ध्रुव तो रहे नहीं और उसकी अवस्थायें बनें, यह हो नही सकता। तो वस्तु चूंकि नित्यानित्यात्मक है उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है, तब उसका वर्णन केवल द्रव्यके कहनेसे न होगा अथवा केवल पर्यायके कहनेसे न होगा किन्तु द्रव्य और पर्याय दोनोका ही निरूपण होनेपर यह मर्म जाना जा सकेगा।

द्रव्यादेश या पर्यायादेशके एकान्तमे वस्तुत्वकी निरूपताका दर्शन—जितने भी अनेक दर्शन हैं वे सब द्रव्य और पर्यायके किसी आधारपर बने हुए हैं और इसीमे कोई एकान्त हो जानेसे उनमे विपरीतपना आ जाता है। कुछ भी कथन किया जाय लोकव्यवहारमें वह भी द्रव्य पर्याय दृष्टिसे भरा हुआ होगा। लोकव्यवहार भी

इस अभेद और भेदकी पद्धतिके बिना बन नहीं सकता। परमार्थमे जितना भी तत्त्वो का अवबोध है, जितना भी आर्षनिरूपण है यह सब द्रव्यपर्यायमे व्याप्त है। यदि द्रव्य और पर्याय दोनोंका निरूपण न किया जाय तो वस्तुमें कथंचित् नित्यपना और कथंचित् अनित्यपनेकी सिद्धि नहीं हो सकती। वस्तुकी द्रव्य पर्याय स्वरूपता न जाननेसे कुछ दार्शनिक लोग किस अभिमतमे पहुचते हैं कि सत्य तो कोई एक अनिर्वचनीय है, जिसे ब्रह्म शब्दसे कहा जाता है यह अपरिणामी है, उसका कोई व्यक्त रूप नहीं है। ऐसा मानकर भी समस्याका हल नहीं हो पाता। यहाँ एक परिणमन भेद अवश्य है कि फिर जो यह व्यक्त रूप दिख रहा है यह सब क्या है ? किसका परिणमन है ? तो वहाँ यह कल्पना करनी पड़ी कि यह सब प्रकृतिका परिणमन है। और, प्रकृतिके परिणमनमे भी तो आखिर उत्पाद व्यय ध्रौव्य जैसी स्थितिसे मनाई नहीं की जा सकती। एक प्रकृति प्रधान है यह ध्रुव है और उसके अहंकार स्वार्थ आदिक जो व्यक्तरूप हैं वे उत्पादव्यय वाले हैं। तो कितना भी बचा जाय, उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूपको माननेसे बचा नहीं जा सकता। एक उस ब्रह्मको ही यदि कुछ भी परिणमन न माना जाय, उसकी कोई व्यक्ति न समझी जाय तो उसका भी सत्त्व क्या रहेगा ? तो वस्तु द्रव्य पर्यायरूप है अतएव द्रव्य और पर्याय दोनोंका ही निरूपण करना आवश्यक है। यहाँ यह शङ्का न करना कि केवल द्रव्यके निरूपणसे ही काम चल जायगा अथवा केवल पर्यायसे ही काम चल जायगा। पर्यायके एकान्तमे क्षणिकवाद बनता है जो युक्तिसिद्ध नहीं है और द्रव्यके एकान्तमे अपरिणामी अद्वैतवाद बनता है जो कि युक्त सिद्ध नहीं है। वस्तुका सही स्वरूप जाननेके लिए द्रव्य और पर्याय दोनों का अवगम और निरूपण आवश्यक है।

सयथा परिणामात्मा शुक्लादित्वादवस्थितश्च पटः।
अनवस्थितस्तदंशैस्तरतमरूपैर्गुणस्य शुक्लस्य ॥ ६६ ॥

एक वस्तुमें अवस्थितता व अनवस्थितताका दृष्टान्त—पदार्थ नित्य और अनित्य किस प्रकार होता है उसका इस गाथामे वर्णन है, यह तो पहिले बता ही दिया था कि द्रव्यकी अपेक्षासे वस्तु नित्य है और पर्यायकी अपेक्षासे वस्तु अनित्य है, इसी कारण द्रव्य और पर्याय दोनोका कहना आवश्यक है। तो उस ही नित्यता और अनित्यताको समझानेके लिए एक यहाँ दृष्टान्त दिया जा रहा है। जैसे वस्त्र सफेदी आदिक अनन्त गुणोका समूह है और वह वस्त्र जो कि गुण पिण्ड है किन्तु अवस्थाओं को प्रतिसमय बदलता है और अवस्थाओंके बदलनेपर भी गुणोंका नाश कभी नहीं होता। तब नित्य और अनित्य दोनो बातें सिद्ध हो गई ना ? और, इसमे भी गुण पर्यायकी नजर रखें तो शुक्ल आदिक गुणोमे, तरतमता आदिक रूप चलते ही हैं, इस अपेक्षासे भी अनित्य है। तो अनित्यता इन गुणांशोमे यो जानी गयी कि वहाँ जो एक

अंश दूसरे अंशसे भिन्न नही है तो वह अशमात्र वस्तु रह जायगी, अनेक अंश न कहे जायेंगे, जैसे किसी आदमीको बुखार है १०० डिग्री तो १०० डिग्रीमे अश १०० कल्पित हैं। अब उन अंशोमे यह भेद तो समझना ही होगा कि प्रत्येक अश अपने अपमेरूप रख रहे हैं और एक अश अन्य अशोसे भिन्न है। यदि ऐसी एक दृष्टिमे भिन्नता न मानी जाय अशोमे तो उनका समूह मिलकर भी एक ही अंश रहेगा, वहाँ डिग्रियाँ सब खतम हो जायेंगी। वस्तुके स्वरूपमे अभेद और भेद किस तरह खचित हैं कि अभेद होनेपर भी भेद बतानेकी बात सत्य है और भेद स्वीकार किए बिना वह अखण्ड अभेद नही हो पाती। और यों व्यवहारमे समझनेके लिए उनमे भेद है, इतने पर भी भेद ही नही है, अभेद है तब ये भेद बनाये जा रहे हैं। तो एक गुण जो शाश्वत है उसे गुणाशकी तर्तमत बोलते हैं, इस दृष्टिसे वह अनित्य है और उन हीनाधिकतामे आये हुए अश या जितने भी जब जो अंश हैं वहाँ एक अंशसे दूसरा अंश भिन्न है, सर्वथा भिन्न नही कह सकते। यद्यपि द्रव्यमे भेदमे अभिन्न है, उनकी स्वतंत्र सत्ता नही है लेकिन लक्षणसे और अपने अशत्वसे भी वे भिन्न न हो तो फिर अश ही क्या रहेगे ? तो जैसे वह वस्त्र क्या है ? गुणोंका पिण्ड है। सफेदी है या अन्य जो भी गुण हैं उन गुणोका वह समूह है। और वस्त्र वदलता है तो वह गुण भी अपनी तर्तमतोमे वदलता है, तो बदल कर भी मिटता नही है और वही रहकर भी बदलती रहती है, यह बात वहाँ पायी जाती है; इससे सिद्ध है कि वस्तु कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है। इस ही नित्यता और अनित्यताको समझानेके लिए एक उदाहरण दे रहे हैं।

अपि चात्मा परिणामी ज्ञानगुणत्वावस्थितोपि यथा।
अनवस्थितस्तदंशैस्तरतमरूपैर्गुणस्य बोधस्य ॥ ६७ ॥

ज्ञाता पदार्थमे अवस्थितपने व अनवस्थितपनेका निर्देशन—आत्मा अवस्थित है, सदाकाल रहता है फिर भी वह आत्मा अपरिणामी है और आत्मामें ज्ञानगुण सदा रहता है उस दृष्टिमे आत्मा नित्य है, लेकिन उस ज्ञानगुणके निमित्तसे उनके तर्तमोकी हीनाधिकताके व्यक्त होनेसे आत्माका प्रतिक्षण परिणमन होता रहता है याने कभी ज्ञानगुणके अधिक अश प्रकट रहते हैं कभी कम। संसार अवस्थामें ऐसी हीनाधिकता होती रहती है। उस हीनाधिकताके कारण आत्मा कथंचित् अनित्य भी है। ऐसे अशोका हीनाधिक होना यह विकृत पदार्थोमे जल्दी पहिचानमे आता है। लेकिन जो पदार्थ स्वभाव परिणमनमे हैं, शुद्ध हैं उनमे भी तर्तमता का परिणमन तो है अर्थात् अगुलंघु गुणकी वृद्धि है, लेकिन वह उतने अगुरुलघु गुण की वृद्धि होनेपर भी उनका जो व्यक्त परिणमन है उस परिणमनमे विपरीतता नही आ पाती और न ऐसा परिवर्तन होता है कि जिसमे पहिली पर्यायकी अपेक्षा दूसरी

पर्यायमें भिन्नता स्पष्ट की जा सके। तो पदार्थ गुणोंका पिण्ड है। गुण शाश्वत है और गुणोंमें तरतमता होती है, उस हीनाधिकताकी व्यक्तिके कारण गुणांश अनित्य है, अर्थात् पर्याय दृष्टिसे वस्तु अनित्य है और गुण शाश्वत है इस दृष्टिसे अर्थात् पदार्थ द्रव्य दृष्टिसे नित्य है। अब यहाँ शङ्काकार आशङ्का करता है —

यदि पुनरेवं न भवति भवति निरंश गुणांशवद्द्रव्यम् ।
यदि वा कीलकवदिदं भवति न परिणामि वा भवेत् क्षणिकम् ।६८।
अथवेदिदभाकूतं भवन्त्वनन्ता निरंशका अंशाः ।
तेषामपि परिणामो भवतु समांशो न तरतमांशः स्यात् ॥ ६६ ॥

द्रव्य गुण पर्यायकी व्यवस्था न मानकर शङ्काकारके निरंश द्रव्य, अपरिणामी, क्षणिक व समांश सम्बन्धी चार विकल्प—शङ्काकार कहता है कि कि देश देशांश, गुण गुणांशकी और उनमें नित्यत्वकी जो कल्पना की गई है ऐसा यदि न माना जाय अथवा यों चार विकल्पोंमें उनको समझा जाय तो इसमें क्या हानि है? पहिली बात तो यह है कि गुणांशकी तरह द्रव्यको निरंश माना जाय। जैसे कि गुणांश एक अविभागी अंशका नाम है, यों ही द्रव्यमें भी एक गुणांशके ढङ्गका निरंश माना जावे। तो फिर उसमें गुण गुणांशकी कल्पनाका श्रम न करना पड़ेगा। द्रव्य है और वह निरंश है। दूसरी बात उस निरंश द्रव्यको परिणामी न माना जाय। जैसे कि एक कूटस्थ ज्योंका त्यों वहीं गड़ा रहता है उसी तरह इस निरंश द्रव्यको भी वैसा का वैसा ही अपरिणामी माना जाय। लोहेकी दुकानपर भरसनाके पास एक लोहेका बहुत मोटा कीला गड़ा रहता है और जैसे लोहेके टुकड़ेको पसारना है अथवा उसकी कोई चीज बनाना है तो वह उस भरसनामें गरम करके उस टुकड़ेको सनसीसे पकड़कर उस कूटस्थपर रखकर हथौड़ेसे पीटते हैं और उस सम्बन्धमें देखिये, चार लोहे हुए— एक तो गड़ा हुआ, दूसरा वह टुकड़ा जो गर्म है, जिसकी कोई चीज बनाई जारही है। तीसरी—सनसी जिससे वह टुकड़ा पकड़ा गया। चौथा—हथौड़ा। तो ४ लोहोंमें ३ लोहे तो निरन्तर अदल बदल करते रहते हैं। पीटने वाला हथौड़ा भी कितना कार्य कर रहा है, सडासी भी कितना कार्य करती है, यह टुकड़ा भी कितनी क्रिया कर रहा है लेकिन जिस लोहेपर ये सब पीटे जा रहे हैं वह लोहा तो जहाँका तहाँ गड़ा है, उसमें क्रिया नहीं होती। तो ऐसे ही उस कूटस्थकी तरह निरंश द्रव्यको भी अपरिणामी माना जाय, अदल बदल न करे, न कोई क्रिया है अथवा तीसरी बात यों स्वीकार कर लीजिये कि वह द्रव्य सर्वथा ही क्षणिक है। प्रथम समयमें स्वरूप लाभ लिया, द्वितीय समयमें वह नष्ट हो गया अथवा चौथी बात यह मान लीजिए कि उस द्रव्यके अनन्त निरंश अंश हैं और फिर उन निरंश अंशोंका बराबर समान परिणमन

है। तर्तमता और हीनाधिकताकी क्या बात है ? यो चार प्रकारोंमे पदार्थको माना जाय तो क्या दोष है ? ऐसी शङ्काकारकी शङ्का है।

एतत्पक्षचतुष्टयमपि दुष्टं दृष्टाबाधितत्वाच्च।
तत्साधकप्रमाणाभावादिह सोऽप्यदृष्टान्तात् ॥ ७० ॥

शङ्काकारके चारो विकल्पोंमे निरंशद्रव्यत्व व अपरिणामित्व इन दो विकल्पोकी दूषितताका वर्णन—शङ्काकारने जो चार विकल्प रखे है वे चारो ही विकल्प दोषसहित हैं। उनमे प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही बाधा आती है। न तो उन विकल्पो का कोई साधक प्रमाण है, न उनकी सिद्धिमें कोई दृष्टान्त है इसलिए भी वह विकल्प दूषित है। शङ्काकारका प्रथम विकल्प था कि द्रव्यको गुणांशकी तरह माना जाय। जैसे गुणांश गुणकी हीनाधिकताका अविभागी अंश है तो गुणोंकी हीनाधिकताका अविभागी अशमात्र ही द्रव्य क्यों न कहा जाय ? इस विकल्पकी सिद्धि यो नही है कि गुणोका परिणमन फिर एक देशमे ही होगा। याने किसी भी गुणका कार्य सम्पूर्ण वस्तुमें नही हो सकता। क्योकि अब द्रव्यको मान लिया गया गुणोकी तर्तमता एक अविभागी अंशमात्र तब गुणका परिणमन कहाँ रहा ? तो सम्पूर्ण वस्तुमे गुण न सम्भव होगा इस कारण द्रव्यको गुणांशकी तरह निरंश नही माना जा सकता। दूसरा विकल्प शङ्काकारका था कि उस निरंश द्रव्यको परिणामी न मानकर कूटस्थ नित्य ही माना जाय सो इस सम्बन्धमे विचार करिये कि यदि उस द्रव्यको कूटस्थ नित्य माना जाता है तब इसका अर्थ है कि उसमे कोई परिणति कोई क्रिया न होगी। और जब परिणति और क्रिया कुछ भी न होगी तो पहिली बात तो यह है कि उसका सत्त्व ही नही ठहर सकता। सत्त्वका फिर मतलब क्या है ? दूसरी बात यह है कि जब क्रिया नही होती तो पुण्यफल, पापफल, बंध मोक्ष आदिककी कुछ भी व्यवस्था नहीं बन सकती। यदि द्रव्यको एकान्तत. नित्य ही स्वीकार किया जाय तो न कोई उसमें क्रिया हुई तो कारकपनेकी बात ही न रही। फिर तो वस्तुत एक परमाणु भी क्या? उसका कोई फल भी न रहेगा। मोक्षके यत्नकी बात ही क्या, लोक व्यवहार भी क्या ? सर्व शून्य हो जायगा। तो यह दूसरा विकल्प भी युक्तिसंगत नही है कि उस द्रव्यको सर्वथा कूटस्थ नित्य मान लिया जाय।

निरंश द्रव्य और उसको क्षणिक माननेके तृतीय विकल्पकी दूषितता शङ्काकारका तीसरा विकल्प था कि उस द्रव्यको सर्वथा क्षणिक माननेसे प्रत्यभिज्ञा नही हो सकती अर्थात् यह वही है जिसको पहिले देखा था आदिक रूपमे जो सकलनात्मक ज्ञान होता है वह न हो सकेगा। और फिर वस्तुको क्षणिक माननेपर फिर धर्ममार्गका लोप हो जायगा। पुनर्जन्म परलोक आदिक फिर कुछ न ठहरगे। तो

किसके लिये ये धार्मिक कृत्य किए जा रहे हैं और लोकव्यवहार भी किस आधारपर किया जा रहा है ? तब वस्तुमें सर्वथा क्षणिकता ही है, वहाँ किसी भी तरह ध्रुवता स्वीकार ही नहीं है तो किसका लेन-देन ? कौन सा कार्य करना ? संस्कार कुसंस्कार कहाँ ? ये सब बातें व्यवहारकी भी समाप्त हो जायेंगी । कार्य ही न किया जासकेगा । तो फलकी बात तो असम्भव ही है । पदार्थको सर्वथा क्षणिक नहीं माना जा सकता । यद्यपि ये सब विषय स्वतन्त्र हैं, नित्य एकान्त माननेमें क्या दोष है ? क्षणिक एकान्त माननेमें क्या दोष है ? फिर भी प्रसङ्गका संक्षेपमें यह समाधान कर लेना चाहिए कि वस्तुको सर्वथा नित्य या सर्वथा अनित्य माननेमें न तो धार्मिक व्यवहार रहेगा और न लोकव्यवहार रहेगा । सर्वथा माननेमें कार्यकारण भाव भी नहीं बन सकता । कौन किसका कार्य है ? किसका निमित्त है ? क्या व्यवस्था होगी ? जब क्षणभरको पदार्थ आया और स्वरूप लाभ करके पदार्थ नष्ट होगया तो फिर उसमें क्या व्यवहार रहा ? इस कारण तीसरा विकल्प भी शङ्काकारका अयुक्त है ।

अनन्त निरंश अंशोंको समाश माननेके चतुर्थ विकल्पकी दूषितता— शङ्काकारके अब चौथे विकल्पकी बात सुनो । चौथा विकल्प यह था कि उस द्रव्यके अनन्त निरंश मान लिए जायँ और उन प्रत्येक अंशोंका समानरूपसे परिणमन मान लिया जाय । तरतम रूपसे परिणमन न माना जाय तो इसमें आपत्ति क्या है ? शङ्काकारका यह चौथा विकल्प तो उठा कि पहिले यह बताया गया था कि पदार्थ कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है । गुणकी अपेक्षासे तो पदार्थ नित्य है और गुणांशकी अपेक्षासे पदार्थ अनित्य है । जैसे कि जीव सदा ज्ञानगुणमय रहता है उस दृष्टिसे जीव नित्य है, पर जीवमें ज्ञानगुणके अंश जो हीनाधिकतारूप प्रकट होते रहते हैं, पहिले ज्ञान थोड़ा था, अब ज्ञान दुगना हो गया, अब तिगुना हो गया । उसमें जो हीनाधिकताके अंश व्यक्त होते हैं उसके कारण वह जीव अनित्य है । अभी इस अंश-मय था, अब इस अंशमय हो गया । ये विभिन्नतायें जो दीखती हैं वे अनित्यताको सूचित करती हैं । इस बातपर शङ्काकारका चौथा विकल्प था कि हीनाधिक अंशोंसे द्रव्यकी अनित्यता क्यों सिद्ध कर रहे हो ? वे प्रत्येक अंश स्वतन्त्र रहें और फिर उन्हें तरतमरूपसे नहीं माना । जो जैसा है सो है अथवा रहा सब अंश समान, ऐसा माननेमें क्या आपत्ति है ? यह शङ्काकारका चौथा विकल्प था । उस विकल्पकी अयुक्तता भी देखिये ! यदि निरंश अंश मान कर उनके समान परिणमन माने जायें, तरतमरूपसे न माने जायें तो अर्थ यह होगा कि द्रव्य सदा एक साथ है । अब उस द्रव्यमें अवस्थाका भेद नहीं बन सकता, पर अवस्थाभेद तो प्रत्यक्ष सिद्ध है । उसे कोई मना नहीं कर सकता इस कारण यह चौथा विकल्प भी युक्त नहीं है । ये सब बातें एक द्रव्यमें घटितकी जा रही हैं और द्रव्यसे सम्बन्धित हैं इस कारण अब द्रव्यका ही स्वरूप कह रहे हैं ।

द्रव्यत्वं किन्नामः पृष्टश्चेतीह केनचित् सूरिः ।
प्राह प्रमाणसुनयैरधिगतमिव लक्षणं तस्य ॥७१॥

द्रव्यके लक्षणकी पृच्छना–किसी जिज्ञासुने यह जिज्ञासा करके कि आखिर द्रव्य नाम किसका है और द्रव्यका यथार्थ लक्षण क्या है ? प्रश्न किया कि द्रव्यत्व नाम है किसका ? द्रव्य क्या पदार्थ है ? और द्रव्यपनेका मतलब क्या है ? ऐसा प्रश्न किए जानेपर आचार्य महाराज उत्तर देते हैं कि देखिये ! जो प्रमाण और सुनयसे अच्छी तरह जाना हुआ लक्षण है वह द्रव्यका बताया जायगा । उसे ध्यान पूर्वक सुनो ! लक्षण वही सही होता है जो प्रमाण और सुनयसे सुनिश्चित है । पदार्थकी पहिचान लक्षणसे होती है । सो लोग भी किसी पदार्थका परिचय करनेके लिए कोई चिन्ह ही बताया करते हैं । जिसका ऐसा चिन्ह पाया जाय वह अमुक पदार्थ है, तो पदार्थका द्रव्यका लक्षण कहा जायगा । द्रव्यका पहिचान बताया जायगा । वह पहिचान यदि प्रमाणसे प्रमाणित है और सुनयसे सम्मत है; किसी बाधक प्रमाणसे बाधित नहीं है तो वह लक्षण लक्ष्यका निश्चय करानेमे समर्थ होता है । ऐसे ही लक्षणको अब कहते हैं ।

गुणपर्ययवद् द्रव्यं लक्षणमेतत्सुसिद्धमविरुद्धम् ।
गुणपर्ययसमुदायो द्रव्यं पुनरस्य भवति वाक्यार्थः ॥ ७२ ॥

द्रव्यका प्रथम लक्षण "गुणपर्ययवद् द्रव्यम्"–द्रव्यका सीधा स्पष्ट सामान्य लक्षण है गुणपर्ययवत् द्रव्य जिसमें गुण पर्याय पाये जायें वह द्रव्य है । यह लक्षण प्रमाणसे सिद्ध है और किसी बाधक प्रमाणसे बाधित नही है । गुणपर्ययवत् द्रव्यं । इसमें शब्द इतना है गुण पर्ययवत् द्रव्यं । द्रव्य तो यहाँ विशेष्य है, जिसकी विशेषता अथवा लक्षण कहा जा रहा है । द्रव्य कैसा होता है ? तो उत्तर दिया गया गुणपर्याय वाला होता है । इसमे वत् शब्दका अर्थ 'वाला' है यह अव्यय नही है जिसका कि "तरह" अर्थ होता है । वत्के मायने तरह भी है, लेकिन यह वत् प्रत्यय जो प्रत्यय स्वामित्व अर्थमें लगता है, जैसे धनवान, ज्ञानवान यों ही यह वत् प्रत्यय लगा हुआ है, जिसका अर्थ तो सीधा यह विदित होता है कि गुणपर्याय वाला है, लेकिन इस कथन से यह न समझ लेना कि गुण कोई अलग चीज है और पर्याय कोई अलग चीज है । फिर उनका द्रव्यमें सम्बन्ध होता है । वह द्रव्यमे रहता है सो उन दोनोका आधारभूत द्रव्य कोई अलग पदार्थ है ऐसा अनर्थ न करना ।

द्रव्यका द्वितीय लक्षण "गुणपर्ययसमुदायः द्रव्यम्"—जो विवेकी जन हैं वे थोड़ेसे शब्दोंसे ही यथार्थ बात समझ लेते हैं । फिर भी कोई गुण पर्याय वाला

द्रव्य है, इस कथनसे इस आशयमे न पहुच जायें कि गुण, अपर्याय और द्रव्य तीनो भिन्न–भिन्न चीज हैं और उन दोके सम्बन्धसे फिर द्रव्यको गुणपर्याय वाला कहा है। जैसे कोई कहे कि यह पुरुप घर कुटुम्ब वाला है तो उसमें तीन बातें प्रथक प्रथक विदित होती हैं कि घर अलग है, कुटुम्ब अलग है और यह पुरुप अलग है। यो ही कोई न समझले कि गुण और पर्याय अलग है और द्रव्य अलग है। इस अनर्थ अर्थका सदेह न रहे, इसके लिए आचार्य महाराज स्वयं ही दूसरी बात लक्षणके प्रसगमे कह रहे हैं कि भाई उसका अर्थ यह है कि जो गुणपर्यायका समुदाय है सो द्रव्य है। वाला शब्द लगनेसे भिन्न चीज है, उनसे सहित द्रव्य है, यो न समझना, किन्तु द्रव्य, गुण-पर्यायका समुदाय ही है। गुणपर्याय समुदायः द्रव्य। यह तो वाक्यार्थ है। पहिले यह बात स्पष्टरूपसे कह दी गई थी कि द्रव्य अनन्त गुणोंका अखण्ड पिण्ड ही है और वे गुण प्रतिसमय अपनी परिणति करते रहते हैं, अपनी अवस्था वदनले रहत हैं इस कारण त्रिकालवर्ती पर्यायोको लिए हुए जो वे समस्त गुण हैं उनका ही अखण्ड पिण्ड द्रव्य कहलाता है। तो गुणपर्यायका समुदाय द्रव्य है, यह निष्कर्ष द्रव्यके लक्षणका समझना चाहिए।

गुण समुदायो द्रव्यं लक्षणमेतावताप्युशन्ति बुधाः।
समगुणपर्यायो वा द्रव्यं कैश्चिन्निरूप्यते वृद्धैः॥ ७३॥

द्रव्यके तृतीय और चतुर्थ लक्षणको बतानेके लिये प्रथम द्वितीय लक्षण की भूमिका—कुछ अनुभवी पुरुष द्रव्यका ऐसा लक्षण कहते हैं कि समान रीतिसे होने वाली गुणोकी पर्याय ही द्रव्य है। यहा तक द्रव्यके चार प्रकारके लक्षण कहे गए हैं। पहिला लक्षण तो कहा गया—गुण पर्याय वाला द्रव्य है। दूसरा लक्षण कहा गया-- गुण पर्यायका समूह द्रव्य है। तीसरा लक्षण कहा गया— गुण समुदायका नाम द्रव्य है और चौथा लक्षण कहा गया—गुण पर्यायके बराबर द्रव्य है। इन सब लक्षणोंमे क्रमशः अभेद दृष्टिका उत्तरोत्तर अवलम्बन किया गया है। प्रथम लक्षण एक साधारण रूपसे है कि गुण पर्याय वाला द्रव्य है। जिसमे गुण और पर्यायें हो, जिसके गुण और पर्यायें हो उसे द्रव्य कहते हैं। यह स्थूलतया समझका व्यवहार बनानेके किए प्रसिद्ध और उपयोगी लक्षण है, किन्तु जब यहाँ कोई शङ्का करने लगे, कि तो क्या धनवानकी तरह जैसे कि धन अलग और धनवान पुरुष अलग है क्या द्रव्य अलग है, गुण पर्याय अलग है और फिर गुणपर्याय वाला होनेपर वह द्रव्य कहलाये। तो ऐसी भेद दृष्टिमें आकर होने वाली शङ्काको दूर करनेके लिए दूसरा लक्षण कहा गया है कि गुण पर्याय अलग हो और द्रव्य अलग हो, गुणपर्याय वालेको फिर द्रव्य कहा जाय ऐसा नहीं है, किन्तु गुण और पर्यायका जो समुदाय है वही द्रव्य है, याने गुणपर्याय द्रव्यसे पृथक नही है किन्तु गुणपर्यायका समुदाय ही द्रव्य है।

वस्तुस्वरूपके निकट व अनिकट पहुँचनेके लिए द्रव्यके तृतीय व चतुर्थ लक्षणका वर्णन—अब इस द्वितीय लक्षणमे भी भेददृष्टि करके यह शङ्का की जा सकती है कि गुण अलग कहा, पर्याय अलग कहा, तो गुण प्रकट हुआ, पर्याय प्रथक होगा और उन सबका समुदाय है सो द्रव्य कहलायेगा। सो भेददृष्टिमे शङ्का होनेपर यह तीसरा लक्षण समाधान कर देता है। द्रव्य गुणके समुदायका नाम है। जो गुण है वह प्रतिसमय अपना उत्पाद व्यय तो करेगा ही। अतएव पर्याय गुणोसे अभिन्न है। उस अभिन्न पर्यायको अलग बताकर फिर उनका समुदाय बतानेमे शङ्का हुई थी। तो द्रव्यको गुणसे अभिन्न निरखकर फिर केवल गुणोका समुदाय देखना यह पद्धति द्रव्य के परमार्थ लक्षणपर सुगमतया पहुचा देती है। पर्याय गुणोकी ही तो अवस्थायें हैं। कोई पर्याय गुणोसे सर्वथा भिन्न पदार्थ नही है। जब गुणोसे पर्याय भिन्न वस्तु न रही गुणोकी ही अवस्था विशेष रही तब इस ढङ्गसे भी कोई समझे कि उन अवस्थाओका समूह ही गुण है तो यो समझलो—जैसे गुण समुदाय द्रव्य है इसी प्रकार पर्यायसमूह द्रव्य है. ऐसा कहनेमे भी कोई अयुक्तता नही है। लेकिन पर्यायोका समूह ही तो गुण हैं और द्रव्यकी ध्रुवता भी दृष्टिमे आये इसलिए गुण समुदाय द्रव्य है, ऐसे कथनसे द्रव्यको समझमे एक विशेषता आती है। इस तरह द्रव्यके स्वरूपके अतिनिकट पहुँचने के लिए यह तृतीय लक्षण कहा गया है कि गुण समुदायको द्रव्य कहते हैं। अब इस तृतीय लक्षणको सुनकर भी चूंकि समुदाय समुदायी ये विकल्प हो गए तो समुदायी हुए गुण और गुणोका फिर एक समूह बना उसको द्रव्य कहा गया तो यहांपर भी गुण और द्रव्यकी पृथक पृथक कल्पनायें जग सकती हैं। तब ऐसी आशङ्काके समाधान के लिए यह चौथा लक्षण बहुत ही समर्थ है। चौथा लक्षण कहा गया है—समगुणपर्याय द्रव्य अर्थात् समान गुण पर्यायको द्रव्य कहते हैं अर्थात् गुण और पर्याय द्रव्य बराबर हैं। यहां इसको विशेष अभेदरूपसे बताया गया है। इस चौथे लक्षणका क्या भावार्थ है? उसे गाथामे भी अलग बता रहे हैं।

अयमत्राभिप्रायो ये देशास्तद्गुणास्तदंशाश्च ।
एकालापेन समं द्रव्यं नाम्ना त एव निश्शेषम् ॥७४॥

देश, गुण और उसके अशोकी एक आलापसे द्रव्य सज्ञा—समगुणपर्याय द्रव्य है। इसका अभिप्राय यह है कि जो देश है और देशाश है अर्थात् गुण है एव उन गुणोके अंश हैं, इन तीनोकी ही एक शब्द द्वारा कहा जाय तो उसका नाम द्रव्य है अर्थात् द्रव्य इन तीन बातोसे पृथक नही है। द्रव्यको समझनेके लिए इन तीन बातोका भेद किया गया है—देश, देशांश, गुण और गुणाश। इसको गुण और पर्याय शब्दसे कहकर यह कहा गया कि चाहे गुण पर्याय कहलो अथवा द्रव्य कहलो, जितना द्रव्य पर्यायोका विस्तार है जो कुछ गुण पर्यायोका अस्तित्व है वही तो द्रव्य

है। द्रव्यके गुण पर्यायसे इस अभिन्नताका कथन चतुर्थ लक्षणमे किया गया है। अब समझते हुए क्रमशः अभेदकी ओर आयें और आकर इस परिचय तक पहुचें कि जो शाश्वत गुण जो कि निरन्तर अपनी अवस्थाओंको लिए हुए है बस यह सब ही पदार्थ है। यों द्रव्यका लक्षण चौथे लक्षणमे मत्र शङ्काओंका पूरा समाधान करता हुआ लक्षण बताया गया है।

नहि किञ्चित्सद्द्रव्यं केचित्सन्तो गुणाः प्रदेशाश्च।
केचित्सन्ति तदंशा द्रव्य तत्सन्निपाताद्वा ॥ ७५ ॥

द्रव्य, गुण, प्रदेश और तदशोके पार्थक्यका तथा उनके सम्बन्धसे द्रव्य संज्ञा देनेका निराकरण—समगुण पर्याय द्रव्य है, ऐसा द्रव्यका लक्षण कहा जानेपर ये सब शङ्कायें समाप्त हो जाती हैं। जैसे कि कोई समझे कि द्रव्य कोई जुदा सत् पदार्थ है, गुण कोई जुदा सत् पदार्थ है, प्रदेश कोई अलग पदार्थ है और गुणोंके अंश कोई अलग तत्त्व हैं। और इन चारोंका मिलाप कर दिया जाय अथवा मिलाप हो जाय तो द्रव्य कहलाने लगता है, ऐसी शङ्का न रखनी चाहिए, क्योंकि देश, देशांश गुण गुणांश बराबर द्रव्य अर्थात् ये सब ही पदार्थ एक हैं और उस पदार्थको समझाने के लिए तीर्थ प्रवृत्तिके लिए यह भेद व्यवहार किया गया है। इस कारण द्रव्यमे ये देश देशांश गुण गुणांश जो बताये गए हैं वे कोई पृथक तत्त्व हो और उनका मेल हो, ऐसी बात न समझना। जो सिद्धान्त द्रव्य, गुण कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव ऐसे अलग-अलग पदार्थ मानते हैं और फिर इन पदार्थोंके भेद भी बताये हैं, उस पद्धतिमें आधार वास्तविक नही अपनाया जा सका। इसमें कितने ही पदार्थ तो आये नहीं और जो पदार्थ नही हैं उन्हें पदार्थ मान लिया गया है। यदि देश देशांश गुण गुणांश बराबर पदार्थ हैं इस आधारको अपनाते तो कहीं त्रुटि न हो सकती थी। जितने पदार्थ हैं वे सब आते और जो पदार्थ नही हैं किन्तु पदार्थकी विशेषता पदार्थ का परिचय समझानेके लिए भेदव्यवहार किया है वह पदार्थमे नही आता और वह पदार्थकी विशेषता कहलाती है। पदार्थ वह होता है जिसमे उत्पादव्ययध्रौव्य होता रहता है। जो प्रतिसमय बनता है, बिगडता है और बना रहता है उसको पदार्थ कहते है। द्रव्यके इस लक्षणका माध्यम लेकर यदि तत्त्वदर्शनमे बढा जाय तो भी कहीं त्रुटि नही हो सकती। तो यहाँ जो समगुणपर्याय लक्षण द्रव्यका कहा गया है उसमे सारी भूल मिट जाती है। गुण और पर्यायके बराबर द्रव्य कहलाते हैं। गुणपर्यायोका अभेद पिण्ड द्रव्य है। इस लक्षणमे कोई ऐसा भी न समझे जैसा कि अगली गाथामे कहा है

अथवापि यथा भित्तौ चित्र द्रव्ये तथा प्रदेशाश्च।
सन्ति गुणाश्च तदशाः समवायित्वात्तदाश्रयाद् द्रव्यम् ॥ ७६ ॥

प्रदेश, गुण और तदशोंके पार्थक्यका निषेध—जैसे भीटमे चित्र खिचा रहता है तो वह चित्र भीटमे रहता है परन्तु भीट जुदा पदार्थ है और चित्र जुदा पदार्थ है। इसी प्रकार द्रव्यमे प्रदेश गुण और अश रहते हैं। तो प्रदेश गुण और अश ये जुदे पदार्थ हैं और द्रव्य जुदा पदार्थ है और प्रदेश गुणांश है जो कि द्रव्यमे रहता है। इन तीनोका द्रव्यमें समवाय सम्बन्ध होता है। तो उनका आश्रय जो कहलाये उसे द्रव्य कहते हैं। ऐसी शङ्का भी द्रव्यके लक्षणमे न करनी चाहिए। देश देशाश गुण गुणाश चार जुदे पदार्थ हो और उनका समूह द्रव्य कहलाता हो अथवा उन चारोका मिलाप होनेपर उनका जो आश्रय हो वह द्रव्य कहलाता हो ऐसा नही है, किन्तु चारो ही अखण्ड रूपसे द्रव्य कहलाते हैं। परमार्थतत्त्व तो यह है कि जो पदार्थ है वह अवक्तव्य है। ज्ञानमे तो आ सकता है और आता ही है, लेकिन उसके संबंधमे कुछ कहा जाय तो यथार्थ बात किसी शब्दसे नही कही जा सकती। शब्द जो भी कहा जायगा वह उस पदार्थकी विशेषताको बताने वाला होगा, क्योकि शब्द विशेषक ही हुआ करता है। जो विशेषताका सपन करे, स्थापन करे उसे शब्द कहते हैं। तो शब्द जो भी कहे जायेंगे वे विशेषताको कहने वाले होगे। वस्तुके पूर्ण स्वरूपको कहने वाले न होगे। तो ज्ञानमे तो आ जाता है पदार्थ। अब उस विज्ञात पदार्थको कहनेका जब प्रयत्न संतोका होता है तो भेददृष्टि करके अनुकूल अंश बताकर वर्णन करते हैं। सो वे यहाँ देश देशाश गुण गुणाशके रूपसे कहे गए। वे चारो अभिन्न हैं और उन चारो की अभिन्नताको द्रव्य कहते हैं। यो चतुर्थ लक्षण जो द्रव्यका कहा गया समगुण-पर्यायः द्रव्य है वह सब समाधानोसे परिपूर्ण है।

इदमस्ति यथा मूलं स्कंधः शाखा दलानि पुष्पाणि।
गुच्छाः फलानि सर्वाण्येकालापात्तदात्मको वृक्षः ॥ ७७ ॥

उदाहरण पूर्वक देश, देशांश, गुण, गुणांशोका एकालापसे द्रव्य संज्ञाका वर्णन—द्रव्य गुणोके इस प्रकार समुदायरूप है इसका स्पष्टीकरण करनेके लिए यहाँ एक उदाहरण दिया जा रहा है, जैसे वृक्ष क्या चीज है? वह है स्कध, शाखा पत्ता, फूल, गुच्छा, फल आदिक सभी चीजोका समुदाय और समुदाय भी भिन्न-भिन्न रूप नही कि वृक्ष अलग चीज है और ये चीजें अलग हैं और उनके समुदायका नाम वृक्ष है इस प्रकार नहीं, किन्तु ये सभी फल फूल आदिक अंग ही एक [illegible] जाते हैं। जैसे पहिले बनाया था कि गुण और पर्याय बराबर [illegible]
समझना कि तना, साखा, पत्ता, फूल आदिक व्यवहार [illegible]
से वृक्ष कहते हैं। वृक्षको छोड़कर ये साखा पत्ते आ[illegible]
प्रकार देश देशांश गुण, गुणांशका समुदाय द्रव्य [illegible]
उनका समुदाय करके वृक्ष बताया हो ऐसा [illegible]

कहे जाते हैं। वस्तुत. द्रव्यसे भिन्न न ये देश देशांश, गुण गुणांश हैं और देश देशांश गुण गुणांशसे भिन्न न कोई द्रव्य है। एक सत् है कोई उसको ही समझानेके लिए उसकी विशेषतायें बतायी जा रही हैं। ये विशेषतायें भिन्न तत्त्व नही है। यो भींटमें चित्रकी तरह द्रव्यमें प्रदेश है, गुण है इस प्रकारकी भिन्नता नहीं समझना है तब यह जो लक्षण किया गया है चौथा अंतिम समुगुणपर्याय. द्रव्यं, अर्थात् गुण और पर्यायके बराबर द्रव्य होता है यह लक्षण युक्त सिद्ध होता है।

यद्यपि भिन्नोऽभिन्नो दृष्टान्तः कारकश्च भवतीह ।
ग्राह्यस्तथाप्यभिन्नो साध्ये चास्मिन् गुणात्मके द्रव्ये ॥ ७८ ॥

अभिन्न कारक व आधाराधेयभावको द्रव्य लक्षणमे ग्राह्यता कारक और आधार आधेयभाव या कहो सम्बन्ध अथवा आधार आधेय भाव ये दोनो ही भिन्न-भिन्न पदार्थोंमे भी लग सकते हैं और अभिन्न पदार्थोंमें भी लगाये जाते हैं। दृष्टान्त भी दोनो प्रकारके बहुत हैं लेकिन गुणपर्यायवान द्रव्य है इस विषयमें अभिन्न आधार आधेयभाव और अभिन्न सम्बन्धकी बात समझना चाहिए। परमार्थत. तो अभिन्न सम्बन्ध और अभिन्न आधार आधेयपना ही है। भिन्न-भिन्न दो वस्तुओंका आधार आधेय क्या ? प्रत्येक वस्तु अपके स्वरूपमें है, पररूपमे नही है, अपने ही गुणोंमें अपने ही पर्यायोंमे हैं, दूसरेके गुणपर्यायमे नही। यहाँ तक कि आकाशमे भी ये जीव बस रहे हैं लेकिन परमार्थत. आधार-आधेयभाव आकाश और जीव इन दोमे परस्पर नहीं है। आकाश आकाशके प्रदेशमे हैं और जीव जीवके प्रदेशमें है। जीवका आधार स्वय जीव है। आकाशका आधार स्वय आकाश है। यों आधार आधेयभाव परमार्थतः एक पदार्थमें ही समझानेके लिए कहा जाता है इसी प्रकार सम्बन्ध भी परमार्थतः स्वयका स्व है, खुद ही स्व है, खुद ही स्वामी है। जैसे आकाशका स्वामी अन्य कौन है ? आकाश ही आकाशका स्वामी है। आकाशका स्वरूप है वह तो स्व है और आकाश जो पदार्थ है वह स्वामी है जीवका स्वामी कौन ? जीवका स्वरूप है वह जीव स्व है और वही जीव उस स्वका स्वामी है। तो परमार्थत. सम्बन्ध भी एक अद्वैत पदार्थमे समझानेके लिए है, फिर भी लोक व्यवहारमे अनेक दृष्टान्त ऐसे मिलते हैं कि ये भिन्न-भिन्न पदार्थोंमे भी आधार आधेयभाव और सम्बन्ध बताया जाता है। इसका दृष्टान्त स्वय आगे कहा जायगा। अब उनमेसे प्रथम भिन्नताके दृष्टान्त दिये जा रहे हैं।

भिन्नोप्यथ दृष्टान्तो भित्तौ चित्रं यथा दधीह घटे ।
भिन्नः कारक इति वा कश्चिद्धनवान् धनस्य योगेन ॥ ७९ ॥

भिन्न आधाराधेयभावके दृष्टान्त—आधार आधेयकी भिन्नताका दृष्टान्त है जैसे भीटमे चित्र अथवा घडेमें दही। दो दृष्टान्त यहाँ भिन्न आधार आधेयभावके प्रतिपादनके लिए कहे गए हैं। भीट जुदा पदार्थ हैं और उस पर खिचा हुआ चित्रजुदा पदार्थ है। भींटके ऊपर चित्र खिचा है, भीट पहिलेसे थी, चित्र पीछे किया गया। भींट और चित्र ये दो भिन्न-भिन्न पदार्थ होकर भी यह विदित हो रहा है कि भीटमे चित्र है। यह भी भींट नही विदित हो रहा है यह तो है आधार आधेयभाव वहाँ जँच रहा है यह तो है आधार आधेयकी भिन्नताका दृष्टान्त। अथवा दूसरा दृष्टान्त लीजिए! घडेमे दही—घडा भिन्न पदार्थ है दही भिन्न पदार्थ है। घडा पहिलेसे है, दही उसमे बादमे डाला। दहीके प्रदेशमे दही है, घडेके प्रदेशमे घडा है तो भिन्न-भिन्न दो चीजोंमें आधार आधेय बताया है वह भिन्नताका आधार आधेय भाव है। इसी प्रकार सम्बन्ध भी भिन्नतामें लोक व्यवहारमे किया गया है। जैसे किसी पुरुषको धनके सम्बन्धसे कहना कि यह धनवान है, धन जुदा पदार्थ है और यह पुरुष जुदा है। धनके सम्बन्धसे उस पुरुषको धनवान कहा है तो भिन्न सम्बन्ध कारक है। धन स्व है, पुरुष को स्वामी कहा गया है। यह परमार्थतः स्व स्वामी नहीं है, किन्तु भिन्न-भिन्न पदार्थोमे भी लोकव्यवहारकी दृष्टिसे स्वस्वामी सम्बन्ध बनाया गया है। पर प्रकृतिमे इन दोनो बातोसे भिन्न है गुण पर्याय वाले द्रव्यकी बात। जैसे धनके सम्बन्धसे पुरुष को धनवान कहा, इस तरह गुणपर्यायके सम्बन्धसे द्रव्यको गुणपर्यायवान न समझना। जैसे धन जुदा है पुरुष जुदा है ऐसे ही गुणपर्याय जुदा हो और द्रव्य जुदा हो यह न समझना। तो भिन्नताका सम्बन्ध गुणपर्यायका द्रव्यमे नही है। अब आधार आधेयकी अभिन्नताका दृष्टान्त बताते हैं।

दृष्टान्तश्चाभिन्नो वृक्षे शाखा यथा गृहे स्तम्भः।
अपि चाभिन्नः कारक इति वृक्षोऽयं यथा हि शाखावान् ॥८०॥

अभिन्न कारक व अभिन्न आधाराधेय भावका दृष्टान्त—जैसे कहा—वृक्षमे साखायें हैं। साखाओंसे भिन्न कोई वृक्ष हो, फिर उसमे साखायें आयें ऐसा नही है। भिन्न आधार आधेयभावकी बात प्रायः इस तरह शीघ्र समझमें आती है कि आधार आधेयके बिना अलग पहिलेसे पडा हो और फिर आधारमे आधेयका सम्बन्ध किया गया हो। जैसे घडा पहिले अलग था, दही जुदा था, फिर घडेमें दहीका सम्बध किया तो वह भिन्न आधार आधेयका विषय बन गया। वो अलग अलग पडे हुएका सम्बन्ध बननेपर आधार आधेयभाव बनता है। और कहीं अलग अलग न भी पडे हो फिर भी भिन्न आधार आधेयभाव है। जैसे जहाँ धर्म द्रव्य है आकाश द्रव्य है ये कही हटते नहीं हैं फिर भी आकाशमें यह भी परमार्थतः आधार आधेयभावकी चीज है,

प्रयत्नके क्षेत्रमे प्रायः ऐसा ही सुगमतया समझमे आता है कि भिन्न आधार आधेय-भाव वहां बनता है जहा आधेयके सम्बन्ध बिना भी आधारभूत पडा हुआ हो और पश्चात् उसमे उस पदार्थका सम्बन्ध हो, जिसे आधेय कहा गया है। इस तरहकी बात द्रव्य और गुणपर्यायके विषयमें है ही नही। वृक्षमे साखाओकी तरह आधार आधेय-भावकी बात द्रव्योमे गुणपर्यायकी बतायी जा सकती है। जैसे वृक्ष पहिले हुआ, शाखायें बादमे सम्बन्धित हुई ऐसा नही है। वृक्ष जुदे प्रदेशमे रहता हो, शाखायें जुदे प्रदेशमे हो, यह भी नहीं है। वृक्षके स्वयंके अपने प्रदेश जुदे हो और शाखा आदिकके प्रदेश स्वयके वृक्षसे जुदे हो ऐसा भी नहीं है। तो जैसे वृक्षमे शाखा अथवा घरमे खम्भा ये कोई जुदे नहीं हैं ऐसे ही समझना कि द्रव्यमे गुणपर्याय। द्रव्य, गुण, पर्याय बिल्कुल पहिलेसे अलग रहते हो और गुणपर्याय द्रव्यके बिना अलग रहते हो, पश्चात् सम्बन्ध होता हो ऐसा नहीं है। अथवा द्रव्य, गुण, पर्याय, आकाश, धर्म, अधर्म काल आदिककी तरह अनादिसे ही एक जगह हो और गुण स्वयंके प्रदेशमे हो, प्रदेश स्वयंके अन्य प्रदेशमे हो और द्रव्य स्वयके अन्य प्रदेशमे हो, ऐसा भी नही है, किन्तु गुण और पर्याय इनके ही बराबर द्रव्य है।

द्रव्यकी समगुण पर्यायतासे अखण्डताका प्रकाश—सुगमतया यह समझना कि द्रव्य एक सत् है, अवक्तव्य है, अखण्ड है, परिणमन शील है, एक स्वभावी है। प्रतिसमय एक परिणमन है। अब उस ही चीजको जब समझानेके क्षेत्रमें लाते हैं तो भेद दृष्टि करके समझाना होता है और तब देश देशाश, गुण गुणाश अथवा गुण-पर्यायोका भेद करके इन शब्दो द्वारा समझाते हैं कि द्रव्यने गुण और पर्यायें हैं अथवा जैसे वृक्षको कह देते हैं कि यह साखावान वृक्ष है, सम्बन्ध कारक जैसे प्रयोगमे बोलने पर भी साखायें जुदी हो, वृक्ष जुदे हो ऐसा नही है। इसी प्रकार गुणपर्याय वाला द्रव्य है। इस तरह सम्बन्ध कारकके उपदेशमे बल देनेपर भी गुण पर्याय जुदे हो और इनका स्वामी द्रव्य जुदा हो ऐसा नहीं है। द्रव्यत्वके नाते द्रव्यत्व शक्तिके कारण पदार्थ प्रतिसमय परिणमनशील है। यह एक पदार्थकी विशेषता बतायी गई है। इस विशेषताके बोध होनेपर यह बोध होता है कि उस पदार्थमे परिणमनकी शक्ति पायी जाती है और परिणमन रहा है किसी व्यक्तरूप तो उस व्यक्तरूप परिणमनेकी इसमे शक्ति है, इस तरह शक्तिके बोधसे द्रव्यके गुण समझे जाते हैं। जो द्रव्यमे शक्तियां हैं उन्हें ही द्रव्यके गुण कहते हैं, क्योकि शक्तियोके रूपसे उस द्रव्यके भेद किए गए समझ में। और उस शक्तिके जो व्यक्तरूप हैं वे पर्याय कहलाते हैं। तो यो वही ही एक है। किस रूपमें स्फुटित होता है और उसकी प्रकृति पदार्थका शील किस प्रकारका है, ये सब बातें प्रतिपादनके क्षेत्रमें आयीं और आर्षपरम्परा गुणपर्यायके रूपमे उस द्रव्यका विस्तार बताया गया है। तो यहां जैसे वृक्ष साखावान है यो ही अभिन्न सम्बन्ध कारकमे लोकव्यवहार है। इसी प्रकार द्रव्य गुणपर्यायवान है, यह भी अभिन्न सम्बंध

कारकमे समझानेके लिए एक व्यवहार किया जाता है। वस्तुत जो चौथा लक्षण किया गया है कि समान गुण पर्यायको द्रव्य कहते हैं अर्थात् गुण और पर्याय यही सब एक शब्दके द्वारा द्रव्य कहे जाते हैं।

समवायः समवायी यदि वा स्यात्सर्वथा तदेकार्थः।
समुदायो वक्तव्यो न चापि समवायवानिति चेत् ॥ ८१ ॥

द्रव्य और गुणको अभिन्न एवं एकार्थक माननेपर किसी एककी वक्तव्यताका औचित्य माननेकी आरेका—यहाँ शङ्काकार शङ्का करता है कि उक्त कथनमे द्रव्य और गुणको अभिन्न कहा गया है। तो वे द्रव्य गुण सर्वथा एकार्थक हैं यह कहो अथवा समुदाय समुदायी कहो। समुदायके मायने हैं गुण और समुदायीके मायने है द्रव्य। ये दोनों यदि विल्कुल एक अर्थ ही हैं अथवा कहो समवाय समवायी। समवायके मायने हैं गुण और समवायीका अर्थ है द्रव्य। यदि ये दोनों समवाय समवायी सर्वथा एकार्थक हैं तब तो एक समुदायका ही कथन कीजिये! समवायके कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। फिर क्यो यहाँ दोनोंका कथन करके विश्लेषण किया जा रहा है अथवा अनर्थक प्रलाप किया जा रहा है? इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं:—

तन्न यतः समुदायो नियत समुदायिनः प्रतीतत्वात्।
व्यक्तप्रमाणसाधितसिद्धत्वाद्वा सुसिद्धदृष्टान्तात् ॥ ८२ ॥

द्रव्य और गुणमे पार्थक्य न होनेपर भी स्वरूपभेदसे दोनोकी प्रतीति होनेका समाधान—शङ्काकारकी उपर्युक्त शंका कि समुदाय और समुदायी जब अभिन्न हैं तो उसमें एकका ही वर्णन करना चाहिए था। यह शङ्का युक्त नहीं है, कारण कि समुदायीका विल्कुल सुनिश्चित अवगम हो रहा है। समुदाय तो नियमसे समुदायीका होता है। यह बात पहिले भी प्रमाणसे सिद्धकी गई थी और इसके सम्बंध मे अनेक दृष्टान्त भी हैं। समुदाय समुदायी ये भिन्न-भिन्न प्रदेश वाले नही हैं। अतएव अभिन्न हैं पर समुदाय जिनका किया जाता है उनका स्वरूप कुछ और है और समुदायका स्वरूप कुछ और है। जैसे अनेक मणियोका एक हार बनाया जाता है तो हार तो समुदायी है और वे एक एक मणि समुदाय गुण है, जिनका कि समुदायरूप हार माना गया है। तो मणियोंका स्वरूप और है और उस हारका स्वरूप और है। जो काम एक मणिमे होता है वह काम हार नहीं कर रहा और जो काम हारसे होता है वह काम मणियोमे नही होता। जैसे बहुत सी सीकोको बांधकर एक सोहनी बना ली जाती है जिससे कि झाडनेका काम करते हैं। अब वह सोहनी सीकोसे अलग नही

हैं और वे सींके सोहनीसे अलग नहीं हैं लेकिन एक एक सींकका स्वरूप देखा जाय तो कुछ और नजर आता है और उनका काम भी जुदा नजर आता है। और जब समुदायमें सोहनीपर दृष्टि देते हैं तो उसका स्वरूप और काम जुदा नजर आता है। झाडनेका काम सोहनी करेगी सींकें न करेंगी और एक सींकसे जो बात बनती है, जैसे दाँत कुरेदना आदिक बातें; वे झाडूसे न बनेंगी। तो समुदाय और समुदायी प्रदेश की दृष्टिसे अभिन्न हैं और समुदाय ही सब मिलकर समुदायी होते हैं फिर भी निरूपण दोनोके किए जानेकी आवश्यकता होती है, इसी प्रकार गुणोका समुदाय द्रव्य है, ऐसा कहनेपर द्रव्य दृष्टिसे द्रव्यकी जो बात समझमे आयी वह स्वरूप भिन्न हुआ, उसका काम भी भिन्न हुआ और जब केवल एक एक गुणपर दृष्टि दी, पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमें जब एक एक ही गुण नजरमे लिया तो प्रत्येक गुणका स्वरूप जुदा है और उसमें जो कुछ व्यक्ति हुई क्रिया हुई वह भी समुदायकी एक क्रियासे जुदी प्रतीत हुई, इतनेपर भी वे गुण, वे पर्यायें कोई भिन्न भिन्न प्रदेशमे नही हैं। सब कुछ एक ही पदार्थकी बात कही जा रही है, किन्तु समझनेके प्रसंगमे भेद दृष्टिका उपयोग होना है और तब गुण और द्रव्यके कहनेकी आवश्यकता बिल्कुल सही प्रतीत होती है। अब इसी बातको दृष्टान्त पूर्वक कहते हैं।

स्पर्शरसगन्धवर्णा लक्षणभिन्ना यथा रसालफले।
कथमपि हि पृथक्कर्तुं न यथा शक्यास्त्वखण्डदेशत्वात् ॥८३॥

लक्षणभेद होनेपर भी गुणोंका द्रव्यसे पार्थक्य किये जानेकी अशक्यता का उदाहरण—जैसे आमके फलमे स्पर्श, रस, गंध और वर्ण ये भिन्न-भिन्न हैं लेकिन कोई इन्हें प्रथक कर सकनेमे समर्थ नहीं हैं। इन्हें कभी प्रथक किया ही नहीं जा सकता, क्योंकि सबका प्रदेश एक है, अखण्ड है, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये प्रत्येक प्रदेशमें रह रहे हैं। ऐसा नही है कि आमके फलमें कुछ हिस्सेमे स्पर्श हो, कुछमे रस हो, कुछमें गंध और कुछमें वर्ण हो। जो व्यक्त रूपसे स्पर्श रस, गंध, वर्ण समझमें आते हैं वे तो पर्यायें हैं। उन गुणोके व्यक्त रूप हैं, पर उन पर्यायोका आधारभूत जो शक्तिरूपमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हैं वे तो अव्यक्त चीज हैं, अर्थात् गुण हैं। उन गुणो का आमके फलमें कैसे प्रदेश भेदके रूपसे कहा जा सकता है? पर ये चारो शक्तियाँ अपना जुदा जुदा स्वरूप रख रही हैं। अखण्ड प्रदेशमें होनेपर भी ये चारो शक्तियाँ एक न हो जायेंगी। और, वहाँ भी विदित हो रहा है कि ये चारो शक्तियाँ अपना भिन्न-भिन्न स्वरूप रख रही हैं, तभी इन शक्तियोके जो परिणमन हैं वे भिन्न भिन्न इन्द्रिय द्वारा ज्ञात होते हैं स्पर्शका ज्ञान स्पर्श इन्द्रियसे होता है। उस स्पर्शको रसना, घ्राण आदिक इन्द्रियसे नही समझ सकते। कोई आँखें खोलकर किसी वस्तुका स्पर्श जाने तो नही जान सकता है या सूँघकर किसी भी प्रकार अन्य इन्द्रियसे अन्य इन्द्रिय

के विषय नहीं जाने जा सकते । और, कभी लगता है ऐसा, किसी आमफलको देखनेसे बता दिया जाता है कि यह कोमल है, मीठा है, तो यह एक अनुमानके बलपर बताया जाता है । कही नेत्र इद्रियसे ही स्पर्श, रसका ज्ञान किया जा रहा हो सो बात नही, किंतु उसका अनुभव हो चुका है कि इन आमफलमे इस इस प्रकारका रूप होता है, इसमे इस तरहका रस, ऐसा स्पर्श होता है, यह बात अनेक बार अनुभवमे आई है । तब रस नेत्र इन्द्रियसे निरखकर अन्य विषय बता दिया जाता है । वह सब अनुमान ज्ञान है, पर साक्षात् अनुभवात्मक ज्ञान तो जिस इंद्रियका जो विषय है उस इद्रियके द्वारा ही होता है ।

विभिन्न इन्द्रियो द्वारा ग्राह्य होनेसे स्पर्शादिकमे स्वरूपभेदकी प्रतीति होनेपर भी आम्रफलसे पृथक् स्पर्शादि गुणोकी अनुपलब्धि - आमके फलमे स्पर्शका ज्ञान जो हुआ है वह स्पर्शन इंद्रिसे हुआ है । रसका ज्ञान रसना इद्रियसे होता है । अब रसना इंद्रियके विषयभूत तत्त्व ये कभी भी एक नहीं हो सकते । यदि ये एक होते तो किसी भी एक इद्रियसे जान लिए गए होते । तो इनका लक्षण भिन्न है, यह बात इससे भी सिद्ध हो जाती है कि उनका पृथक पृथक इन्द्रियसे बोध होता है । खट्टा मीठा आदिक व्यक्त रस किसी अन्य इद्रियसे भी जान लिया जाय यह सम्भव नही है । यद्यपि स्पर्शन इंद्रियसे स्पर्श का बोध करते ही रसका भी बोध कर लिया जाता है किन्तु वह अनुमान ज्ञानके बलसे है । वे सब मानसिक ज्ञान है, पर रस का अनुभवन तो रसना इद्रियसे ही जाना जा सकता है । गधका ज्ञान नासिका इद्रिय से होता है, अन्य उपायोसे भी गंधका ज्ञान किया जाता है, पर वह अनुभवरहित ज्ञान है । अन्य प्रकारसे गंधका ज्ञान किया जाना अनुमान ज्ञान जैसा है, पर उस गधका अनुभवन होना यह ज्ञान नासिका इंद्रियसे ही हो सकता है । रूपका ज्ञान चक्षुइद्रियसे होता है । भले ही कोई किसी अधकारमे किसी आमको चूस रहा है तो रसका तो साक्षात् अनुभव कर रहा है, पर साथ ही उसे रूपका भी ज्ञान हो रहा । पर वह ज्ञान स्पस्ट ज्ञान नही है, अनुमान ज्ञानसे है । रूपका स्पष्ट ज्ञान तो चक्षु इंद्रियसे ही हो सकता है । तो चार इंद्रियोके ये विषयभूत जुदे जुदे हैं, इससे सिद्ध है कि ये चारो भिन्न भिन्न लक्षण वाले हैं । तो भिन्न भिन्न लक्षणवाले होनेपर भी क्या इन चारो को पृथक किया जाना शक्य है ? नही ! क्योकि इन चारोका तादात्म्य सम्बन्ध है । जिस ही प्रदेशमे रूप है उस ही प्रदेशमे रस आदिक हैं अथवा रूप रस आदिकमय ही तो वह आम है । प्रदेश भी क्या जुदा है ? रूप, रस, गंध, वर्णका ही तो नाम प्रदेश है । प्रदेश कोई जगह अलगसे आममे बनी हो, जो कि रूप, रस, गध, स्पर्शसे खाली हो और वहाँ रूप रस आदिक आयें, ऐसा तो नही है । तो वे रूप आदिक गुण भी जुदे नही हो सकते । इस कारण समुदायरूपसे तो वह अभिन्न है लेकिन लक्षणभेदसे वह भिन्न है । यो यह बात सिद्ध होती है कि गुण और गुणीमे कथंचित् भेद है और

कथंचित् अभेद है । इसी बातको एक सारांश रूपमें स्पष्ट कर रहे हैं ।

अथ एव यथा वाच्या देशदेशांशा विशेषरूपत्वात् ।
वक्तव्य च तथा स्यादेक द्रव्यं त एव सामान्यात् ॥ ८४ ॥

विशेषरूपतासे देश गुण पर्यायमें परस्पर भिन्नता व सामान्यापेक्षया एकता गुणगुणीमें भेद और कथंचित् अभेदकी पद्धतिसे जो वर्णन किया गया है उस कथनसे यह बात भली प्रकार सिद्ध हो जाती है कि विशेषरूप होनेसे ये देश गुण, पर्याय सभी जुदे जुदे सत्व हैं और सामान्यरूप होनेसे ये सभीके सभी एक द्रव्य कहलाते हैं। जैसे जब विशेषताओंपर दृष्टि थी तो रूप, रस, गंध, स्पर्श ये सब भिन्न भिन्न प्रतीत हुए थे, लेकिन सामान्यदृष्टिसे तो वे सब एक ही थे । ऐसे ही प्रत्येक पदार्थ एक अखंड सत् है, पर उसमें जब हम विशेषतायें समझने चलते हैं तो उसमें अनेक शक्तियां अर्थात् गुण और उन शक्तियोंके अनेक परिणमन याने गुणांश और उस पदार्थका फैलाव विस्तारके रूपसे देखा तो यहाँ नजर आया देश देशांश । तो यों विशेषरूपकी दृष्टि होनेपर ये देशांश गुण और गुणांश भिन्न भिन्न सिद्ध होते हैं, प्रतीतिमें आते हैं और सामान्यदृष्टिसे द्रव्यार्थिकनयसे जब उनको निरखा जाता है तो वे सब एक ही अखंड सत् है । यों द्रव्य और गुण भिन्न भिन्न प्रदेश न होनेपर भी उनका लक्षण भिन्न भिन्न है । अतएव समझानेके क्षेत्रमें गुण गुणीका जुदा जुदा कथन करना सही है।

अथ चैतदेव लक्षणमेकं वाक्यान्तरप्रवेशेन ।
निष्प्रतिपप्रतिपत्त्यै विशेषतो लक्षयन्ति बुधाः ॥ ८५ ॥

वाक्यान्तरप्रवेशसे द्रव्यके लक्षणके कथनका उपक्रम द्रव्यके चार प्रकारसे जो लक्षण बताये गए वे सब गुणपर्ययवद्द्रव्य इस प्रथम लक्षणसे ही एक सशोधित विधिसे बतानेकी बात कही गई है । अब उस ही लक्षणको और स्पष्ट करनेके लिए दूसरी रीतिसे द्रव्यका लक्षण कहा जायगा । लक्षण द्रव्यमें जितने प्रकारसे भी किए जायें या जिस पदार्थके लक्षण अनेक भी हों तो भी उन लक्षणोंका परस्परमें द्रव्यमें विरोध न होना चाहिए, तभी वह लक्षण कहला सकता है । तो इस पद्धतिसे अब जो लक्षण कहा जायगा उस लक्षणका उक्त लक्षणसे कोई विरोध नहीं किंतु उस ही पूर्वोक्त लक्षणको स्पष्ट करने वाला ही द्वितीय लक्षण कहा जायगा । जैसे किसी पुरुषकी पहिचानके लिए एक पहिले लक्षण कहा गया, जो कोई पुरुष उस लक्षणसे फायदा नहीं उठा रहा, उसे उसका परिज्ञान नहीं हो रहा तो दूसरा लक्षण बताते हैं, किंतु यह दूसरा लक्षण उस ही प्रथम लक्षणका स्पष्ट बोध करानेमें भी समर्थ है और जानने वाले द्वितीय लक्षणसे प्रथम लक्षण और अलक्ष दोनोका भान कर लेते हैं।

तो यहाँ द्रव्यका लक्षण कहा गया था 'गुणपर्ययवत् द्रव्य' उसीका खुलासा करनेके लिये अब लक्षण कहते हैं।

उत्पादस्थितिभंगैर्युक्तं सद्द्रव्यलक्षणं हि यथा।
एतैरेव समस्तैः प्रोक्तं सिद्धेत्सम्र्भ न तु व्यस्तैः॥ ८६॥

उत्पादस्थितिभङ्गमय सत्त्व द्रव्यका लक्षण—पहिले जो द्रव्यका लक्षण कहा गया था 'सत्' इस ग्रन्थमे 'तत्त्व सार लाक्षणिक' इस आठवें छंदमे द्रव्यका लक्षण कहा गया था कि वस्तु सत्ता लक्षण वाला है। तो वह सत् कैसा है कि उत्पादस्थिति और विनाशसे युक्त है। द्रव्यका लक्षण सत् है, ऐसे कथनका भाव यह है कि उत्पाद, स्थिति और व्यय इन तीनोंसे सहित जो सत् है वह द्रव्यका लक्षण है। सत्मे ये तीन धर्म उत्पाद व्यय ध्रौव्य एक साथ होते हैं। क्रमसे नही होते किन्तु एक ही कालमे होते हैं। उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोको लिए हुए ही सत् होता है। यदि उन तीनोमे से कोई अंश न माना जाय तो वह सत् नही रह सकता, इसी बातको स्पष्ट करनेके लिए कहते हैं।

अयमर्थः प्रकृतार्थो ध्रौव्योत्पादव्ययास्त्रयश्चांशाः।
नाम्ना सदिति गुणः स्यादेकोऽनेके त एकशः प्रोक्ताः॥ ८७॥

उत्पादव्यय ध्रौव्यांशोंकी एकनामसे सन्मात्रता—उत्पादव्यय और ध्रौव्य ये तीनो ही अंश एक नामसे कहे जाते हैं, इस कारण उन तीनोके ही समुदायको सन्मात्र कह देते है। स्वरूप दृष्टिसे देखा जाय तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोका स्वरूप न्यारा न्यारा है लेकिन इन तीनोसे रहित सत् हो ऐसी बात नही है। अनन्त शक्तियोका स्वरूप न्यारा न्यारा है। अगर निराला स्वरूप न हो तो सब कुछ मिल कर एक शक्ति मात्र ही रह जायगी। तो शक्तियोका स्वरूप न्यारा न्यारा होनेपर भी उन शक्तियोसे पदार्थ अभिन्न है ऐसे ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य इनका अर्थ न्यारा न्यारा है। उत्पादका अर्थ है उत्पन्न होना तो उत्पन्न हाना जुदी चीज हुई और विलीन होना जुदी चीज हुई। उत्पन्न होनेका ही नाम तो विलीन नहीं है। तो स्वरूप भेद है उनमे मगर उत्पन्न होनेमे जो बात है उसे ही उत्पादरूपसे कहा जाता और उस हीको विलीन रूपसे कहा जाता। दो दृष्टियोसे उत्पाद और व्यय दोनो बातें एक पर्यायमे कही जाती हैं। जैसे घट फूटा और खपरियाँ हुई तो खपरियोका उत्पाद और घटका विनाश होकर वहाँ क्या बनी ? वह सब कुछ एक ही है। जो बना उस हीमे घटके विनाशका और खपरियोके उत्पादका कथन होता है। तो उत्पन्न होनेका नाम और विलीन होने का नाम यो दोनोका स्वरूप न्यारा न्यारा है लेकिन यह सब एकमे ही बताया जाता

है। इसी प्रकार जिस कालमे उत्पाद व्ययकी बात कही जा रही है, उस ही कालमें ध्रुव भी है। तो दृष्टि भेदसे उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी बात निरखी जाती है। लेकिन वे सत्से निराले नही। इन तीनो के समुदायका नाम सत् है, अथवा यह कहो कि इन तीनोको ही एक शब्दसे कहा जाता है कि द्रव्यके बोधके लिए सर्वप्रथम अस्तित्वका परिचय करना होता है। द्रव्यमे अस्तित्व नामका गुण है। उसीका नाम सत्ता है और सत् गुण ही उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है। तो उन उत्पादव्ययध्रौव्यके प्रत्येकका अर्थ किया जाय तो प्रत्येककी अपेक्षासे तीनो जुदे जुदे हैं, पर समुदायकी अपेक्षा वे एक एक सत् गुणस्वरूप हैं। अशी अशात्मक होते हैं, ऐसा स्वरूप जब दृष्टिमे नहीं रहता, तब अनेक प्रकारके दर्शनोका निर्माण हो जाता है। बस सब कुछ सत् है, जो कुछ भी हा वह सत् है। अब उस सत्की जो विशेषतायें बताई जाती हैं वे सब द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, नाना रूपोंमे विस्तृत हो जाते हैं, लेकिन वे सब नानारूप मिलकर एक शब्दसे सत् कहलाते हैं।

सत्की परिणमनशीलता—सत् एक ही है और जितना कथन है वह सब सत्का ही व्योरा है। सत्के ही अश कर करके वे सब उपदेश किए गए हैं। तो सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्यसे अनुस्यूत है। तीनो एक ही कालमे हैं एक ही सत्में है। इनका भिन्न भिन्न आधार नही और न ये भिन्न भिन्न रूपसे रहते हैं। जो कुछ है वह है और प्रतिसमयमे एक रूप होना और निरन्तर परिणमित होना ये दोनों बातें वस्तुमे अमिट स्वभाव रख रही हैं, वाकी जितने भी दर्शन शास्त्रमे वर्णन हैं वह इन दो तत्त्वोंका ही व्योरा हैं और परिणामित होती है। होना, होते रहना, होते रहनेका विराम न आना, वस यही वस्तुमें स्वभाव पडा हुआ है, इसके बिना वह सत् ही नही रह सकता यो निरखनेपर फिर जो गुण, कर्म, सामान्य, विशेष आदिककी व्याख्या और जानकारी वनेगी, वह यथार्थरूपसे वनेगी और सत्ता और उत्पाद व्ययध्रौव्यात्मकताका निर्णय न होनेपर दृष्टि चलित हो जायगी और अनेक रूपोमे स्वरूपका वर्णन होने लगेगा। तत्त्व इतना ही है कि वस्तु सन्मात्र है और वह सत् उत्पाद व्ययध्रौव्यात्मक है और इसीसे यह व्यवस्था वनी है कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपसे विलीन होगा और अपने ही स्वरूपसे सदा रहेगा। वस्तुस्वरूपकी यह जानकारी अनादि कालीन मिथ्या मोह अधकारको दूर कर देती है। एक वस्तुका अन्य वस्तुके साथ सम्बन्ध मानना यही अज्ञान अंधेरा है और इसीमे विशुद्ध ज्ञानप्रकाश प्राप्त होता है। यही आत्माके कल्याणका उपाय है। अब यह वतलाते हैं कि सत्ता लक्षण वाला है द्रव्य, यो भी कहा गया और सन्मात्र है द्रव्य, यों भी कहा गया तो क्या यह दो प्रकारसे वस्तुस्वरूप है कि कोई वस्तु सत्ता वाली होती हो और कोई वस्तु सन्मात्र होती हो ? उत्तरमे यह कहा जायगा कि दोनो ही बातें एक हैं केवल दृष्टिका भेद है।

लक्ष्यस्य लक्षणस्य च भेदविवक्षाश्रयात्सदेव गुणः ।
द्रव्यार्थादेशादिह तदेव सदिति स्वयं द्रव्यम् ॥ ८८ ॥

नयविवक्षासे सत्की गुणरूपता एव द्रव्यरूपता—जब लक्ष्य लक्षणकी भेद व्यवस्था की जाती है तो सत उतना ही है, किन्तु जब द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षा हो तो वह सत स्वय द्रव्यस्वरूप है अथवा वह द्रव्य सन्मात्र है । वस्तु एक है और वह जैसी है सो है । उसके केवल ज्ञाता रहे तो वहाँ कोई विकल्प, आपत्ति, विडम्बना, विवाद नही रहता । तो जो है सो जाननेमे आ गया । लेकिन जब अपने अथवा दूसरे को समझानेके क्षेत्रमे उतरा जाता है तो वहाँ लक्ष्य लक्षणका भेद तो प्रथम होता ही है । किसी भी पदार्थका परिचय पानेके लिए कोई एक मुख्य धर्म लक्ष्यमे आता है और उससे पदार्थका परिचय होता है । तो वह मुख्य लक्ष्य धर्म कोई भिन्न नही है, क्योकि भिन्न है तो पदार्थका परिचय नही हो सकता । किसी भिन्न धर्मका किसी भिन्न धर्मीसे परिचय नही किया जाता । उस ही को लक्ष्य और लक्षणकी विधि बना कर समझा जाता है । वस्तु है और वह है बस इसीमे ही पर्याप्त है । जो है सो है । यो वस्तु सन्मात्र है, पर उसे लक्ष्यमे लेनेके लिये लक्ष्य लक्षणका भेद करके कहना होता है कि जिसमे सत्त्व पाया जाय वह सत है, स्वलक्षण है । तो लक्ष्य लक्षण की भेद विवक्षाका आश्रय होनेपर सत गुण ही है और वह सत गुण जहाँ पाया जाय उसे सत कहते हैं । लेकिन जब भेद विवक्षा नही रहती, सामान्य दृष्टि रहती है एक द्रव्यका ही अभिप्राय रहता है तो उस समय विकल्प बुद्धि हटकर केवल एक सामान्य दृष्टिमे सत्ता और द्रव्य ये दो भिन्न नहीं रहते । अब. द्रव्य है सो ही सत्ता है । सम्पूर्ण गुण जितने भी जिस पदार्थमे हैं उन सब गुणोमे अभिन्नता है क्योकि वस्तु एक सत्तात्मक है और जैसा है सो ही है, उसीको विशेषतया समझानेके लिए किन्ही विशेषोको विपोधिक किया जाता है । वह विशेष उस द्रव्यसे निराला नही है । जितने भी विशेष गुण है, शक्तियाँ हैं उनमे परस्पर अभिन्नता है । तब किसी भी एक गुणके द्वारा समग्र वस्तुका ग्रहण हो जाता है । लक्ष्यमे आया उस पदार्थका गुण फिर तो किसी भी एक गुणके लक्षणसे वह परिपूर्ण पदार्थ लक्ष्यमे आ जाता है । तब सत्ता सन्मात्र इतना कह देनेसे भी द्रव्यका ही बोध हुआ और द्रव्यपना ऐसा कहनेसे भी द्रव्यका बोध हुआ और वस्तु वस्तुत्व पदार्थ आदिक शब्दोसे कहनेपर भी उस वस्तुका ही बोध होता है । नय दृष्टिसे सत्ता, द्रव्यत्व, वस्तुत्व कुछ भी कहा जाय, केवल उन्ही गुणोका ग्रहण होगा, क्योकि सत्ता कहनेसे केवल सत्त्वकी बात ही आश्रयमे है । द्रव्यत्व कहनेसे केवल द्रव्यकी ही बात आश्रयमे है । तो भेद दृष्टिमे उन गुणोमे स्वरूप भेद होनेसे भिन्न भिन्न कथन होता है लेकिन अभेद बुद्धि होनेपर उन सब गुणोके द्वारा एक ही वस्तु लक्ष्यमे आती है और इस प्रक्रियासे उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीन अवस्थाओके परिज्ञान से द्रव्यका परिज्ञान होता है । तात्पर्य यह हुआ कि द्रव्य सन्मात्र है । इसका भाव यह

है कि द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है।

वस्त्वस्ति स्वतः सिद्धं यथा तथा तत्स्वतश्च परिणामि ।
तस्मादुत्पादस्थितिभंगमयं तत् सदेतदिह नियमात् ॥ ८६ ॥

वस्तुकी स्वतः सिद्धता—उक्त समस्त कथनका तात्पर्य यह है कि वस्तु स्वतः सिद्ध है और इसी कारण वह स्वतः परिणामी भी है। स्वतः सिद्ध और स्वत. परिणामी होनेके कारण वस्तु उत्पत्ति स्थिति और व्ययमय है। बस इसीका नाम सत् द्रव्य है सर्वप्रथम वस्तुके लक्षणमे बताया गया था कि वस्तु सन्मात्र है और वह स्वत. सिद्ध है। जो भी सत् होता है वह स्वतः सिद्ध ही है। स्वत· सिद्ध न माना जाय तो उसका अर्थ यह होगा कि यह पहिले न था, किसी दूसरेने बनाया। सो ये दोनो ही बातें अयुक्त हैं। पहिले कुछ न हो और असत्से सत् बन जाय यह त्रिकाल हो नही सकता और, किसी भी सत्का निर्माण किसी पर पदार्थमे नहीं हो सकता। पर पदार्थ से किसी सत्का निर्माण हुआ तो वहाँ ये दो विकल्प होगे कि पहिलेसे सत् हुए पदार्थ का निर्माण किया या असत् पदार्थका परने निर्माण किया ? यदि सत् पदार्थका निर्माण किया तो नया निर्माण ही क्या हुआ ? यह कहा जा सकता है किन्हीं परिणमनोंके लिए कि किसी पदार्थका निमित्त पाकर विभिन्न परिणमनोंमे उत्पाद हो जाया करता है, किन्तु जो सत् नहीं है, असत् है उसका किसी भी परसे और किसी भी प्रकार निर्माण नहीं हो सकता। तब यह मानना ही होगा कि वस्तु स्वतः सिद्ध है। जो स्वत· सिद्ध है वह अनादि अनन्त होता है। उसकी कोई आदि ही नही होती। आदि हुआ करती है निमित्त भावकी, जो किसी अवसरमे किसी निमित्तको पाकर कोई नवीन उत्पाद होता है वह है सादि। सो वहाँ भी जिस मूलभूत द्रव्यमे कोई परिणमन बना है वह द्रव्य अनादि ही है। यों द्रव्य स्वत. सिद्ध अनादि ही होता है। इसी प्रकार जो वस्तु स्वतः सिद्ध है वह अनन्त होती है। उसका कहीं अन्त नहीं हो सकता। कोई भी सत् मूलतया बिल्कुल कुछ न रहे, असत् हो जाय यह त्रिकाल सम्भव नहीं है। किसी सत्का असत्त्व कैसे हो सकता हैं ? तो वस्तु स्वत. सिद्ध है, अनादि अनन्त है, यह बात द्रव्यके अन्तः स्वभावपर दृष्टि देनेसे विदित होती है।

वस्तुकी परिणामिता व उत्पादस्थितिभङ्गमयता—अब वस्तुके बहिरंग रूप पर दृष्टि दें तो उसके ये सब परिणमन नजर आते हैं। कोई भी सत् परिणमनके बिना हो ही नही सकता। तो प्रत्येक वस्तु परिणमनशील है। प्रतिसमय नवीन नवीन परिणमनसे परिणमता रहता है। परिणमनके सम्बन्धमे भी विचार करें कि वस्तुमें जो ऐसी परिणमिताकी कला है कि निरन्तर परिणमता ही रहे, यह कला किसी परमार्थसे आयी अथवा उसमें स्वत. पडी हुई है ? यदि पर पदार्थसे कला आयी

तो इसका अर्थ है कि परिणामी नही है, किसी पर पदार्थने परिणमाया। तो जो स्वयं परिणमनशील नही उसे कोई भी परपदार्थ कभी परिणमा ही नही सकता। और यदि वह परिणमनशील है तो वह उसकी कला है। उसमे परकी कलाका क्या असर है? तो वस्तु जैसे स्वत. सिद्ध है उसी प्रकार परिणामी भी है तो स्वतः परिणामी होनेके कारण वस्तु उत्पादव्ययमय है और स्वत सिद्ध है, अविनाशी है अतएव ध्रुव है। तब सत्की यह विशेषता हुई कि वह उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त है। अर्थात् वस्तु द्रव्य दृष्टिसे नित्य है और पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। ये सब वस्तु स्वत. सिद्ध और स्वतः परिणमिताके कारण प्रसिद्ध ही हैं। अब यहाँ बतला रहे हैं कि वस्तुको यदि परिणामी न मानें तो उसमे क्या दोष आता है?

नहि पुनरुत्पादस्थिति भंगमयं तद्विनापि परिणामात्।
असतो जन्मत्त्वादिह सतो विनाशस्य दुर्निवारत्वात्॥ ९०

वस्तुकी परिणामिताका समर्थन—यदि परिणामके बिना ही वस्तुका उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप माना जाय, तो असत्की उत्पत्ति और सत्के विनाशका प्रसंग आयगा। इस समय पहिले इन दो विकल्पोपर विचार करें कि वस्तुको परिणामरहित और उत्पादव्ययध्रौव्यरहित माननेमें विकल्प है अथवा उत्पादव्यय ध्रौव्यमय तो वस्तु है और उसे परिणामके बिना माना जाय क्या इस प्रकारका शङ्काकार का विकल्प है? यदि प्रथम विकल्पकी बात लें कि वस्तुमें न परिणाम हैं और न उत्पादव्ययध्रौव्य है तो उसका सत्त्व ही क्या रहा? और यदि दूसरा विकल्प लेते हैं कि परिणाम नहीं है किन्तु उत्पादव्ययध्रौव्य हैं तब तो प्रथम यह दोष है कि वस्तु परिणमनशील नही है और उसमें उत्पादव्ययध्रौव्य माना जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि वस्तु सर्वथा अनित्य हो जायगी। तब नये नये पदार्थका ही उत्पाद कहलायेगा और जो है उसका नाश होता जायगा, लेकिन असत्का उत्पाद और सत्का विनाश कभी सम्भव ही नही हैं, इस कारण वस्तुको स्वत. परिणामी मानना ही चाहिए। वस्तुको स्वत परिणामी माननेपर और फिर उसमे उत्पादव्ययध्रौव्य समझनेपर यह बात सुविदित हो जायगी कि वस्तु अनादि अनन्त है, वह किसी परिणमनसे उत्पन्न होती है, किसी परिणमनसे नष्ट होती है और किसी तत्त्वरूपमे स्थिर रहा करती है। बनना विगडना और बना रहना, यही पदार्थका स्वभाव है। और, यह बात तभी बन सकती है जब वस्तु स्वत. परिणमनशील हो। सो वस्तु स्वत परिणमनशील है ही, यह कोई बतानेकी बात नही है। या कोई कानून निर्माणकी बात नही है। वस्तुमे जो धर्म है, वस्तु जिस प्रकारसे है उस प्रकारसे समझानेकी बात है। यदि किसी पदार्थको बनता हुआ माना जाय, उसके विपरीत और बना रहना न माना जाय तो बना ही क्या? उत्पाद भी सिद्ध नही हो सकता। किसी वस्तुका बिग-

डना माना जाय और उत्पाद ध्रौव्य न माना जाय तो कुछ उत्पाद हुए विना विगडना ही क्या कहलायेगा ? यो ही ध्रौव्य न माना जाय तो उत्पादव्यय किसमे हुआ करे ? तो वस्तुमें उत्पादव्यय ध्रौव्य इन तीनोंका एक साथ होना स्वभाव है और ये सब है स्वतः परिणमनशीलताके कारण। तो वस्तु स्वत. सिद्ध है। स्वत परिणामी है, इस कारण वह उत्पादव्यय ध्रौव्यमय है।

द्रव्यं ततः कथञ्चिकेनचिदुत्पद्यते हि भावेन।
व्येति तदन्येन पुनर्नैतद्द्वितयं हि वस्तुतया॥ ९१॥

वस्तुके ध्रुव होनेपर भी अवस्थादृष्टिसे वस्तुमें उत्पाद व्ययका कथन वस्तु स्वत· सिद्ध है, अनादि अनन्त है, स्वत परिणामी है और इसी कारण उत्पादव्यय ध्रौव्यमय है। इस कथनसे यह निश्कर्ष निकला कि द्रव्य किसी अवस्थासे कथचित् उत्पन्न होता है और किसी अन्य अवस्थासे कथचित् नष्ट होता है और वस्तुकी स्थिति उसके मूल स्वभावपर दृष्टि देनेसे यह भी विदित होती है कि इसकी उत्पत्ति और नाश नहीं है। सदैव ध्रुव है। लोकव्यवहारमे भी जितसी घटनायें होती हैं, या जो पदार्थ दिखते हैं, उन सबमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य विदित होता है। जैसे मिट्टीसे घडा बना तो मिट्टी तो ध्रुव चीज है। पूर्व पर्यायमे भी मिट्टी थी और घडा पर्याय मे भी मिट्टी है। इसमे तो ध्रुवताकी दृष्टि आयी और घडेकी अवस्थाके रूपसे उत्पाद हुआ और पहिले कुसूल पर्यायका विनाश हुआ तो यों उत्पादव्यय ध्रौव्य हुए विना कायम न रह सका घडा वगैरह। यों ही सभी पदार्थोंमे उत्पादव्यय ध्रौव्य बराबर पाया जाया है। जीव द्रव्य सदा शाश्वत् है। उसका सत्त्व कभी नष्ट न होगा। निरन्तर उसमे उत्पादव्यय चलते रहते हैं।

हमारा वर्तमान परिणमन व कर्तव्य—आजकी हालतमें इस जीवका अनेक भवोमें जन्म होना, मरण होना और कष्टोंसे अपना अनुभव बनाना ये सब बातें गुजर रही हैं, और, यहाँ मोहमें परिणत होकर जीव कदाचित् अपनी कल्पनाके अनुसार किसी घटनामे मौज भी मान लेता है लेकिन संसारकी सारी घटनायें विडम्बनायें हैं। इस घटनामे सार और शान्ति रंचमात्र नहीं है। यह उत्पादव्यय जीवका चल रहा है। और जब कभी इसका सुयोग आता है अपने स्वरूपका प्रकाश अपने ज्ञानमें समाता है तब इसे सर्वस्व अपने आपका आप ही स्वयं जचता है और एक विशिष्ट सकल्प हो जाता है कि मुझे अन्य कोई कार्य करने लायक नही पडा। केवल यह ही कार्य है कि अपने जन्म मरणका विनाश करूं और शाश्वत् सहज ज्ञानानन्द स्वभावका उपयोग बनाये रहूं। यद्यपि कहनेके लिए ये दो बातें हैं लेकिन उपाय एक ही है। जिस उपायसे सहज आनन्दका लाभ मिलता है और संसारके समस्त सकट दूर होते हैं वह उपाय है सहज शाश्वत् चैतन्य प्रकाशका उपयोग रखना। मैं देह आदिक सर्व

पदार्थोसे निराला अमूर्त ज्ञानमात्र हूं, सूक्ष्म हू, रूप आदिक मूर्तियोसे जुदा हूं और ज्ञानमात्र हूं, केवल ज्ञान ज्ञानका ही मैं पुञ्ज हूं। ज्ञानभावको छोडकर उसका और सत्त्व क्या है ? और एक घन ज्ञान है। ज्ञान ही ज्ञान है, ऐसा जो एक पदार्थ है वह मैं हू। इस ज्ञानमात्र मुझ आत्माका इस लोकमे है क्या ? किसी भी पदार्थसे रचमात्र भी सम्बन्ध नही है। ऐसे ज्ञानमात्र अतस्तत्त्वका परिचय पाऊं और उस हीका उपयोग बनाये रहूं तो संसारके जन्म मरणके समस्त संकट दूर हो सकते हैं। मैं हूँ, सदा रहूंगा। तव अपना यह कर्तव्य है कि ऐसा उपाय बनाऊं कि सदा क्षोभरहित निराकुल आनन्दमय रहूं, ऐसी स्थिति पानेके लिए इन छोटे समागमोका लगाव मोह छोडना पडे तो बडी प्रसन्नताके साथ उन सबका परित्याग कर ना चाहिए कि यह मैं ज्ञान अपनी श्रद्धामे ऐसी निर्मलता लाना चाहिए कि यह मैं ज्ञानमात्र सवसे निराला विशुद्ध स्वतः आनन्दमय हूं। इस स्वभावके अनुभवके उपायसे संसारके समस्त संकट दूर होते हैं। तो ससारका व्यय करना और कैवल्यका उत्पाद करना और अपने आपके सत्त्वको बनाये रहना, यह स्थिति उपादेय है।

इह घटरूपेण यथा प्रादुर्भवतीति पिण्डरूपेण।
व्येति तथा युगपत्स्यादेतद्द्वितय न मृत्तिकात्वेन॥ ९२॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्यका एक उदाहरण—उत्पाद व्यय ध्रौव्य धर्मोंको घटित करनेके लिए इस गाथामें उदाहरण दिया गया है। जैसे वस्तु घटरूपसे उत्पन्न होता है और पिण्डरूपसे नष्ट होता है तथा मृत्तिका रूपसे स्थिर है। एक घडा बनाने की प्रक्रियामें कुम्भकार मिट्टीसे घडा बनानेका यत्न करता है तो वहाँ पहिले माटीको सानकर पिण्डरूप अवस्था बनाई जाती है। वह चाकपर पिण्डरूप अवस्था रहती है। फिर चक्र घूमकर उस पिण्डको पसारकर घटरूप अवस्था बनती है। तो जिस कालमे घटरूप अवस्था बनी उस कालमे घटका तो उत्पाद है और पिण्डका व्यय है और माटीके रूपसे स्थिर है। ये तीनो ही सर्वथा एक ही कालमे हैं। लेकिन उत्पादव्यय-ध्रौव्य ये तीनो एक नही बन गए ! उत्पादका नाम उत्पन्न होना है और व्ययका नाम नष्ट होना है। उत्पन्न होना और नष्ट होना ये दोनो एक रूप बात नहीं है किन्तु अपेक्षासे एक ही पर्यायमें घटित दोनो हो जाते हैं। जैसे जिस समय घट पर्याय होरही है उस समय घटरूपसे उत्पाद है और पिण्ड रूपसे व्यय है। जैसे एक परिणतिमे ये दोनो बातें कही जा रही हैं वह एक परिणति है और उसमे एक साथ ही दोनो बातें हैं। साथ ही माटी तो स्थिर है ही, वह तो पूर्व पर्यायमे भी माटी थी, उत्तर पर्यायमें भी माटी बनी हुई है। तो उत्पादव्ययध्रौव्य ये वस्तुमें एक समय ही होते हैं, फिर भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, इन तीनो धर्मोका स्वरूप पृथक पृथक है।

ननु ते विकल्पमात्रमिह यदकिञ्चित्कर तदेवेति ।
एतावतापि न गुणो हानिर्वा तद्विना यतस्त्विति चेत् ॥ ९३ ॥

उत्पादव्ययध्रौव्यके सिद्धान्तके विरोधमे शङ्काकारकी शङ्का— अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि उत्पादव्ययध्रौव्यके सम्बन्धमे कुछ कल्पनायें लगाना केवल विकल्पमात्र है और वह व्यर्थ है । किसी भी वस्तुको मान लिया बस पर्याप्त है। उसमे उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनो धर्म माननेसे क्या गुण है ? अथवा उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनो धर्म न माने जाय तो उसमे क्या हानि है ? यह तो एक विकल्पमात्र है । एक शब्दजाल अथवा अपनी प्रतिभाका प्रभाव जमाना है । उत्पादव्ययध्रौव्यके बिना कोई हानि नही और उत्पादव्ययध्रौव्य मान लेनेसे कोई वस्तुमे गुण नही आ जाता। इस कारण उत्पादव्ययध्रौव्यकी कल्पना करना व्यर्थ है, अकिञ्चित्कर है । अकिञ्चित्कर उसे कहते हैं कि हो तो कोई गुण नही, न हो तो कोई हानि नहीं । जो कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है उसको अकिञ्चित्कर कहते हैं । तो उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनों धर्मोंका विकल्प करना अकिञ्चित्कर है, ऐसी शङ्काकार शङ्का कर रहा है ।

तन्न यतो हि गुणः स्यादुत्पादादित्रयात्मके द्रव्ये ।
तन्निन्हवे च न गुणः सर्वद्रव्यादि शून्यदोषत्वात् ॥ ९४ ॥

उत्पादव्ययध्रौव्य न मानने वाले शङ्काकारकी शङ्काका समाधान— इस गाथामे उपर्युक्त शङ्काका उत्तर दिया गया है । शङ्काकारका यह कहना कि उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप वस्तुको माननेसे कोई लाभ नही है, उसमे कुछ भी गुण नहीं है । यह बात शङ्काकारकी अयुक्त है, क्योकि उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप वस्तुको माननेसे ही लाभ है, और यदि इस त्रिगुणात्मकताको नहीं मानते हैं तो उसमे हानि है । जैसे वस्तुका उत्पादव्ययध्रौव्य न मानें तो द्रव्यकी सिद्धि कैसे करेंगे ? शून्य हो जायगा । सत् ही न रहेगा, क्योकि जो है वह तभी है कहलाता है जब उसमे परिणमन होते रहते हैं । उत्पादव्ययध्रौव्य बना रहे तो वह वस्तु है । इस त्रिगुणात्मकताके बिना देखिये ! परलोक कुछ रहेगा ही नही जीव एक भवको छोडकर नये भवमें जन्म लेता है, इसका नाम परलोक है । अब उत्पादव्ययध्रौव्य तो माना नही गया तो एक ही भव का विनाश और दूसरे भवका उत्पाद तो स्वीकार है ही नही, तब परलोक कहाँ रहा? और जब परलोक न रहा तब सदाचारसे, तपश्चरणसे, सयमसे रहनेकी आवश्यकता ही क्या रहेगी ? उसका उपदेश व्यर्थ हो जायगा । फिर तो जिसे वर्तमानमें सुख मिलता हो जिसकी जैसे कल्पनामे, उसका वही काम हो जायगा । तो धर्म कर्म सबका लोप हो जायगा । यदि उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों धर्म पदार्थमें नही जानें जाते तो ? और फिर कार्यकारण भाव भी न बन सकेगा । कार्य मायने कोई नवीन अवस्था

बनना। और, कारण मायने किसी अवस्थाके कारण उस अवस्थाका व्यय होकर कार्य बनना। तो जहाँ उत्पादव्ययध्रौव्य नही माने गए वहाँ कार्यकारणकी व्यवस्था कुछ नहीं रह सकती। और, उत्पादव्ययध्रौव्यके बिना तो लोक व्यवहार भी जरा नहीं बन सकता। बच्चा होता, जवान होता और फिर वही बूढा होता। यह बात तो स्पष्ट दिखती है। उत्पाद होना और पूर्व पूर्व पर्यायका व्यय होना और उत्पाद व्यय होते रहनेकी स्थितिमें ही ध्रौव्य रहना, यह बात तो सामने स्पष्ट ही है, इस कारण उत्पाद-व्ययध्रौव्य जो कि प्रत्यक्ष सिद्ध है उसका लोप नही किया जा सकता।

उत्पादव्ययध्रौव्य न माननेपर व्यवहार विलोप एवं विधि व्यवस्थालोप का प्रसङ्ग—उत्पाद न माननेका अर्थ यह है कि वस्तु अपरिणामी रहेगी। तो अपरिणामी वस्तु होनेपर अर्थात् उसमे जब कोई विकार ही नही माना गया, किसी भी प्रकारका परिणमन स्वीकार नही किया गया तब खाना पीना, कमाना रोजिगार आदिक ये सब कैसे बन सकेंगे ? कोई चीज मिटती है और कोई बात बनती है इसी आधारपर तो सारे कार्य हैं। अब वस्तुमे परिणमन कभी हो ही न सका कुछ तो फिर वह सत् क्या रहा ? और उसका फिर लेन देन व्यवहार प्रयोग भी क्या रहा ? तो उत्पादव्ययध्रौव्य ये अंश धर्म न माननेपर कोई पदार्थ सत् ही नही रह सकता है। ये तीन धर्म वस्तुमें स्वरूपतः गुम्फित हैं। और इसी आधारपर बात तो यो माननी ही पडेगी ना और यह शासन या प्रकाश मिला नही तो यही चीज किसी अन्यरूपमें लोक-व्यवहारमे प्रसिद्ध हो जाती है। जैसे 'कुछ लोग' मानते हैं कि कोई एक देवता इन सारी सृष्टिको करता है और एक देवता इन सारी सृष्टियोका प्रलय कर देता है और एक देवता इस समस्त जगतकी रक्षा करता है। ये तीन प्रकारके देवताओंकी कल्पना इसी आधारपर ही तो की गई है। वस्तुमे उत्पत्ति होना, व्यय होना और सत्ता बना रहना ये तीन बातें स्वभावतः पडी हुई है। अब जो वस्तुके इस शीलपर दृष्टि नहीं देते और उन्हे समझना तो पडेगा ही इस उत्पन्न होने व्यय होने और बने रहनेकी बातको, तो वहाँ किसी देवताके द्वारा किया गया है ऐसी लोक प्रसिद्धि बन गई है। पर वह देवता वस्तुतः वहीं स्वय वस्तुमें रहने वाला धर्म है, सत् पदार्थ है और उसमे ये तीन गुण हैं। इन्ही गुणोको देवताके रूपमे कुछ लोगोने समझ लिया है। तो उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनो धर्म न माननेपर न सत् पदार्थकी सिद्धि है, न परलोककी सिद्धि है और न कार्यकारण आदिक व्यवस्थाकी सिद्धि है।

परिणामाभावादपि द्रव्यस्य स्यादनन्यथावृत्तिः।
तस्यामिह परलोको न स्यात्कारणमथापि कार्यं वा ॥ ९५ ॥

परिणमनके न माननेपर दोष बताते हुए परिणमनका समर्थन—वस्तु

का परिणाम न माननेपर क्या क्या दोष आते हैं ? उनका विवरण इस गाथामें किया है। एक जीव द्रव्यको ही दृष्टान्तमे ले लो। परिणाम जब नही मानते तो इसका अर्थ है जीवमे भी कोई परिणमन न हो और परिणमन न होनेका अर्थ है कि उस पदार्थका अन्य प्रकारसे वर्तन न होगा। अर्थात् वह पदार्थ सदा एक सदृश रहेगा। परिणमन भी अनेक ऐसे होते हैं कि सदृश होनेपर भी सदृश परिणाममें सर्वथा एकता नही है। सदृशता है लेकिन परिणाम न माननेपर तो एकता माननी होगी। वह वही है, रच भी वहाँ परिवर्तन या परिणमन नहीं है। तो द्रव्यमे परिणमन न माननेपर एक दोष बतानेके लिए दृष्टान्त जीवका दिया जा रहा है। जीव द्रव्यमें परिणमन तो माना नही। तो पुण्य पापका कुछ भी फल प्राप्त नहीं हो सकता। और यहाँ दिख रहा है सब कुछ भेद। इस जगतमे कैसे कैसे दु.खी मनुष्य हैं। पशु पक्षी कीट आदिक हैं। ये सब पापके फल हैं और यहाँ ही कितने ही लोग खुश नजर आते हैं। इज्जत-वान, धनवान, विद्यावान और वे अपने कुछ अच्छे विचार भी रखकर कुछ तृप्तसे रहा करते हैं, ये सब पुण्यके फल हैं लेकिन जीवद्रव्यमे परिणमन न माननेपर ये पुण्य पाप के फल कहाँसे होगे और परिणमन जहाँ है ही नही वहाँ क्या भाव, क्या पुण्य, क्या पाप, कुछ भी नही ठहर सकता। और, फिर मोक्षके लिए प्रयत्न करना बिल्कुल व्यर्थ है। जब ससार नहीं, दुर्गति गमन नही, जन्म मरण नहीं, पुण्य पाप नही, क्लेश नहीं, कुछ जरा भी तरग नहीं है तो फिर किसका छुटकारा पानेके लिए प्रयत्न किया जा रहा है ? तब मोक्षके लिए उपाय करना भी व्यर्थ हो जायगा। और, यदि नही माना जाता तो क्या कार्य और क्या कारण होगा ? कैसा भाव करनेसे कैसी आयुका बध होता है। कैसा कर्मोदय होनेपर जीवमे किस प्रकारकी कषायोकी निष्पत्ति होती है ? ये सब कार्यकारण भाव न रह सकेंगे, क्योकि जहाँ जरा भी अदल बदल नहीं रच भी परिणमन नही माना जाता वहाँ कार्यकारण भावके लिए संसार ही क्या है ? तो यों वस्तुमे परिणाम न माननेपर अर्थात् उत्पाद व्यय न माननेपर उसमें न सत्त्व रहेगा, न परलोक रहेगा, न मोक्षका उपाय रहेगा, न कार्य कारण भाव रहेगा, और न लोक-व्यवहार भी रह सकेगा। इस कारण उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनो धर्मोंका मानना अत्यन्त आवश्यक है।

परिणामिनोऽप्य भावत् क्षणिकं परिणाममात्रमिति वस्तु।
तन्न यतोऽभिज्ञानान्नित्यस्याप्यात्मनः प्रीतोतित्वात् ॥ ९६ ॥

परिणामीके न माननेपर दोष बताते हुए परिणामीका समर्थन—यदि पदार्थको परिणामी नही माना जाता तो उसका अर्थ यह होगा कि वस्तु केवल परिणाम मात्र है अर्थात् क्षणिक है, केवल प्रतिसमयका परिणमन। प्रत्येक परिणमन वही वस्तु हो जायगा और परिणमन प्रत्येक क्षणिक है ही तो वस्तु भी क्षणिक बन

जायगा। वस्तु परिणमन तो करता है ही लेकिन वस्तुमे जो अनेक परिणमन होते हैं वे सब परिणमन किसी एकके होते है ना ? तो वह एक द्रव्य परिणामी कहलाता है। जो परिणमे सो परिणामी। और, जो प्रतिसमयका परिणमन है, जिन रूपोसे यह पदार्थ परिणमा है वह प्रतिसमयका परिणमन परिणाम कहलाता है। तो परिणाम ही माननेपर परिणामीकी स्वीकारता न की जानेपर वस्तु परिणाममात्र ठहरेगी और परिणाममात्र होनेसे क्षणिक हो जायगी लेकिन ऐसा तो नही है, क्योकि प्रत्यभिज्ञान द्वारा आत्माकी नित्यता भी जानी जा रही है। किसीके सम्बन्धमे जो यह ज्ञान होता है कि यह वही जीव है ऐसा प्रत्यभिज्ञान तब ही तो सम्भव है जब कि वह नित्य हो। जिसे कल देखा था वही है यह तो कलमे और आजमे नित्यता रही ना, तो यह ज्ञान बन सका। तो पदार्थ अनादिसे अनन्त तक नित्य ही रहता है। तो यदि केवल परिणाममात्र माना जाय और परिणामी न माना जाय तो ये ज्ञान जो हो रहे हैं, जिनमे प्रत्यभिज्ञान होता है, *क्या यह ज्ञान मिथ्या है ? यह ज्ञान मिथ्या नही है।* इन ज्ञानों से भी सिद्ध होता है और वस्तुके स्वरूपकी चर्चासे भी यही सिद्ध होता है कि परिणामी और परिणाम दोनो रूप वस्तु है और उसे स्पष्ट समझनेके लिए यों समझ लीजिए कि द्रव्य और पर्याय दोनो ही मानने होगे। द्रव्य तो नित्य है और उसकी पर्याय अनित्य है। जो सत् है उसकी ऐसी मुद्रा होगी कि वह निरन्तर अपना ही परिणमन बनाता रहे। तात्पर्य यह हुआ कि पदार्थ अपने वस्तुत्वको कभी नही छोडता, इस कारण तो वह नित्य है और वह सदा नई-नई अवस्थाओंको धारण करता है इस कारण अनित्य है। तो पदार्थ न सर्वथा नित्य रहा न अनित्य। अब यहाँ शंकाकार द्रव्यके दो लक्षण सुनकर शङ्का करता है।

गुणपर्ययवद्द्रव्यं लक्षणमेकं यंयुक्तमिह पूर्वं ।
वाक्यान्तरोपदेशादधुना तद्बाध्यतेत्विति चेत् ॥ ९७ ॥

द्रव्यके उक्त दो लक्षणोने विरोधकी आरेका—शङ्काकार यहाँ शङ्का करता है कि पहिले द्रव्यका लक्षण तो यह कहा गया था गुणपर्ययवत्द्रव्यं। द्रव्य गुण पर्याय वाला है। और, इसीका खुलासा करनेके लिए गुणपर्यायका समुदाय द्रव्य है, गुण समुदाय द्रव्य है, समगुणपर्याय द्रव्य है यह भी कहा था। वह सब एक ही प्रकारके लक्षणोसे सम्बन्धित है। तो पहिला जो लक्षण कहा गया था यह—गुणपर्ययवत् द्रव्यं और कुछ अन्य वाक्योसे उसका लक्षण किया जा रहा है यह कि उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत् है। तो पहिलेका जो लक्षण है वह बाधित हो गया है। बादमे जो लक्षण किया जाता है उस लक्षणसे इस वाक्यान्तरके उपदेशसे पूर्वकथित लक्षण बाधा जायगा। तो पूर्वोक्त लक्षण सही न ठहरा क्योकि अब लक्षण यह बताया जा रहा है कि जो सत् है सो द्रव्य है। और, सत् उसे कहते हैं जो उत्पादव्ययध्रौव्यसे युक्त हो।

तो अब इस लक्षणसे पूर्वलक्षण बाधित होनेसे गुणपर्ययवत्द्रव्यं, यह लक्षण न ठहरा, किन्तु केवल यह लक्षण रहा कि जो उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त हो सो द्रव्य है ? इस शका के समाधानमे कहते हैं—

तन्न यतः सुविचारादेकोर्थो वाक्ययोर्द्वयोरेव ।
अन्यतर व्यादितिचेन्न मिथोभिव्यजकत्वाद्वा ॥ ६८ ।

द्रव्यके दोनों लक्षणोंको सगत व अभिव्यञ्जक बताते हुये उक्त आरेका का समाधान—समाधानमे कहते हैं कि जो दो लक्षण द्रव्यके बताये गए हैं गुणपर्यय वत् द्रव्यं और सत् द्रव्यलक्षणं उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् । इन दोनों लक्षणोंमे कोई विरोध नहीं है, क्योकि दोनो वाक्योका अर्थ एक ही है । यदि ऐसा सुनकर भी कोई यह कहे कि जब दोनो लक्षणोका एक ही अर्थ है तो दोनोंके कहनेकी जरूरत क्या थी? तो उसका उत्तर सुनो ! दो लक्षण कहनेमें वस्तुके स्वरूपका स्पष्ट प्रतिपादन होजाता है, पहिली बात ! दूसरी बात यह है कि पहले जो लक्षण किया गया था गुणपर्ययवत् द्रव्यं उसको ही स्पष्ट और पुष्ट करने वाला उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् और वस्तुके स्पष्ट निर्णय इन दोनो लक्षणोसे होता है और ये दोनो परस्पर सहयोगी हैं । उत्पाद-व्ययध्रौव्यकी बातका समर्थन गुणपर्यायने किया और गुणपर्यायके स्वरूपका समर्थन उत्पादव्ययध्रौव्यने किया । इस कारण दोनो लक्षणोका कहना युक्त है और इन दोनों में कोई विरोध नहीं है । कैसे विरोध नहीं है ? और कैसे एक दूसरेका सहयोग करते हैं ? इस बातको स्पष्ट अगली गाथामे कह रहे हैं ।

तद्दर्शनं यथा किल नित्यत्त्वस्य च गुणस्य व्याप्तिः स्यात् ।
गुणवद्द्रव्य च स्यादित्युक्तो ध्रौव्यवत्पुनः सिद्धम् ॥ ६९ ॥

द्रव्यके दोनो लक्षणोंकी सगतताके प्रसङ्गमे गुणकी नित्यत्वके साथ व्याप्तिका समर्थन—गुणपर्ययवत् द्रव्यं इस लक्षणमें दो बातें बताई गई हैं । गुण और पर्याय और उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् । इनमें भी दो बातें कही गई हैं । एक उत्पादव्यय और दूसरी ध्रौव्य । चूंकि उत्पादव्यय दोनोका अनित्यपनेसे सम्बन्ध है, उत्पाद हुआ तो इसका अर्थ है कि वस्तु अनित्य है । कुछ मिटा, कुछ हो हुआ, चीज बनी, जो पहिले न था और व्यय कहा तो उसमें भी अनित्यताका संकेत है । विलीन हो गया, अब वह न रहा, इस कारण उत्पादव्ययको एक कोटिमें रखें और ध्रौव्यको दूसरी कोटिमे रखें । अब यहाँ यह देखलो कि उत्पादव्ययके साथ व्याप्ति है, पर्याय और ध्रौव्यके साथ व्याप्ति है गुणकी । नित्यपना और गुण इन दोनोकी व्याप्ति है । गुण कहनेसे नित्यपनेका बोध होता है इसलिए गुणवान द्रव्य है, ऐसा कहनेसे अर्थ

यह ध्वनित हो जाता कि नित्य द्रव्य है, ध्रौव्यवान द्रव्य है। वस्तुका स्वरूप समझनेकी दिशामे लक्षणमे तत्त्वरूपता तो बदली, पर स्वरूप नहीं बदला। वस्तु ध्रौव्यवान है, ऐसा कहनेमे इस ओर दृष्टि गई कि वस्तु सदाकाल रहता है, पर उसकी विशेषता समझमें आई गुणवान द्रव्य है, यो कहनेपर अर्थात् सदा वस्तु रहती है तो वस्तुमे स्वरूप स्वभाव सदा रहता है, वह ही गुण कहलाता है। तो ध्रौव्यवान द्रव्य है ऐसा कहनेसे गुणवान द्रव्य है, यह सिद्ध हुआ। तो यो ये शब्द परस्पर एक दूसरेके अभिव्यञ्जक हैं। कथंचित् नित्यको ही तो ध्रौव्य कहते हैं और गुणोसे कथचित् नित्यता सिद्ध करनेके लिए द्रव्यको ध्रौव्यवान कहा है। गुणवान द्रव्य है, इसका अर्थ हुआ कि वस्तु सदाकाल रहता है। सदाकाल पदार्थ रहा, इतने कथनमात्रसे कुछ तत्त्व जानने पर गुणके कथनसे उस तत्त्वमे विशेषताका बोध किया। पदार्थ है, उसमे अनन्त शक्तियाँ हैं और उन शक्तियोंसे पदार्थ तन्मय है। शक्तियाँ नित्य हैं, पदार्थ नित्य हैं, यो गुणसे यह बात समझी गई।

पर्यायकथनसे उत्पाद व्ययका समर्थन तथा द्रव्यके दोनों लक्षणोंमे सहयोगिताका समर्थन—पर्यायोसे बात समझी जाती है उत्पाद व्ययकी। पदार्थ उत्पाद व्यय स्वरूप है, तो उत्पन्न होना और नष्ट होना यह बात आत्मामे पायी जाती है। कोई नवीन पर्याय ही उत्पन्न होता है, पदार्थ उत्पन्न नहीं होता। पदार्थ उत्पन्न हुआ इसका अर्थ तो यह होगा कि पहिले पदार्थ असत् था, अब सत् हुआ है। किन्तु असत् कभी सत् हो ही नहीं सकता, इस कारण पदार्थका उत्पाद नही, किन्तु पदार्थका सर्वथा उत्पाद और अवस्थाका सम्बन्ध पर्यायसे है। तो दोनो लक्षणोमे जो दो कोटियाँ रखी गई हैं वे एक दूसरेका समर्थक होनेसे वस्तुके स्वरूपके परिचयमे एक विशिष्ट मदद ही मिलती है, इस कारण दोनो लक्षणोंका कहना युक्त है और इसमें किसी प्रकारका विरोध नही है, इस कारण तत्त्वार्थसूत्रमे भी दो लक्षणोको एक ही प्रकरण मे रखा गया है। और, इस ग्रन्थमें दो ही लक्षण बताये हैं, किन्तु प्रथम लक्षणके उत्तरोत्तर अभेद बुद्धिमे ही लक्षणका समर्थन किया गया है। गुणपर्याय वाला द्रव्य है ऐसा कहनेसे कोई यह समझ ले कि जैसे धनवान पुरुष है। यहाँ धन और पुरुष न्यारे-न्यारे हैं, ऐसे ही गुणपर्याय और द्रव्य ये न्यारे-न्यारे हुए। ऐसी समझको टालनेके लिए उसका स्पष्टीकरण किया है कि गुणपर्याय समुदायः द्रव्यं। गुणपर्याय का समुदाय द्रव्य है इस शब्दमें कुछ अभेदकी बात कह लिया फिर भी भेद समझाने की गुंजाइश नही आती है इस कारण कहना पडा कि गुणवत् द्रव्यं। यहाँ पर भी सिद्धान्तसे तो तन्मयता सिद्ध होती है, पर भेदका अर्थ यह भी कोई लगा सकता है। उस भेदको टालनेके लिए अन्तमे कहा है—समगुणपर्याय द्रव्य है। इन सबमे गुणपर्ययवत् द्रव्यंकी ध्वनि है और यहाँ दूसरा लक्षण कहा उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत् है। इन दोनोमें विरोध नही है। अतः दोनों लक्षणोंका कहना उचित ही है।

अपि च गुणाः सँलक्ष्यास्तेषामिह लक्षणं भवेत् ध्रौव्यम्।
तस्माल्लक्ष्यं साध्यं लक्षणमिह साधनं प्रसिद्धत्वात् ॥ १०० ॥

गुण और ध्रौव्यमें लक्ष्यलक्षणरूपता व साध्यसाधनरूपता—गुणपर्यायवान द्रव्य है और उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत् द्रव्यका लक्षण है, इन दोनो लक्षणोंमें समता समन्वय और सहयोगिताकी बात बतायी जा रही है। यहाँ यह समझना चाहिए कि गुण तो लक्ष्य है और ध्रौव्य लक्षण है। उत्पादव्ययध्रौव्यमे दो कोटियाँ हैं—एक उत्पादव्ययकी और एक ध्रौव्यकी। और गुणपर्ययवान द्रव्य है। यहाँ दो कोटियाँ स्पष्ट ही हैं गुण और पर्याय। तो गुणका लक्षण ध्रौव्य है। ध्रौव्य हुआ लक्षण और गुण हुआ लक्ष्य। जिसको समझना है, सिद्ध करना है उसे कहते हैं लक्ष्य और जो साधन है, जिसके द्वारा सिद्ध किया जायेगा उसे कहते हैं लक्षण। तो गुणपर्ययवान द्रव्य है यह तो लक्ष्य है और उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत् है यह लक्षण है। जिस प्रकार गुण लक्ष्य है और उत्पाद व्यय वाला है, यह उसका लक्षण है। तो इन दोनोमे लक्ष्य लक्षणका सम्बन्ध है और इसी लिए दोनोको कहना युक्त है। तब गुणपर्ययवत् द्रव्यसे कोई समझ न सका। गुणपर्याय भी क्या चीज है, यह न जाना जा सका तो उसको व्यक्त करनेके लिए द्वितीय लक्षण कहा गया उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त द्रव्य है। इसमे उत्पादव्यय लक्षण है और पर्यय लक्ष्य है और ध्रौव्य लक्षण है, गुण लक्ष्य है। यहाँ तक गुणोंके सम्बन्धमे तुलनात्मक ढगसे ध्रौव्यका सम्बध बताया। अब पर्याय के सम्बन्धमें कहते हैं।

पर्यायाणामिह किल भङ्गोत्पादद्वयस्य वा व्याप्तिः।
इत्युक्ते पर्ययवद् द्रव्यंसृष्टिव्ययात्मक वा स्यात् ॥ १०१ ॥

पर्यायकी अनित्यत्वके साथ व्याप्तिका कथन—पर्यायोकी उत्पाद व्ययके साथ व्याप्ति है अर्थात् पर्यायके कहनेसे उत्पाद और विनाशका बोध होता है, इस कारण पहिले लक्षणमे जहाँ कहा गया कि पर्ययवान द्रव्य है वहाँ यह सिद्ध हुआ कि उत्पाद व्यय वाला द्रव्य है। पर्याय परिणमनको कहते हैं और परिणमन उत्पाद व्यय बिना सम्भव नहीं है। कोई नवीन परिणमन हो तो उसे उत्पाद कहा गया और नवीन परिणमन होनेके समय पूर्व परिणमन विलीन होते ही हैं तो पूर्व पर्यायके विलीन होनेको यहाँ व्यय शब्दसे कहा है। नवीन अवस्थाको उत्पाद और पूर्व अवस्था का व्यय हुए बिना परिणमन नहीं हो सकता। मानो नवीन अवस्था तो बनती हो और पुरानी अवस्था विलीन न होती हो तो परिणमन एक साथ एक द्रव्यमे नहीं रहते। प्रतिसमय एक ही परिणमन है तो परिणमनकी पर्यायकी व्याप्ति उत्पाद व्ययके साथ है, तब जब कभी यह कहा जाय कि पर्यायवान द्रव्य है, तो उसका अर्थ, यही

लेना चाहिए कि उत्पादव्ययस्वरूप द्रव्य है।

द्रव्यस्थानीया इति पर्यायाः स्युः स्वभाववन्तश्च।
तेषां लक्षणमिव वा स्वभाव इव वा पुनर्व्ययोत्पादम्॥ १०२॥

पर्याय और उत्पादव्ययमे लक्ष्यलक्षणरूपता—गुण पर्ययवान द्रव्य है और उत्पादव्ययध्रौव्यवान द्रव्य है। इन दोनो लक्षणोके कथनसे गुणोमे तो यह बात सिद्ध हुई कि गुण ध्रुव है। शक्ति और शक्तिवान दोनो ध्रुव हैं, स्वभाव और स्वभाववान दोनो ध्रुव है और पर्यायोके कथनसे यह बात सिद्ध हुई कि परिणमन द्रव्यमे ही होता है और परिणमन एक अंश है। जैसे—कालकृत अश कहा। पदार्थका एक काल मे तो एक परिणमन है वह कालकृत अंश है। तो पर्यायो द्रव्य स्वकीय है, द्रव्यमे ही उत्पन्न होता है, पर्यायें द्रव्यसे भिन्न नही हैं। दूसरी बात यह है कि पर्याये स्वभाववान है, क्योकि वह द्रव्य स्थानीय है। तो द्रव्यमे क्या है? कोई स्वभाव, कोई शक्ति उसका जो व्यक्त रूप है वही तो परिणमन है। जब पर्याय द्रव्य सजातीय हैं और स्वभाववान हैं तो उनका लक्षण और स्वभाव बताना आवश्यक हो जाता है। तो इस सम्बन्धमे कोई यह जिज्ञासा करे कि उनका लक्षण और स्वभाव क्या है? तो उनको समझानेके लिये यह कहना ही पडेगा कि उत्पादव्यय यह तो पर्यायोका लक्षण है। जिनका उत्पाद और व्यय होता है वे पर्याये हैं। तो पर्यायोके लक्षणकी तरहसे उत्पाद व्ययका वर्णन किया जायगा अथवा पर्यायोका स्वभाव क्या है? ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहा जायगा कि पर्यायोका स्वभाव उत्पाद और व्यय है। तो यो अब पर्यायोका उत्पादव्ययके साथ लक्ष्य लक्षण सम्बन्ध रहा और स्वभाव स्वभाववान सम्बन्ध रहा। इसी तरह गुण और ध्रौव्य इन दोके मुकाबलेमे इनकी परीक्षा की जाय तो गुण लक्ष्य रहा, ध्रौव्य लक्षण रहा। और, जब यह पूछा जाय कि गुणोका स्वभाव क्या है? तो उत्तर मिलेगा कि गुणका स्वभाव ध्रुवपना है। तो यो गुणस्वभाव स्वभाववान हुआ और ध्रौव्य स्वभाव हुआ। यो गुण और ध्रौव्यके साथ लक्ष्य लक्षण एव स्वभाव स्वभाववान सम्बन्ध है इसी प्रकार पर्यायका उत्पादव्ययके साथ लक्ष्य लक्षण एवं स्वभाव स्वभाववान सम्बन्ध है।

'गुणपर्ययवद् द्रव्य' तथा 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त' मे लक्ष्यलक्षणसम्बन्ध का दिग्दर्शन—द्रव्यके उस पूर्वकथित समूचे लक्षणका और अग्रिम कथित उत्पाद व्ययध्रौव्ययुक्त वाक्यका परस्परमे क्या सम्बन्ध है? तो लक्ष्य लक्षण सम्बन्ध है। गुण पर्ययवान द्रव्य है ऐसा कहकर। तो अब यहाँ गुणपर्ययवान द्रव्य है, यह तो हुआ अभिव्यञ्जक याने जिसके सम्बन्धमे कुछ बात प्रकट करना है और उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् यह हुआ अभिव्यञ्जक, इसने गुण पर्यायकी पहिचान करा दी। तो इन

दोनो लक्षणोमे अभिव्यञ्जन और अभिव्यञ्जक भावका सम्बन्ध है और इस ढङ्गसे इसमें साध्य साधन सम्बन्ध है। गुणपर्यंयवान द्रव्य है, यह तो साध्य हुआ और इसको सिद्ध किया उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् है इसने। तो यो गुणपर्यंयवान द्रव्य है, यह तो मुख्य लक्षण है और एक आधारभूत लक्षण है जिससे इसके विस्तारका वर्णन होगा। और, उस लक्षणको प्रकट करनेके लिए कहा है—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। जो उत्पादव्ययवान है वह तो पर्याय है और जो ध्रौव्यवान है वह गुण है। पदार्थमे दोनों ही बातें हैं। पदार्थ सदा रहता है और प्रति समय परिणमता रहता है। तो जो सदा रहनेकी बात है वह तो हुआ गुणकी दृष्टिसे कथन और जहा परिणमनकी बात है वह है पर्याय दृष्टिसे कथन।

दोनो लक्षणोसे सामान्य व विशेष परिचय—प्रत्येक पदार्थ है और परिणमता रहता है पदार्थका यह सामान्य परिचय है। अब किस प्रकारसे है? किस प्रकारसे परिणमता है इसका सम्बन्ध असाधारण धर्मसे है। जैसे जीव है तो वह ज्ञान रूपसे है और ज्ञानरूप परिणमता है। अब इस असाधारण धर्मकी दृष्टिसे जो भी परिणमन हुआ वह ज्ञान परिणमनरूपसे समझा जायगा। जैसे दु ख हुआ तो हुआ क्या वहाँ? ज्ञानका उस प्रकारका परिणमन हुआ। जिसमे दु खका अनुभव हुआ, सुख हुआ तो हुआ क्या? ज्ञानका कल्पनाका उस प्रकार ा परिणमन हुआ। जो अपने को सुखी समझा गया। और, जब वास्तविक स्वाधीन सहज आनन्दमे लीन होनेकी स्थिति आती है तो वहाँ होना क्या है? ज्ञान गुणका उस प्रकारका परिणमन होता है। तो यों असाधारण धर्मरूपसे है जीव और उस रूपसे परिणमता है। तो सभी पदार्थ उस साधारणरूपसे अस्तित्व और साधारणरूपसे परिणमन, यह तो पदार्थपनेके नातेसे बात है। और जाति अपेक्षा उसमे एक विशेषता और बनती है कि वह किस रूपसे है और किस रूप परिणमता है? जैसे जीव ज्ञानरूपसे है और ज्ञानरूपसे परिणमता है। तो यो अस्तित्व होना और परिणमन होते रहना यह द्रव्यमे नियमत. हुआ करता है। तो उसी बातको व्यक्त करनेके लिए प्रथम तो द्रव्यका लक्षण कहा गया, गुणपर्यायवान द्रव्य है और उस गुणपर्यंयको प्रकट समझानेके लिए कहा गया कि उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त द्रव्य है। यो दोनो लक्षणोमें लक्ष्य लक्षण, सम्बन्ध स्वभाव स्वभाववान है सम्बन्ध अभिव्यञ्ज अभिव्यञ्जक भाव सम्बन्ध और साध्य साधन सम्बन्ध है। इस प्रकार द्रव्यका जो लक्षण ८ वें छदमें बताया गया है उसके सम्बन्धमे वर्णन किया गया। अब इसी प्रसगमे सम्बन्धित गुणके निरूपण करनेका उपक्रम किया जायगा।

पञ्चाध्यायी-प्रवचन

[द्वितीय भाग]

●

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज

●

अथ च गुणत्वं किमहो सूक्तः केनापि जन्मिनासूरिः ।

प्रोचे सोदाहरणं लक्षितमिव लक्षणं गुणानां हि ॥ १०३ ॥

स्वपरयाथात्म विज्ञान बिना सकटोसे छुटकाराकी असम्भवता— अपने स्वरूपके जाने बिना बाह्य पदार्थोंको स्वपदार्थोंसे अपनानेके कारण इस जीवकी अनादिसे अब तक दुर्गति होती चली आयी है । एक भवसे मरण करना, दूसरे भवमे जन्म लेना और उस जन्म मरणके बीच नाना सकट सहना यही प्रत्येक भवमे होता चला आया है । कभी किसी भवमे कुछ इन्द्रियके इष्ट विषयोका साधन मिला और वहाँ कुछ सुखरूप परिणमन किया तो उससे भी इस जीवको हित क्या हुआ ? सुख और दुःख ससारके दोनो बराबर हैं, क्योकि शान्तिका अभाव दोनोमे है । तो जब कभी श्रेष्ठ भव मिलता है और कुछ संसार निकट होता है तो आत्मकल्याणकी भावना उत्पन्न होती है वहाँ यह अभीष्ट बनता है कि जन्म मरणसे मेरा छुटकारा हो । जन्म मरणसे छुटकारा होनेका उपाय मोहका परिहार है । जब तक मोह है तब तक संसार मे जन्म मरण होते ही रहेंगे । मोहके विनाश होनेपर ही यह सकट समाप्त हो सकता है । मोहका विनाश कैसे हो ? तो यह बात मोहका स्वरूप समझ लेनेसे ही विदित हो जाती है । मोह उसे कहते हैं जो निज नही हैं ऐसे पर पदार्थोंको निजरूपसे कल्पना करनेको । तो निज निजरूपसे समझमें आये और पर पदार्थ पररूपसे समझमे आयें ऐसा पुरुषार्थ बने तो यह है वास्तविक पुरुषार्थ सकटोंसे छूट जानेके लिए । उसीके प्रयत्नमें बड़े बड़े ऋषिराजोंके उपदेश होते हैं । और निज क्या है ? निज और परका भेद समझनेके लिए सर्वप्रथम सामान्यतया पदार्थोंका स्वरूप समझना चाहिए ।

पदार्थ परिज्ञानके प्रसङ्गमें गुणोंके निरूपणकी प्रतिज्ञा— इस ग्रन्थमे सर्वप्रथम पदार्थके स्वरूपकी ही बात की गई है । पदार्थ सन्मात्र है, स्वतःसिद्ध है अनादि

अनन्त है। अपने ही सहाय है। और अखण्ड है। इस लक्षणके समर्थनमे बहुत बहुत चर्चायें होनेके बाद अन्तमे द्रव्यका लक्षण किया गया है—जो गुणपर्याय वाले हो सो द्रव्य हैं। यहाँ अभी पदार्थके स्वरूपकी ही चर्चा चल रही है। पदार्थ स्वरूप जानने पर स्वय ही यह जान लिया जाता है कि यह तो हुआ मैं निज और बाकी ये हैं समस्त पर पदार्थ। जो मेरे गुणपने और पर्यायपनेसे युक्त है वह तो हुआ मैं निज और जो परकीय द्रव्यपने और गुणपनेसे युक्त है वह है पर पदार्थ। यह भेद विज्ञान करनेके लिए वस्तुस्वरूप पहिले जानना होगा। पदार्थ है गुणपर्याय वाला। इसके समर्थनमें बहुत चर्चायें की गई थीं। अब इस प्रसगमे यहाँ यह प्रश्न हो रहा है कि गुण नामक पदार्थ कहते किसे हैं? गुण क्या चीज है? वस्तुको अन्त विधिसे समझनेके लिए शक्ति, गुण, स्वभावका परिचय अवश्य होना चाहिए। गुण ध्रुव होता है, पदार्थमें शक्ति सहज है, अर्थात् जबसे पदार्थ है तबसे ही उसमे शक्ति है। उस शक्तिका गुणका क्या स्वरूप है? यह बात इस प्रकरणमें आचार्य महाराजसे पूछी गई है—यह पूछा जानेपर अब आचार्य महाराज उसका उत्तर देते हैं।

द्रव्याश्रया गुणाः स्युर्विशेषमात्रास्तु निर्विशेषाश्च।
करतलगतं यदेतैर्व्यक्तमिवालक्ष्यते वस्तु ॥ १०४ ॥

गुणोंका स्वरूप—जो द्रव्यके आश्रय रहता हो और स्वय निर्विशेष हो ऐसे विशेषोको गुण कहते हैं। पदार्थका स्वरूप बताया गया था, उस पदार्थको स्पष्ट समझनेके लिए पदार्थोंकी विशेषतायें ही तो समझायी जायेंगी। उस पदार्थमे क्या क्या विशेष हैं ऐसा जब कहनेको उद्यमी होगा कोई तो जो जो विशेष बतायें जावेंगे बस वे ही गुण कहलाते हैं। गुणका अर्थ दो तरहसे कीजिए—गुणका नाम है विशेष। जो पदार्थकी विशेषता बताये, पदार्थोंमे जो विशेषतत्त्व पाया जाय उसे गुण कहते हैं, अथवा पदार्थ तो अखण्ड है। उस अखण्ड पदार्थका ज्ञानमे भेद करके जो कुछ अंश समझा जाय उसको गुण कहते हैं। तो जो भी पदार्थके गुण कहे जायेंगे वे होगे ध्रुव शाश्वत् गुण स्वय पदार्थ नही, किन्तु पदार्थकी विशेपता है सो उस विशेषमे और विशेष न मिलेगा अर्थात् गुणमें और गुण नही मिलते हैं। वह एक शक्ति है। उस शक्तिमे और शक्ति नही लगती है, क्योकि अन्य शक्ति माननेसे यह शक्ति शक्तिमान कहलाने लगेगा। तब यह गुण न होकर द्रव्य बन जायगा। गुण तो गुणवानके समझनेके लिए कहा जाता है। तो जिसमें स्वय और विशेष नही है अर्थात् जो गुणरहित है, किन्तु है द्रव्यके आश्रय अर्थात् जिसमे गुण बनाये जा रहे हैं उस पदार्थमे तादात्म्यरूपसे रहने वाले हैं। ऐसे तत्त्वको गुण कहते हैं। और, इन ही गुणोके द्वारा वस्तु स्पष्ट समझमें आती है। वस्तुको समझानेका उपाय पर्याय भी है, लेकिन जो पर्यायके द्वारा समझा है उनके चित्तमे गुणकी मान्यता पडी हुई है। गुण माने बिना पर्यायकी

बात कही नही जा सकती। पर्याय मायने परिणमन। वह परिणमन किसका है? यह स्पष्ट हुए बिना परिणमनकी बात समझमे आ नही सकती। तो पर्यायमुखेन भी कोई वस्तुका स्वरूप बतायें तो वह भी गुणकी बात मान चुका ही है। दूसरी बात यह है कि पर्यायमुखेन वस्तुका वर्णन करनेकी मुख्य पद्धति नही है। वह तो मुख्य पद्धतिका समर्थन करनेके लिए वर्णन है। पर्यायें क्षणिक होती हैं, उनमे उत्पाद व्यय होता है, पर वस्तुको समझनेके लिए उत्पाद व्यय स्वरूपकी मुख्यता न दी जाकर ध्रौव्यकी मुख्यताका वर्णन होता है। ध्रौव्य स्वरूप है गुणका, अतएव गुणोंके द्वारा वस्तुका स्पष्ट परिज्ञान होता है और गुणोंके द्वारा ऐसा स्पष्ट ज्ञान होता जैसे हाथके तलभागपर रखी हुई किसी वस्तुका स्पष्ट ज्ञान होता है।

गुणोकी द्रव्याश्रयता—यहाँ गुणका लक्षण बताया गया जिसमे दो बातें कही गई हैं—द्रव्याश्रया और निर्गुणा जो द्रव्यके आश्रय हो और गुणरहित हो उन्हे गुण कहते है। गुण सदा द्रव्यके आश्रय रहते हैं, क्योंकि गुणका अर्थ ही है द्रव्यकी विशेषता। द्रव्य अखण्ड स्वय क्या ? है उसको समझानेके लिए जो उसका शक्तिभेद किया जाता है वह गुण कहलाता है। तो गुणद्रव्यके आश्रय रहता है लेकिन यह आश्रय आश्रयी सम्बन्ध अभेदरूपसे है न कि भेदरूपसे। लोकमे जैसे चौकी पर पुस्तक रखी हो तो वहाँ कहते हैं कि पुस्तक तो आश्रयसे है और चौकी आश्रयभूत है। तो जैसे यहाँ चौकी भिन्न है, पुस्तक भिन्न है और फिर उनका आश्रय आश्रयी सम्बन्ध बताया है इस तरहसे गुण और द्रव्यका आश्रय आश्रयी सम्बन्ध नही है। बल्कि बहुत सूक्ष्म दृष्टिसे विचारा जाय दो गुण ही तो द्रव्य है। एक एक शक्तिकी कल्पना है तो वहाँ गुण सज्ञा होती है और वे सभीकी सभी शक्तियाँ वे सभी गुण बराबर द्रव्य कहलाते है। तो यो गुण और द्रव्य ये पृथक नही है, अतएव इनमे आश्रय आश्रयी सम्बन्ध समझनेके लिए है। वस्तुत. यह अभेदरूपसे है, दृष्टान्तके लिए कुछ ऐसा समझा जा सकता है कि जैसे कोई कहे कि इस कपडेमे ततु हैं तो ततु अलग और कपडा अलग हो, ऐसा तो कुछ है नही। उन सब ततुओंका समुदाय ही कपडा है। वे सब ततु एकत्रित होकर इस प्रकार सघटित हैं, उनको ही कपडा कहते है। तो ततुमे कपडा, कपडामे ततु, जैसे यहाँ आश्रय आश्रयी सम्बन्ध भिन्न नही है इसी प्रकार गुण और द्रव्यका आधार आधेय सम्बन्ध भिन्न नही है। तो गुण द्रव्यके आश्रय रहते हैं।

गुणोकी निर्गुणता.—गुणके लक्षणमे दूसरी बात बतायी गई है कि गुण गुणरहित होते हैं। गुणोमे और गुण नही होते। गुण स्वयं एक विशेष है, विशेषवान नहीं है, स्वय ही विशेष स्वरूप है अतएव गुणोमे और गुण नहीं है। यदि गुणोमे भी गुण रह जाये तो गुणवान हो वह तो द्रव्य कहलाता। अब गुणोमे गुण और मान लिए गए तो यहाँ गुण द्रव्य बन गया, और जो अन्य गुण माना है वे विशेष अथवा गुण हो गए। फिर चूंकि वे भी गुण हैं तो उनमें भी और गुण मानने होगे। तो अब

वे नवीन माने गये गुण द्रव्य हो गए। उनमे और गुणोकी कल्पना की गई इस तरह अनवस्था दोष आयगा। कहीं भी द्रव्य और गुणकी व्याख्या अवस्थित न हो पायगी। इससे गुण निर्गुण ही होते हैं यह बात पूर्ण युक्तिसंगत है। इस लक्षणका आधार न लेनेसे कुछ दार्शनिक गुणके लक्षणसे चिग गए हैं और अनेक दार्शनिकोंने तो गुणको स्वयं पदार्थ माना है और द्रव्यको जुदा पदार्थ माना है। फिर द्रव्यमे गुणका समवाय सम्बन्ध माना है, यह बात लक्ष्यसे छूट गई कि वह द्रव्य ही स्वयं सविशेष है, वह विशेष भी द्रव्य गुणसे पृथक चीज नहीं है और द्रव्यमे गुणोका समवाय भी क्या ? तादात्म्य सम्बन्ध है। गुणमय ही द्रव्य है। सत् एक है। उस सत्की विशेषता बताने के लिए गुण कर्म सामान्य विशेष तत्त्वका परिज्ञान किया जाता है। तो यहाँ गुण का लक्षण यह कहा गया है कि जो द्रव्यके आश्रय हो, गुणरहित हों उन्हें गुण कहते हैं।

अयमर्थो विदितार्थः समप्रदेशाः सर्वे विशेषा ये।
ते ज्ञानेन विभक्ता क्रमतः श्रेणीकृता गुणा ज्ञेयाः ॥ १०५ ॥

गुणोकी समप्रदेशता—गुणका लक्षण जो ऊपर बताया गया है कि द्रव्यके आश्रय और निर्विशेष विशेषमात्र गुण कहलाता है। इसका खुलासा यह है कि एक गुणका जो प्रदेश है वही प्रदेश सभी गुणोका है। गुण भी प्रत्येक एक है और अपने आश्रयभूत द्रव्यमे व्यापक है। अतः द्रव्य तिर्यक विस्तारमे जितना बड़ा है, उसके जितने प्रदेश हैं वे सभी प्रदेश सभी गुण स्वरूप हैं। इसलिये सभी गुणोके समान प्रदेश हैं और उन प्रदेशोमे रहने वाले गुणोंका जब ज्ञानके द्वारा विभाग किया जाता है तब श्रेणीवार वे अनन्त प्रतीत होते हैं याने बुद्धिसे जब विभाग किए जाते हैं तो वे सभी प्रदेश गुणरूप ही दीखते हैं। अथवा गु ोका पिण्ड ही द्रव्य है और वे गुण अपने स्वरूपको, विस्तारको, क्षेत्रको लिए हुए हैं। अतः गुणमात्र द्रव्य है ऐसा तो अर्थ दृष्टिसे कहा जायगा और असंख्यात प्रदेशी, अनन्त प्रदेशी या एक प्रदेशी द्रव्य है, यह क्षेत्रके विस्तारकी दृष्टिसे कहा जायगा। गुणका लक्षण यही रहा कि जो नित्यतासे द्रव्यके आश्रय रहता है और स्वयं गुणरहित है, ऐसे द्रव्याश्रित निगुणोको गुण कहते हैं। इस ही बातका उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण करते हैं।

दृष्टान्तः शुक्लाद्या यथा हि समतन्तवः सर्वे सन्ति।
बुद्धया विभज्जमानाः क्रमतः श्रेणीकृता गुणा ज्ञेयाः ॥१०६॥

दृष्टान्तपूर्वक गुणोंके लक्षणका समर्थन—जैसे समान तन्तु वाले सभी शुक्ल आदिक गुण समान हैं कोई सफेद वस्त्र है तो कितना लम्बा चौड़ा है? जितना कि वस्त्र

है। वस्त्र कितना बडा है? जितना कि वे शुक्लादिक गुण हैं। पुद्गलोमे रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चार गुण होते हैं। उन चारो गुणोका पिण्ड वह पुद्गल है उसके साथ साथ जो और भी गुण होते हैं उनकी असाधारणतासे पुद्गलमे भेद हो जाते है। वहाँ जो गुण रहे हैं वे द्रव्य प्रमाण हैं। कपडेमे शुक्लादिक गुण उतने हैं जितने कि तंतु। और जो ततुका क्षेत्र है वही शुक्ल आदिक गुणोका क्षेत्र है। अब शुक्ल आदिक गुणोका बुद्धिसे विभाग किया जाय तो अनन्त प्रतीत होगे। यदि एक एक ततुमे एक एक तंतु मे भी एक छोटा हिस्सा कोई बुद्धिमे लेते हैं तो सभी प्रदेश, सभी हिस्से शुक्ल आदिक गुणरूप प्रतीत होते है। यो भी शुक्लादिक गुण अनन्त हैं और गुण भी अनन्त है। एक गुण भी अनन्त है, इसी प्रकार जैसे एक जीवतत्त्व लें तो जीव द्रव्य ज्ञानादिक गुणोका पिण्ड है वह और क्या है? परमार्थभूत है। और, ज्ञानादिक गुणोमय है। ज्ञानादिक गुण कितने प्रमाण हैं? जितने प्रमाण जीव हैं। जीवका प्रत्येक प्रदेश समस्त गुणमय है। अब वे गुण अनन्त हैं और एक एक गुणको अगर भिन्न भिन्न प्रदेश पर देखा जाय तो एक प्रदेशके विभागमे वे भी भाग हैं, पर परमार्थत. एक ही हैं। जो अपने प्रदेशमे सर्वत्र-व्यापक हैं। अथवा यो समझना चाहिए कि जो ज्ञान सो आत्मा। ज्ञानमात्र आत्मा। जानन जितने क्षेत्रमे हो रहा, कितने परिमाणमे हो रहा, बस वही तो जीव नामसे कहा जाता है। तो जीव द्रव्य और ज्ञान गुण इनमे अन्तर क्या रहा? सम प्रश्न हैं इस कारण जो द्रव्यका लक्षण किया गया है समगुणपर्याय द्रव्यं। वह अन्तिम निष्कर्षसे सिद्ध है। गुणपर्ययवत् द्रव्यं कहकर जो बात समझना है विशुद्धरूपसे वही बात समगुण पर्याय कहकर विशुद्धरूपसे वही बात समगुण पर्यय कहकर बताया है। तो गुण कितने हैं? जितने कि जीव प्रदेश, द्रव्य प्रदेश। तो वे गुण प्रदेशके बराबर हुए। तो ऐसे वे गुण द्रव्यके आश्रय हैं, अर्थात् स्वयं परिपूर्ण सत् नही किन्तु एक अखण्ड द्रव्यका बुद्धिसे विभाग करके अश देखे गए हैं। इस रूपमे गुण है, और गुण गुण ही है। गुणी नही है, अर्थात् अन्य गुण उसमे नहीं बने हुए हैं। गुण तो वहाँ होते हैं जो परिपूर्ण सत् होते हैं अखण्ड एक और गुण किए जाते हैं बुद्धिमे विभाग द्वारा। सो किसी एक सत्मे, बुद्धिमे विभाग द्वारा जो अंश किए हैं वे तो अंशमात्र हैं, अंशी वे न बन जायेंगे। यों गुण द्रव्यके आश्रय हैं और स्वय गुणरहित हैं।

नित्यानित्यविचारस्तेषामिह विद्यते ततः प्रायः।
विप्रतिपत्तौ सत्यां विवदन्ते वादिनो यतो वहवः॥ १०७॥

गुणोंकी नित्यानित्यात्मकताके विषयमें विचारकी आवश्यकता— वह विशेष जो द्रव्यके आश्रय है और स्वयं विशेषरहित है गुण कहलाता है, यह बताया गया, उन गुणोंके सम्बन्धमे प्रायः नित्यता और अनित्यताका विचार चला

करता है। कोई दार्शनिक गुणोको सर्वथा नित्य बतलाते है और कोई दार्शनिक गुणो को सर्वथा अनित्य बतलाते हैं। वास्तविकता क्या है? ये सब बातें आगे कही जायेगी इस गाथामे केवल इस ओर दृष्टि दिलाया है कि गुणोके सम्बन्धमें वे नित्य हैं अथवा अनित्य हैं? यह विचार करना आवश्यक है और विचारवान पुरुषोके विचार उठते ही हैं कि वे नित्य हैं अथवा अनित्य? किसी भी वस्तुको देखकर एकदम कुछ विचार मे आने वाली बात नित्यता और अनित्यताकी होती है। तो ये गुण जो द्रव्यके, स्वभावके, बुद्धिमे अंश करके बताये हैं और स्वभावके शाश्वत् रहते हैं तो गुण भी शाश्वत् हैं, इस कारण इस सम्बन्धमे नित्यताकी ओर ज्यादह ख्याल पहुचता है। और, चूंकि कोई भी शक्ति, कोई भी गुण बिना परिणमनके अपना स्वरूप जाहिर नही कर सकता किसी व्यक्तरूपसे ही शक्तिका परिचय किया जाता है और व्यक्तियाँ अनित्य हुआ करती हैं। जो परिणमन हो, अवस्था हो, व्यक्ति हो वह अनित्य होगी। तो यो कुछ लोग गुणोके सम्बन्धमे अनित्यताका ख्याल बनाते हैं। वास्तविकता क्या है? गुण नित्य है अथवा अनित्य? इस सम्बन्धमें जैन सिद्धान्तका आशय बतलाते हैं।

जैनानामतमेतन्नित्यानित्यात्मक यथा द्रव्यम्।
ज्ञेयास्तथा गुणा अपि नित्यानित्यात्मकास्तदेकत्वात्॥ १०८॥

गुणोंकी नित्यानित्यात्मकताके विषयमे आर्ष सिद्धान्त—चूंकि गुण द्रव्यसे पृथक नही हैं, एक परिपूर्ण द्रव्यका सत्यंश करके गुण बताया गया है। तो द्रव्य गुण पृथक न होनेके कारण नित्य और अनित्यपनेका जो विचार द्रव्यमे किया जा सकता है वही बात गुणमे घटाई जा सकती है। द्रव्य परिणमनशील है इस कारण वह कथचित् अनित्य है और चू कि वह शाश्वत् है, परिणमता हुआ कुछ रहेगा वह कोई सत् तो है। उस दृष्टिसे कथचित् नित्य है। तो जैसे द्रव्य कथंचित् नित्य और कथचित् अनित्य है, इसी प्रकार गुण भी कथंचित् नित्य और कथचित् अनित्य है, क्योकि गुण द्रव्यसे भिन्न नहीं। एक अभेद दृष्टिसे देखनेसे द्रव्य ज्ञात हुआ और भेद दृष्टिसे देखनेपर गुण ज्ञात हुआ। जैसे द्रव्य प्रतिसमय परिणमता रहता है, उसका कोई व्यक्तरूप होता ही है इसी प्रकार गुण भी निरन्तर परिणमता रहता है और उसका भी कोई वशरूप होता ही है। इस तरह जैसे द्रव्य नित्यानित्य है इसी प्रकार गुण भी निरन्तर परिणमता रहता है और उसका भी कोई वशरूप होता ही है। इस तरह जैसे द्रव्य नित्यानित्य है इसी प्रकार गुण भी नित्यानित्यरूप है। व्यक्तिकी दृष्टि से अनित्य है और वह गुण शाश्वत् रहता है। शक्तिरूप हैं। स्वभावमे ही बुद्धिमे विभाग की गई हुई चीज है। इस कारण द्रव्यकी भाँति सदैव रहनेके कारण अनादि अनन्त शाश्वत् रहनेके कारण गुण नित्य है। कभी गुणका विपरीत परिणमन भी हो, विभाव परिणमन भी हो तो भी गुण सदैव रहा करते हैं।

तत्रोदाहरणमिदं तद्भावाऽव्ययादुगुणा नित्याः ।
तदभिज्ञानात्सिद्धं तल्लक्षणमिह यथा तदेवेदम् ॥ १०६ ॥

गुणोकी नित्यात्मकताकी सिद्धि—जो गुणोका भाव है उसका कभी व्यय नही होता, इस कारण गुण नित्य कहलाते हैं । जिस वस्तुमें जो भाव है वह कभी भी नष्ट नही हो सकता । यदि भाव नष्ट हो जाय तो भाववान क्या ? भाववान अनादि अनन्त है तो भाव भी अनादि अनन्त है । जिसके स्वभावका नाश न हो उस हीको तो नित्य कहते है । यह लक्षण गुणोमे पाया जाता है । गुणोका कभी व्यय नही होता । इसलिए गुण नित्य हैं । गुणोके स्वभावका नाश नही होता । इसलिए गुण नित्य हैं । गुणोके स्वभावका नाश नही होता । इसी बातको तत्त्वार्थसूत्रजीमे भी कहा है—तद्भावाव्ययं नित्य । गुणोके भावका, वस्तुके स्वरूपका व्यय नही होता । इसका नाम नित्य है, गुण नित्य है । इस बातकी सिद्धि प्रत्यभिज्ञानसे होती है । जैसे गुणोसे यह वही है, ऐसी लोगोको प्रतीति होती है ना, तो उस प्रतीतिमे गुणोकी नित्यता जाहिर हुई । यह वही ज्ञान है, यह वही रूप है आदिक रूपसे जो प्रत्यभिज्ञान होता है उससे गुणोकी नित्यता सिद्ध होती है । गुण नित्य हुआ करते हैं । इस सम्बन्धमे कुछ दृष्टान्त भी दिये जा रहे हैं ।

ज्ञानं परिणामि यथा घटस्य चाकारतः पटाकृत्वा ।
किं ज्ञानत्व नष्ट न नष्टमथ चेत्कथं न नित्यं स्यात् ॥ ११० ॥

उदाहरणपूर्वक गुणोकी नित्यताका समर्थन—यह तो बताया ही गया है कि द्रव्य परिणमनशील होता है, प्रतिसमय परिणमना रहता है और द्रव्य है गुणोका समुदाय अथवा गुण ही द्रव्य है । तो इसका भाव यह हुआ कि गुण भी परिणमनशील होते हैं । बिना परिणमे जैसे द्रव्य नहीं रहता ऐसे ही यह भी प्रतीत होता है कि बिना परिणमन हुए शक्ति भी नही रहती । गुणका भी निरन्तर परिणमन होता ही रहता है । तो जैसे कोई घटाकार ज्ञान हुआ, घटविषयक ज्ञान हुआ तो ज्ञानका एक घटविषयक परिणमन अर्थात् जिसमे घट जाना जा रहा है उस आकारसे होने वाला ज्ञान परिणमन और इसके पश्चात् फिर हुआ पटका ज्ञान तो पटके आकारसे ज्ञानका होने वाला परिणमन अर्थात् जिसमे पट जाना जा रहा है पटाकार ज्ञेय बन रहा है, ऐसे पटाकाररूप, जाननरूप ज्ञानका परिणमन ये दो परिणमन भिन्न-भिन्न अवस्था वाले हैं ना ? जो घट विषयक जानन हो रहा है अर्थात् ज्ञानका घटाकार परिणमन हो रहा है वह कुछ और है और पटविषयक जो जानन हो रहा है याने पटाकाररूपसे ज्ञानका जो परिणमन हो रहा है वह ज्ञान पर्याय है अन्य प्रकार । तो जब घटाकार ज्ञान होनेके पश्चात् पटाकार जानन हुआ और घटाकार जानन नष्ट हुआ, लेकिन

घटाकार जाननके नष्ट होनेपर क्या ज्ञानपना नष्ट हो गया ? जानन सामान्य ज्ञान शक्ति जो ज्ञान घटाकाररूप जाननसे परिणम रहा था वही ज्ञान तो घटाकार जानन परिणामको छोडकर पटाकार जाननरूप परिणम रहा है। ज्ञानपना तो नष्ट नही हुआ। और जीवमे जाननेकी शक्ति नष्ट नही हुई। तो जब ज्ञानपना नष्ट नही हुआ तो इससे सिद्ध होता है कि ज्ञान नित्य होता है। उस ज्ञान गुणमें केवल इतना ही भेद होता है कि वह पहिले घटको जानता था, अब वह पटको जानने लगा है। जानना दोनो ही अवस्थाओंमे बराबर है, इस कारण ज्ञानका कभी नाश नहीं होता।

ज्ञानकी घटाबढी हो सकनेपर भी ज्ञानके नाशकी असंभवता—ज्ञानकी घटाबढ़ीका प्रसग देखकर कोई ऐसी तर्कणा न करे कि जो जो घटती जाती है वह चीज कही न कहीं बिल्कुल नष्ट हो जाती हो। यद्यपि यह व्याप्ति रागादिक विकारोंमें लगती है कि रागादिक विकार किसीके कितने ही हैं, किसीमे कुछ कम हैं किसीके बहुत ही कम हैं। तो कोई जीव ऐसा होगा कि जहाँ रागादिक विकार जरा भी न हों, पूर्णतया नष्ट हो जायें, किन्तु ऐसी व्याप्ति ज्ञानके सम्बन्धमे नहीं लगायी जा सकती। किसीमें ज्ञान कम है, किसीमे और कम है। तो कोई जीव ऐसा होगा कि जहाँ ज्ञान रहता ही न हो। जैसे मनुष्योंकी अपेक्षा पशुओमे ज्ञान कम है, उनकी अपेक्षा कीड़ोंमें ज्ञान कम है, उनकी अपेक्षा पेडोमे ज्ञान कम है, और निगोदिय लब्धपर्याप्तकमें ज्ञान बहुत ही कम है, तो कोई जीव ऐसे भी होंगे कि जिनके बिल्कुल ज्ञान न हो। यह व्याप्ति ज्ञानके साथ नही लग सकती इसका कारण यह है कि निमित्तके बलिष्ट होने पर चीज बढती है और निमित्तके हीन होनेपर जो चीज घटती है वहाँ तो व्याप्ति बनती है कि कहीं यह चीज बिल्कुल ही नष्ट हो जाय क्योकि निमित्तका बिल्कुल वियोग हो जाय यह बात तो सम्भव है ना ? तो निमित्तके अभावमे नैमित्तिक विकार का भी अभाव हो जायगा लेकिन ज्ञान व्यक्तियोंके साथ तो ऐसा सम्बन्ध देखा जा रहा है कि निमित्त ज्यो बढता है यह यो ज्ञान घटता है और निमित्त ज्यो हटता है त्यों ज्ञान बढता है। तो निमित्तका हटना कही बिल्कुल भी हो सकता है। रहे ही न निमित्त तो ऐसी स्थितिमें ज्ञान उत्कृष्ट सीमामे पहुच जाय, यह बात तो बन जायगी, पर ज्ञान स्वभाव है। उसके निमित्तके कितने ही सन्निधान हो, लेकिन अभाव नहीं हो सकता। विकार सर्वथा दूर हो सकता है, पर स्वभाव नही घटाया जा सकता। तो ज्ञान परिणमन भी कभी दूर न होगा। भले ही ज्ञान परिणमन बदलता रहे। कभी किसी विषयका ज्ञान है कभी किसी विषयका ज्ञान है पर ज्ञान-शक्ति ज्ञानपना यह कभी भी नष्ट नहीं होता। यह तो विभाव परिणमनके प्रसगोकी बात है। जब ज्ञानका स्वभाव परिणमन चल रहा हो तो वहाँ सदृश परिणमन ही तो चल रहा। ठीक वही, जैसा पहिले जाना था वैसा ही अब भी जाना जा रहा है, लेकिन जाननरूप परिणमन प्रतिसमयमे भिन्न-भिन्न है। दूसरे दूसरे हैं। विसदृशता तो नही है मगर सदृश कार्य

होनेपर भी कार्यका होना यह तो सदैव होता रहता है। तो ज्ञानमे परिणमन होते रहे पर उन सब परिणमनोमे ज्ञानपना नष्ट नही होता। तो जब ज्ञान कभी नष्ट नही होता, यह बात भली भाँति सिद्ध है तो वह नित्य क्यो न कहलायेगा ? अवश्य ही नित्य कहलाता है। यह तो चैतन्य पदार्थके गुणका उदाहरण दिया है। अब अचेतन पदार्थके गुणका उदाहरण देखिये !

दृष्टान्तः किल वर्णो गुणो यथा परिणमन् रसालफले।
हरित्पीतस्तत्किं वर्णत्वं नष्टमिति नित्यम् ॥ १११ ॥

गुणोकी नित्यताके समर्थनमे एक दृष्टान्त—पुद्गलमे रूप, रस, गध, स्पर्श ये चार गुण निरन्तर रहते हैं और इन चारो गुणोका परिणमन भी निरन्तर चलता है और वास्तविक पुद्गल है परमाणु मात्र। उसमे भी रूप, रस, गध, स्पर्श गुण है और उन गुणोके प्रतिसमय परिणमन होते रहते हैं, किंतु वे अतिसूक्ष्म हैं इंद्रिय से जाने नही जाते। उसके सम्बन्धमे स्पष्ट उदाहरण न मिलेगा, किंतु युक्तियोसे वह सब परिमाण सिद्ध होगा। जब अनेक अणु मिलकर स्कधरूप हो जाते है तो स्कंध अवस्थामे भी वे पुद्गल ही तो हैं। उस समय उन पुद्गलके रूपादिक गुण व्यक्त हो जाते हैं। तो जितने भी ये सब कुछ दृष्टिगोचर हो रहे है वे सब पुद्गल हैं, स्कध है, अनन्त परमाणुओके पिण्ड हैं। यहाँ रूप आदिक गुण व्यक्त हो रहे है। जैसे कोई एक आमका फल है उस फलमे देखते हैं कि जबसे उसका जन्म होता है तबसे जब तक वह रहता है, तब तक उसमे अनेक रङ्ग बदलते रहते हैं। जब बिलकुल विन्दु बराबर आमफल सर्वप्रथम होता है तो उसका रूप काला होता है। ज्यो ही वह कुछ थोडा बडा होता है त्यो ही उसका रङ्ग बदलकर कालासे नीला हो जाता है। उसके पश्चात् कुछ थोडा और बडा होनेपर रङ्ग हरा हो जाता है। इसके बाद पीला और कभी लाल भी हो जाता है। सडने लगनेकी स्थितिमे भी सफेद जैसा हो जाता है। यो उस आमफलमे ये रङ्ग बदले। उदाहरणके लिए दो अवस्थायें ले लो आमकी कच्ची और पक्की अवस्थायें। कच्ची अवस्थामे तो आम हरे रङ्गका होता और पक्वावस्थामे पीले रङ्गका हो जाता है। तो उसमे रूपकी बदल तो हुई। हरेसे पीला हो गया। पर हरे रङ्गसे पीले रङ्गका होनेपर क्या उसका रूपपना नष्ट हो गया ? रूप तो तब भी था अब भी है और जो ही रूपशक्ति पहिले हरे रूपसे व्यक्त थी वही रूपशक्ति अब पीले रूपसे व्यक्त है। तो रूपशक्ति रूपगुण नष्ट नही होता और जब यह रूपपना नष्ट नहीं होता तो इसका अर्थ यह स्पष्ट है कि रूपगुण नित्य है।

समस्तपदार्थोमे गुणोकी नित्यताका कथन—जीव पदार्थ हो अथवा अजीव पदार्थ हो, उनमे शक्ति नित्य हुआ करती है। जीव पदार्थमे जो कुछ वर्णन किया जाता

है वह क्यों जल्दी ज्ञानमें आता कि हम आप सब जीव हैं। हम आपपर वे परिस्थितियाँ बीत रही हैं। तो थोडा भी अपनी ओर ध्यान दें तो जीवकी बातें गुणपर्यायें ये सब अमूर्त होकर भी ज्ञानमे स्पष्ट आती है। अजीवमें पुद्गल पदार्थके गुण और परिणमन ये स्पष्ट दृष्टिमे आते हैं, क्योंकि ये इन्द्रिय गोचर हैं। इस कारणसे वे सब साव्यवहारिक प्रत्यक्षके विषयभूत होते हैं। अजीवमे शेष द्रव्य धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये ज्ञानमे स्पष्ट नही आ पाते, कारण यह है कि ये मैं नही हू और ये इन्द्रिय गोचर नही हैं। जीव तो मैं था, मैं हू इसलिए जीवकी बात स्पष्ट ज्ञानमे आती। और, पुद्गल हैं इन्द्रिय गोचर अत पुद्गलकी बात भी स्पष्ट ज्ञानमें आती। किन्तु शेष अजीव द्रव्योकी बात ज्ञानमे स्पष्ट नही होती लेकिन युक्तियोंसे प्रमाणसे यह पूर्णतया सिद्ध है कि उन सबमे भी गुण हैं और उन गुणोके निरन्तर परिणमन हुआ करते हैं। तो चाहे जीव पदार्थ हो अथवा अजीव पदार्थ हो, जो है वह स्वभाववान है। उसी स्वभावके विभाग बुद्धिमे करनेपर गुण प्रतीत होते हैं। तो जैसे पदार्थ शाश्वत हैं इसी प्रकार उनमे होने वाले गुण भी शाश्वत हैं। यो गुण नित्य सिद्ध होते हैं।

वस्तुयथा परिणामि तथैव परिणामिनो गुणाश्चापि।
तस्मादुत्पादव्ययद्वयमपि भवति हि गुणानां तु ॥ ११२ ॥

गुणोंकी कथंचित् अनित्यताका वर्णन–गुण हीका नाम द्रव्य है इस कारण जैसे द्रव्य प्रतिक्षण परिणमनशील है उसी प्रकार गुण भी प्रतिक्षण परिणमनशील है। एक पदार्थको भेद दृष्टिसे गुणोके रूपमे देखा गया है। और दृष्टिसे एक वस्तुके रूपमे देखा गया है। चाहे गुण समुदायरूपसे देखा तो वही तत्त्व देखा गया, चाहे एक अभेद वस्तुके रूपमे देखा तो वही तत्त्व देखा गया। अब वस्तु तो प्रतिक्षण परिणमनशील है ही, क्योंकि प्रतिक्षण परिणमन हुए बिना सत्त्व ही नही रह सकता है। सत्त्वका और क्या अर्थ हुआ ? कूटस्थ नित्य सत्त्व नही होता। तो जैसे वस्तु प्रतिसमय परिणमनशील है इसी प्रकार गुण भी परिणमनशील है। तो परिणमनशीलताके कारण जैसे वस्तुका उत्पाद और व्यय होता है अर्थात् नवीन पर्यायके रूपमें आना और पुरानी पर्यायका विलीन हो जाना जैसे ये दो बातें वस्तुमें हैं उसी प्रकार गुणोका भी उत्पाद और व्यय होता है अर्थात् भेद दृष्टिसे निरखी गई वे शक्तियाँ प्रतिसमय नवीन अवस्था मे आती हैं और उनकी पुरानी अवस्था विलीन हो जाती है। यो गुण कथंचित् अनित्य हैं।

ज्ञानं गुणोयथा स्यान्नित्यं सामान्यतयाऽपि यतः।
नष्टोत्पन्नं च तथा घट विहायाऽथ पट परिच्छिन्दत् ॥ ११३ ॥

उदाहरणपूर्वक गुणोकी कथचित् अनित्यताका समर्थन—गुण कथंचित् अनित्य हैं, इस सम्बन्धमे पहिले ही दृष्टान्त दिया जा रहा है। पहिले ज्ञान गुणको नित्य सिद्ध किया था उस ही ज्ञान गुणको अब इस दृष्टिसे अनित्य सिद्ध कर रहे है। यद्यपि सामान्य दृष्टिसे ज्ञान गुण नित्य है तो भी घटको छोडकर पटको जानता हुआ जैसे ज्ञान रहता है याने जिसको जान रहा था उसको छोडकर कुछ नवीन विषयको जानता है तो वहाँ ज्ञान गुण नष्ट और उत्पन्न ही तो हुआ। यह तो छद्मस्थ पुरुषोंके ज्ञानगुणकी परिस्थितिका दृष्टान्त है क्योकि वहाँ समस्त पदार्थोंका एक साथ ज्ञान नही होता। भिन्न-भिन्न विषयोका क्रमश ज्ञान चलता है। तो वहाँ यह बात बडी सुगमतता विदित हो जाती है कि अभी घटका ज्ञान जाना जा रहा था और अब घट को छोडकर पटको जानने लगा ता वहाँ अन्तर आ गया। अब पटाकार ज्ञान बना। पहिले घटाकार ज्ञान था अर्थात् घट विषयक ज्ञान तो नष्ट हो गया और पट विषयक ज्ञान उत्पन्न हुआ तो यो ज्ञानमे अनित्यता सिद्ध होती है अर्थात् पर्यायकी अपेक्षासे ज्ञान अनित्य है किन्तु अपनी सत्ताकी अपेक्षासे वह ज्ञान नित्य है। ज्ञानकी अवस्थायें बदलते जानेपर भी समस्त अवस्थाओमे क्या ज्ञानपना नष्ट हो गया? नही। तो ज्ञानपनेकी दृष्टिसे ज्ञान गुण नित्य है और पर्यायकी दृष्टिसे ज्ञानगुण अनित्य है। मूल सिद्धान्त यह है कि जो कुछ भी है वह उत्पादव्ययध्रौव्यमय है। सत्ताका स्वरूप ही यह है। उत्पाद व्यय न हो तो अस्तित्व क्या? किसीके बारेमे कुछ सोचा ही नही जा सकता, वह अस्तित्व क्या होगा जहाँ पर्याय और व्यक्ति नही है, और नवीन पर्याय हुई उसके नष्ट होनेको मूलत नष्ट मान लिया तो इसके मायने यह है कि अब जो उत्पन्न होगा वह कुछ एकदम नवीन होगा, असत्का उत्पाद होगा। सो जो असत् है, है ही नही, कुछ भी नही, उसका उत्पाद क्या हो सकता है? तो यो गुण पर्याय दृष्टिसे अनित्य होते हैं। अब गुणोकी अनित्यताके सम्बन्धमे अन्य दृष्टान्त देते हैं।

सन्दृष्टी रूपगुणो नित्यश्चाम्रेपि वर्णमात्रतया।
नष्टोत्पन्ने हरितात्परिणममानश्च पीतकत्त्वेन॥ ११४॥

गुणोकी कथचित् अनित्यताका एक दृष्टान्त—जैसे आममे रूप सदा रहता है इस कारण रूप गुण नित्य है, लेकिन जब हरेसे पीत अवस्थामे बदला तो पीत अवस्थाकी दृष्टिसे उत्पन्न हुआ और हरित दशाकी दृष्टिसे नित्य हुआ। और, रूप शक्तिमे, पुद्गलमे वही एक शाश्वत् है। है और बदलता रहता है। ये दो बातें प्रत्येक सत्मे हैं, किन्ही सत्मे बदलनेकी बात दृष्टिगोचर नही होती, लेकिन सत्त्वका नियम यह है कि वह प्रतिसमय अपनी वर्तना करती रहती है। हम आकाश द्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्यके सम्बन्धमे कुछ भी कल्पना नहीं कर सकते कि वह क्या बदलता होगा, लेकिन सत् है वह। अतएव प्रतिसमय अपनी कोई अवस्था बनाता है, अमूर्त

है, अमूर्तकी अवस्थाको हम नहीं जान सकते। लेकिन अमूर्त भी सत् हो, वह भी प्रतिसमय किसी न किसी सदृश अवस्थाको बनाये रहता है। जीव अमूर्त है लेकिन विकारी होनेसे वहाँके परिणामनकी बात सुगमतया विदित होती है। तो परिणमन चलता जाता है। किसका परिणमन है? कोई एक हो परिणमैता तो उसका परिणमन माना जाय। तो अभेद दृष्टिमे एक वस्तु और एक परिणमन। परिणमनकी दृष्टिसे अनित्य है और वस्तुत्वकी दृष्टिसे चूंकि वह शाश्वत है इसलिए अनित्य है। तो अभेद दृष्टिसे देखे गए पदार्थको नित्य अनित्य समझा उसीको भेद दृष्टिसे तिर्यक अश कल्पना करके गुणोके रूपमे देखा तो यही बात यहाँ हुई। वे गुण नवीन नवीन अवस्थामे आये सो तो उत्पाद हुए और नवीन अवस्थाको विलीन किया यह उनका व्यय हुआ। यो यो गुण भी कथचित् नित्य और कथचित् अनित्य हैं।

ननु नित्या हि गुणा अपि भवन्त्नित्यास्तु पर्यया: सर्वे।
तत्कि द्रव्यवदिह किल नित्यात्मका गुणाः प्रोक्ताः॥ ११५॥

गुणोकी अनित्यताके विरोधमें एक आरेका—अब यहाँ शङ्काकार शङ्का करता है कि गुण तो नित्य होत हैं और पर्याय सब अनित्य होती हैं। यह बात तो निश्चय है और द्रव्य है गुणपर्यायरूप इसलिए द्रव्य नित्यानित्यात्मक है। ऐसी व्यवस्था सही जचेगी। द्रव्यके समान गुणोको भी नित्यानित्यात्मकता बताया गया है। शङ्काकारका यह अभिप्राय है कि जैसे एक द्रव्यको निरखा तो उस द्रव्यके समझनेके लिए दो प्रकारका अंश विभाग किया गया। एक तो कालकी दृष्टिसे और दूसरे शक्तिके अशोकी दृष्टिसे। पदार्थ स्वभावमात्र है। स्वभाव उसका कोई एक है जो कि अवक्तव्य है। उस ही स्वभावको समझनेके लिए भेद दृष्टिसे उनकी शक्तियाँ दिखाई हैं। तो शक्ति शाश्वत् है, केवल एक शक्तिरूपसे ही तो देखा। इस दृष्टिमे तो गुण ही नजर आया और वह अंश नित्य है और उन गुणोका जो परिणमन है वह पर्यायें हैं तो उनका नाम पर्याय ही है। पर्याय दृष्टिसे अनित्य है। तो अर्थ यह हुआ कि पर्याय अनित्य होती है, गुण नित्य होते हैं और गुण पर्यायात्मक द्रव्य है। स्थिति तो यह होनी चाहिए लेकिन बताया यो जा रहा कि गुण भी नित्य है और अनित्य है, इस शङ्काका अब समाधान करते हैं।

सत्यं तत्र यतः स्यादिदमेव विवक्षितं यथा द्रव्ये।
न गुणेभ्यः पृथगिह तत्सदिति द्रव्यं च पर्ययाश्चेति॥ ११६॥

द्रव्यवत् विवक्षावश गुणोकी कथचित् अनित्यता बताते हुए उक्त आरेकाका समाधान—यद्यपि उपरोक्त शङ्कामे कुछ सत्य बात भी विदित होती है।

जब भिन्न भिन्न दृष्टिसे गुण और पर्यायोंकी बात देखी गई तब यह कहना ठीक है कि गुण नित्य है और पर्याय अनित्य है। लेकिन जब हम उस एक ही द्रव्यको एक अभेद रूपमे न निरखकर भेदरूपमे उस पदार्थको देख रहे हैं ऐसी दृष्टिमे जो गुण नजर आये वे सब गुण द्रव्यस्थानीय ही समझना चाहिए। ऐसी दृष्टिमे चाहे एक शब्दसे उसे पदार्थ कहलो और चाहे अनेक शब्दोंसे गुण कहलो। यहाँ गुणोंको निरखकर पदार्थों को ही देखा गया है। गुणोकी शक्ति मात्रको नही देखा गया। सुननेकी दृष्टिसे तो वह नित्य कहा जायगा मगर जब उन शक्तियोंको शक्तिरूपसे न देखकर एक पदार्थके निरखनेके लिए ही शक्तियाँ देखी जा रही हैं तो उससमय ये सब शक्तियाँ पदार्थका ही सारूप्य करेंगी अर्थात् जो पदार्थमे बात घटित करना है वही बात इन सब गुणोमे घटित होगी। गुण यद्यपि पदार्थके शक्त्यांश हैं, लेकिन उन शक्त्यांशोको दो दृष्टियोसे देखा जाता है—एक तो केवल शक्तिरूपसे और एक पदार्थरूपसे। तो इस दृष्टिमे निरखे गए गुण सामान्यरूपसे तो नित्य हुए और विशेष दृष्टिसे अनित्य हुए। गुणोसे भिन्न कोई सत् पदार्थ वस्तु नही है। द्रव्य पर्याय और गुण तीनो ही सत्स्वरूप हैं। इस कारण जैसे द्रव्यमे विवक्षावश कथंचित् नित्यता और कथंचित् अनित्यता विदित होती है। पदार्थ परिचय पूर्णतया हो, इसके उपायमे जब अभेद दृष्टिसे परिचय हुआ तो उसका नाम द्रव्य है। और जब पदार्थका पूर्ण परिचय हो, इस ही पद्धतिमे गुणो का परिचय किया तो गुण समुदायका नाम द्रव्य है यह दीखा अथवा गुण समुदाय दीखा ? बात एक ही देखी गई। तब जो बात द्रव्यमे नित्यानित्यात्मकताके लिए है वही बात गुणोमे भी नित्यानित्यात्मकताके लिए है। इस कारण द्रव्यकी भाँति गुण भी कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य हैं। जैसे सामान्य दृष्टिसे द्रव्यको देखनेपर वह अनित्य है और विशेष दृष्टिसे कालकृत विभागसे देखनेपर द्रव्य अनित्य है, इसी प्रकार गुण भी सामान्य रूपमे देखनेपर नित्य हैं और उनकी अवस्थायें देखनेपर वे अनित्य हैं। इसके लिए ज्ञान गुणका दृष्टान्त दिया गया है और पुद्गलमे रूपगुणका दृष्टान्त दिया गया है।

अपि नित्याः प्रतिसमयं विनापि यत्नं हि परिणमन्ति गुणाः।
स च परिणामोऽवस्था तेषामेव न पृथक्त्वसत्ताकः ॥ ११७ ॥

गुणोंकी अवस्थाका गुणोंसे पार्थक्य न होनेसे गुणोकी कथंचित् अनित्यताका निरूपण—शङ्काकारकी उक्त शङ्काके उत्तरमे कह रहे हैं—शङ्काकारकी शङ्का यह थी कि ऐसा माना जाय कि गुण तो नित्य होता है और पर्यायें अनित्य होती हैं, और माना ही गया है। फिर क्या कारण है कि गुणोको भी द्रव्यकी तरह नित्यानित्यात्मक बताया है ? इसके उत्तरमे भी ऊपरकी गाथामे समाधान किया है, अब और भी उस सम्बन्धमे स्पष्टीकरण कर रहे हैं। यद्यपि गुण नित्य हैं तो भी

अनायास बिना किसी प्रयत्नके प्रतिसमय परिणमन करते ही हैं। गुण और द्रव्य ये अलग-अलग वस्तु नहीं हैं। किन्तु एक ही वस्तुको भेद दृष्टिसे निरखकर कहा जाता है तो गुण शब्दसे कहा गया है और अभेद दृष्टिसे निरखकर कहा जाय तो द्रव्य शब्द से कहा जाता है। तो द्रव्यमें भेद दृष्टिसे गुण देखे गए तो भेद दृष्टिसे ही तो निरखना होगा। तो गुणरूपसे भी देखा तो उत्पादव्ययध्रौव्यमयताका शील इन गुणोंमें भी रहेगा। तो यह दिख रहा अब कि गुण अनायास प्रतिसमय निरन्तर परिणमता ही रहता है। किसी पुरुषको यत्न करना नहीं पड़ता। पदार्थ है तो वह परिणमता ही रहता है। ऐसी उन पदार्थोंमे प्रकृति है। तो जब गुण प्रतिसमय परिणमते रहे तो उनका जो परिणमन है, परिणाम है वह गुणोकी अवस्था विशेष ही तो है। वह परिणाम गुणोंसे भिन्न सत्ता वाला नहीं है। याने यों धारणा बनाना कि द्रव्यमें गुण और पर्यायें होती हैं, सो गुण तो नित्य है, पर्यायें अनित्य हैं। यों गुणसे भिन्न पर्याय कुछ जुदी चीज नही है। द्रव्यसे भिन्न गुण और पर्याय कोई जुदी चीज नहीं हैं। वे गुण परिणमनशील हैं और तब उनका जो परिणाम है वह गुणोंसे भिन्न नहीं है, इस कारण गुणोको नित्य और अनित्य कहा गया है।

ननु तदवस्थो हि गुणः किल तदवस्थान्तरं हि परिणामः।
उभयोरन्तर्वर्तित्वादिह पृथगेतदेवमिदमिति चेत् ॥ ११८ ॥

द्रव्य, गुण, पर्यायकी भिन्नताका शंकाकार द्वारा कथन अब शङ्काकार कहता है कि देखिये ! गुण तो सदा एक सा रहता है और पर्याय एक समयसे दूसरे समयमे सर्वथा जुदी रहती हैं। और परिणाम तथा गुणके बीचमें रहने वाला जो द्रव्य है वह कोई भिन्न ही पदार्थ है। तो यो द्रव्य गुणपर्याय ये तीनो भिन्न भिन्न वस्तु हैं। तब वहाँ ऐसा निश्चय बन जाता है कि गुण तो नित्य हैं, पर्याय अनित्य हैं और गुण पर्याय वाला जो द्रव्य है वह नित्यानित्यात्मक है और यों निर्णय बन जानेसे इस प्रसगमे द्रव्यकी भाँति गुण भी जो नित्यानित्यात्मक कहा है वह युक्तिसंगत नहीं बैठता। इस कारण भी प्रश्न ज्योका त्यो अवस्थित रहता है कि क्या कारण है कि द्रव्यकी तरह गुणोको भी नित्यानित्यात्मक बताया जा रहा है। जब उस पदार्थमे गुण-पर दृष्टि देते हैं तो गुण शाश्वत् है, एक सा है। जैसे पुद्गलमे रूप गुण है तो सदैव रूप गुण है और सदा रहने वाला रूपगुण अपने स्वरूपमे एक सा ही है। तब देखो गुण नित्य ठहरा ना ! अब पर्यायें एक समयसे दूसरे समयमे जुदी ही होती हैं। सर्वथा भिन्न भी हैं क्योकि एक पर्यायमे दूसरी पर्यायका व्यतिरेक है, अभाव है। साथ ही दो पर्यायें एक साथ नही रह सकती। एक गुणकी पर्यायोमे परस्पर विरोध है। पूर्वपर्याय को और उत्तर पर्यायका एक साथ रहना बनता नही, इन सब बातोसे विदित होता है कि पर्यायें अनित्य हैं, मगर जिनमे ये रहती हैं पर्यायें और गुण रहते है, दोनोका जो

अन्तर्वर्ती है वह द्रव्य कोई भिन्न ही है। तब वह परिणमन अनित्य ही रहा और गुण नित्य ही रहे। फिर गुणोको द्रव्यकी तरह नित्यानित्यात्मक क्यो कहा गया ? अब इस शङ्काका उत्तर कहते हैं।

तन्न यतः सदवस्थाः सर्वा आम्रेडित यथा वस्तु।
न तथा ताभ्यः पृथमिति किमपि हि सत्ताकमनन्तरं वस्तुः ।११६

पर्याय, गुण और द्रव्यके एक दूसरेसे पार्थक्यके अभावका समाधानमें कथन—उपरोक्त शङ्का ठीक नही है, क्योकि पर्याय कोई अलग तत्त्व नही, वह गुणो की ही अवस्था विशेष है। वस्तु तो द्रव्यगुणपर्यायात्मक हैं। इन तीनोका नाम लें तो वस्तुका बोध होता है। अतएव द्रव्य कहा तो वस्तु ही कहा गया, गुण कहा तो वस्तु ही कहा गया। उन सब अवस्थाओसे जुदा कोई भिन्न सत्त्व रखने वाला न तो गुण है और न कोई द्रव्य पर्याय है। शङ्काकारका अभिप्राय यह था उस शङ्काको दुहरानेमे कि पर्याय गुणोंसे जुदी चीज होती है। पर्यायको गुणसे अभिन्न बताकर गुणको अनित्य रूप भी देना यह सिद्धान्त नही युक्तिमे बैठता है, क्योकि पर्यायका धर्म गुणमे नही गुणका धर्म पर्यायमें नहीं। गुण रहता है शाश्वत, पर्याय होती है क्षणिक। तो ये पर्यायें, यह अवस्था विशेष गुणकी है, ऐसा ही कहना जब ठीक नही है तब गुणोको नित्यानित्यात्मक कहना कैसे ठीक है ? युक्तिपूर्वक विचार करनेपर और निष्पक्ष ढङ्ग से निरखनेपर यह शङ्का निर्मूल हो जाती है, क्योंकि परिणमन यद्यपि है प्रतिसमय भिन्न भिन्न, क्योंकि वह समयभेदकी बात है। जो अवस्था पहिले समयमे है वह अवस्था द्वितीय समयमे न होगी। यो पर्यायें भिन्न भिन्न हैं।

उदाहरणपूर्वक द्रव्य गुण पर्यायके अपार्थक्यकी सिद्धि—एक जीव जिस समय मनुष्य है उस समय देव नहीं, जब देव है तब मनुष्य नही। दो भव एकमे एक साथ नहीं हो सकते, अतएव पर्यायें जुदे-जुदे हैं। लेकिन जिस समय जो भी परिणमन है वह परिणमन गुणोंसे भिन्न नहीं है। तो गुणोकी ही अवस्था विशेष है। जैसे कोई यों कहने लगे कि किसीने अंगुलीको सीधा टेढा गोलमटोल किया तो कहते हैं कि अंगुली तो सदा रहती है और टेढापन सीधापन ये सदा नहीं रहते। ये परस्पर भिन्न भिन्न हैं, क्योंकि जब अगुली सीधी है तब टेढी नहीं, जब टेढी है तब सीधी नहीं। तो अंगुली भिन्न हो गयी और टेढापन, सीधापन ये भिन्न होगए। क्या ऐसा प्रमाणमें आता है ? स्पष्ट सामने नजर आ रहा कि अगुली सीधी हुई तो वह सीधापन अगुली सें भिन्न नहीं है। अंगुली टेढी हो तो टेढापन अगुलीसे भिन्न नहीं है। अगुलीकी ही तो वह अवस्था विशेष है। यो ही जैसे आम्रफलमे हरे रङ्गने पीले रङ्गकी पर्याय बनी तो यद्यपि हरा और पीला परस्पर भिन्न भिन्न हैं लेकिन जिस रूप शक्तिकी हरी

पर्याय बनी थी उस ही रूप शक्तिकी पीली पर्याय है। जब हरा था तब रूपसे भिन्न न था, जब पीला बना तब भी रूप गुणसे भिन्न न था। तो ये अवस्थायें जिस समय जो भी होती हैं उस समय वे उस गुणकी पर्याय हैं और वह परिणाम उस समय गुणों से भिन्न नहीं है। तो जब प्रत्येक समयमें इस तरह दृष्टिमें आया कि पर्याय गुणोंसे भिन्न नहीं है तो ऐसे ही समस्त पर्यायोंकी बात समझना है कि किसी भी द्रव्यकी सारी पर्यायें द्रव्यके गुणोंसे भिन्न नहीं है।

पर्यायको गुणसे सर्वथा पृथक माननेपर 'यह किसकी पर्याय है' यों सम्बन्ध हो सकनेकी असिद्धि का प्रसङ्ग—अब युक्तिपूर्वक भी सोचिये ! कि यदि गुणोंसे सर्वथा भिन्न ही माना जाय पर्यायको तो वहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि यह पर्याय किसका है ? उसका उत्तर ही न बनेगा। सफेद हरा, पीला, नीला आदिक अवस्थायें किसकी हैं ? उत्तर होता है कि रूप गुणकी हैं। क्या हैं रूप गुणकी ? जब रूप गुण भिन्न है और ये हरि पीली आदिक अवस्थायें भिन्न हैं तो भिन्न-भिन्न इन अवस्थाओंका सम्बन्ध ही क्या है ? कैसे कही जाय भिन्न वस्तुको किसी भिन्नका स्व बतानेकी बात ? कुछ उत्तर न बनेगा। और, न व्यवस्था बनेगी। तो मानना यह होगा कि परिणामीके बिना परिणाम हो नहीं सकता। तो यहाँ परिणाम हुई अवस्था और परिणामी हुआ गुण। और, यह परिणाम गुणोंसे भिन्न नहीं है। वैसे तो देख लीजिए कि पर्याय भिन्न वस्तु नहीं है। पर्याय गुणकी ही अवस्था है। अन्तर केवल दृष्टि और अभेद दृष्टिसे निरखनेका होता है। कोई पुरुष गुणका नाम ही न ले, केवल द्रव्य और पर्याय दो बातोंको देखे तो कोई तथ्य अलग न हुआ वह। बात ही दो हैं। है और उत्पाद व्यय चल रहा है। तो जो एक पदार्थ है वह तो द्रव्य है और उसमें जो परिणति चलती है वे सब पर्यायें हैं। दो ही बातें तो समझने योग्य हैं, द्रव्य और पर्याय। द्रव्य शाश्वत है और पर्याय उस द्रव्यमें प्रतिसमय एक-एक होती रहती है। अब इतनेसे कुछ समझ नहीं बनी। तब उसमें भेद दृष्टिसे कुछ वर्णन आयगा। उस स्वभावको जब देखा, जो द्रव्यका स्वरूप है वह भेददृष्टिसे हमें अनेक शक्तियोंके रूपमें नजर आया। जैसे कि वह एक पर्याय भी भेददृष्टिसे हमें अनेक पर्यायोंके रूपसे नजर आती हैं। तो भेद दृष्टिसे निरखनेपर गुण देखे गए और गुणकी परिणतियाँ निरखी गईं। तो अभेद दृष्टिसे जैसे द्रव्यको नित्यानित्यात्मक कहा है यों ही भेद दृष्टिसे निरखनेपर गुण दीखे तो वही बात गुणोंमें भी बनी कि वे भी नित्यानित्यात्मक हैं। परिणतियाँ होती रहती हैं अतएव अनित्य हैं और गुण शक्तिरूप शाश्वत रहा करते हैं इसलिए नित्य हैं।

नियत परिणामित्वादुत्पादव्ययमया य एव गुणाः ।
टङ्कोत्कीर्णन्यायात्त एव नित्या यथा स्वरूपत्वात् ॥ १२० ॥

परिणामित्व होनेसे गुणोंकी उत्पादव्ययध्रौव्यमयताका वर्णन—जिस प्रकार परिणमन होनेसे गुण उत्पादव्ययमय हैं उसी प्रकार टङ्कोत्कीर्ण न्यायसे अपने स्वरूपरूप होनेके कारण नित्य ही है। यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि द्रव्य तो नित्यानित्यात्मक रहा। गुण केवल नित्य ही होंगे। इस शङ्काके समाधानमें बहुत कुछ वर्णन किया गया था कि गुण भेद दृष्टिसे निरखे गए द्रव्य ही हैं। तब द्रव्यमें जो शील है वही शील गुणोंमें भी होगा। तो यह भी परिणमनशील हुआ कि द्रव्य परिणमनशील है। अब परिणमनशील होनेके कारण उत्पादव्ययरूप गुण माना जायगा। तो जहाँ परिणमनशीलताके कारण परिणामीपनाके कारण गुण उत्पादव्यय स्वरूप हैं तो वे ही गुण चूंकि स्वरूपसे कभी च्युत नहीं होते वे स्वय उनमें शाश्वत् रहते हैं इस कारण वे नित्य हैं। तो स्वरूप दृष्टिसे नित्य है और परिणामीपनाकी दृष्टिसे अनित्य है। केवल नित्य ही हो कुछ ऐसा है ही नहीं। अथवा मात्र अनित्य ही हो कुछ यह है ही नहीं। हाँ अनित्यपना जिस दृष्टिसे है उस दृष्टिसे ग्रहण किया गया जो तत्त्व है उसे बुद्धिमें अंश कल्पना करके अनित्य कहा गया है और पदार्थमें जिस दृष्टिसे उसका ध्रौव्य बच रहा है उसमें इतने अंश कल्पना करके उसे नित्य कहा गया है। जो कि अपरिणामी जैसा कि अन्य लोगोंने माना है और उतने अंशमें वह अपरिणामी है और पर्याय दृष्टिसे जो अंश पकड़ा गया उसकी दृष्टिमें परिणामी है किन्तु पदार्थ केवल अपरिणामी हो या मात्र परिणामरूप हो सो बात नहीं है। सत्का स्वरूप ही यह है कि वह परिणामी है। अतएव नित्यानित्यात्मक है। इस सम्बन्धमें कुछ लोग अन्य प्रकारकी धारणा रखते हैं, उनको स्पष्ट करते हुए निराकृत करते हैं।

न हि पुनरेकेषामिह भवति गुणानां निरन्वयो नाशः।
अपरेषामुत्पादो द्रव्यं यत्द्द्वयाधारम् ॥ १२१ ॥

किन्हीं गुणोंके नाशका किन्हीं गुणोंके उत्पादका व नष्टोत्पन्न गुणोंके आधारकी द्रव्यताका निषेध—कुछ लोग मानते है कि किन्हीं गुणोंका तो सर्वथा नाश हो जाता है और दूसरे गुणोंका उत्पाद होता है। यह गुणोंकी चाल-चल रही है और उन उत्पन्न होने वाले और नष्ट होने वाले गुणोंका जो आधार है वह द्रव्य कहलाता है। यह नैयायिक दर्शन है और परिणमन होता है एक दम नवीन। उस परिणमनमें इस दर्शनमें माना गया है कि पहिलेके गुण सब नष्ट हो जाते हैं और एक दम नवीन गुण उत्पन्न होते हैं। यह बात कुछ इस ढंगकी है कि जैसे लोकव्यवहारमें जिसमें गुण कहा करते हैं अब इसमें यह नया गुण आया, अब इसका गुण खतम हो गया। किसीकी कोई आदत निरखकर और किसी पदार्थकी कुछ प्रकृति देखकर उसको गुण कहकर उत्पन्न होना और नष्ट होना कहा करते है। जैसे काठ जल गया तो अब उसमें किसी चीजको रखनेकी बैठालनेकी शक्ति वाला गुण नष्ट हो गया और

राख होनेपर अन्य कामोमे आया इस प्रकारका गुण उत्पन्न हो गया। तो परिणमनको ही गुण सज्ञा देकर ऐसा सिद्धान्त बनता है कि पूर्व गुण नष्ट होते हैं और उत्तर गुण पैदा होते हैं और उनका जो आधार है वह द्रव्य कहलाता है। यह दृष्टान्त भी उनकी इस नीतिमें बना कि चूंकि वह परिणमन गुणोंसे भिन्न तो नहीं है उस समय और परिणमन नये बनते हैं, पुराने नष्ट होते हैं तो वे परिणमन गुण कहलाये और लोकव्यवहारमे इस हीको गुण नामसे प्रसिद्ध भी करते हैं तो उसका आधार लेकर यह सिद्धान्त बना कि गुणोंका सर्वथा नाश होता है और दूसरे गुणोंका उत्पाद होता है और उत्पन्न होने वाले एव नष्ट होने वाले गुणोंका आधार द्रव्य कहलाता है। जैसे कि जब मिट्टीका घडा पकाया जाता है तो पकनेपर हुआ क्या कि कच्चे घड़ेके जो गुण हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं और पक जानेपर दूसरे ही नये गुण पैदा होते हैं। और, उनका आधारभूत जो द्रव्य है वह द्रव्य है ही। इस मन्तव्यके निराकरणमे कहते हैं।

दृष्टान्ताभासोऽयं स्याद्धि विपक्षस्य मृतिकायां हि।
एके नश्यन्ति गुणा जायन्ते पाकजा गुणास्त्वन्ये ॥ १२२ ॥

किन्ही गुणोंके उत्पाद किन्ही गुणोंके विनाशकी सिद्धिमे शङ्काकार का एक दृष्टान्त—नैयायिक दर्शनका जो एक यह उदाहरण है कि जिस समय कच्चा घडा अवामे रख दिया जाता है उस समयमें घडेके पहिलेके सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। पक्का होनेके समय होता क्या है कि कच्चे घडेमें रहने वाले गुण सब खतम हो जाते हैं और पाक होनेसे उसमें दूसरे ही नये गुण पैदा होते हैं और यह नष्ट होना, उत्पन्न होना इस ढङ्गका है कि अग्निमें जब घडेकी पक्वावस्था बनती है तब वह गोल घडा बिल्कुल नष्ट हो जाता है, उसके सारे परमाणु अलग अलग बिखर जाते हैं। यहाँ तक नष्ट होना वैशेषिक दर्शनमें कहा गया है। इस सम्बन्धमे नैयायिक और वैशेषिकका कुछ मिलता जुलता भाव है। तो वैशेषिक सिद्धान्तमें वह विशेष ऐसा बिखर जाता है कि परमाणु परमाणु अलग हो जाते हैं और फिर शीघ्र ही जब वह घडा पकनेपर लाल रङ्गका बनता है तो होता क्या है कि पाकसे उत्पन्न होने वाले परमाणु सारे अनुकूल इकट्ठे हो जाते हैं, फिर उन परमाणुओसे कपाल बनते हैं। यो समझिये कि जैसे घडा फूटनेपर जो छोटे छोटे हिस्से अलग हो जाते हैं तो परमाणु मिलकर आये इस ढङ्गसे कि वे छोटे छोटे टुकडे हुए, वे आकर मिले और मिलकर घडा बने, तो कच्चे घडेके बाद घडेकी पक्वावस्था हो जायगी। इतना परिवर्तन यहाँ माना गया है कि पकनेकी हालतमें दो बातें हुई—कच्चे घडेके सभी गुण नष्ट हो गए और ऐसा होकर नष्ट हो गए कि परमाणु परमाणु बिखरकर अलग हो गए और एकदम उसी समय पाकज परमाणु कपाल रूप रखकर छोटे छोटे हिस्से बनकर एकदम

एक एक होकर फिर वे लाल घड़ारूप बन गए। इस सम्बन्धमे यदि कोई उन दार्श-निकोंसे प्रश्न करे कि इससे तो ऐसा समय नही जाना जाता कि इस समय वे परमाणु इकट्ठे होकर आते हैं, ऐसा भेद तो नजर नही आता। तो उसका उत्तर उनका यह है कि कच्चे घडेके सब परमाणु बिखर गए, उसके बाद एकदम कपालरूप बनकर वे परमाणु एकत्रित होते हैं तो उसमें इतना सूक्षम समय लगता है कि जिस सूक्ष्मताके कारण समय समयका भेद ही नही जाना जा पाता। तो इन दर्शनोमे इस दृष्टान्तमे यह बताया है कि किन्ही गुणोका नाश और किन्ही गुणोकी उत्पत्ति होती है और उन नष्ट होने वाले और उत्पन्न होने वाले गुणोका जो आधार है वह द्रव्य कहलाता है।

किन्हीं गुणोके उत्पादकी व किन्ही गुणोके विनाशकी शङ्का-समाधान

उक्त दर्शन और उक्त दृष्टान्त सर्वथा बाधित है। यह किसी भी बुद्धिमान पुरुषकी बुद्धिमें न आ सकेगा कि जब वह कच्चा घडा अग्निमें तपाया गया तो वहाँ घडेके गुणोका नाश हुआ और वह सारा घडा अग्निमे फूटकर बिखरकर समाप्त हो गया। और शीघ्र ही अपने आप ही फिर कोई लाल परमाणु पाकज परमाणु खपरियाँ बन कर उन खपरियोंका समुदायरूप होकर घड़ा बन गया हो, ऐसा किसीके भी दृष्टान्तमे नहीं आता है। तो यह दृष्टान्त प्रत्यक्ष बाधित है और इस दृष्टान्तको देकर अपना यह मंतव्य बनाना कि गुणोंका सर्वथा नाश होता है और नवीन ही गुणोंकी सर्वथा उत्पत्ति होती है, यह सिद्धान्त मिथ्या है। और, यह तो एक कच्चे घडेके बाद पक्व घडा बननेकी बात है, जिसका कि एकदम परिणमन विभिन्न नजर आता है। लेकिन परिणमन तो प्रत्येक वस्तुमे निरन्तर होता रहता है। किसीका परिणमन अति विभिन्न हो तो समझमें आता है, किसीका बारीकीसे समझमे आता है, और यो मानने से तो सभी जगह प्रत्यक्षसे ही बाधा है। कोई बच्चा शरीरमे बढता है तो जैसे मानो किसी समय दो हाथ प्रमाण बच्चा है और अब वह एक अंगुल और बढ गया तो क्या वहाँ ऐसा ही होना पडेगा कि उस शरीरके सारे परमाणु बिखर गए और फिर खण्ड खण्ड होकर परमाणु आकर फिर एकदम जम गए। अथवा कोई बालक पहिले कोमल शरीर वाला है और जवानी आनेपर उसका शरीर कडा होता है तो कोमल शरीरमे और कडे शरीरमें फर्क है न, तो वहाँ भी ऐसा मानना पड़ेगा कि उस शरीरके सारे परमाणु पहिले बिखर गए और फिर टुकडोंके रूपमे कड़े परमाणु आये और फिर मिलकर वह शरीर बना। यो सभी पदार्थोंमे अव्यवस्था बन जायगी। इससे गुणोका सर्वथा नाश अथवा सर्वथा उत्पाद मानना मिथ्या है।

तत्रोत्तरमिति सम्यक् सत्यां तत्र च तथा विधायां हि।
किं पृथिवीत्वं नष्टं न नष्टमथ चेत्तथा कथं न स्यात्॥१२३॥

शंकाकारके दृष्टान्तकी असंगतता बताते हुए गुणोंकी नित्यताका समर्थं

जिन दार्शनिकोका यह मत है कि किन्ही गुणोका तो सर्वथा नाश होता है और दूसरे ही नये गुणोकी उत्पत्ति होती है और उत्पन्न होने वाले एवं नष्ट होने वाले गुणोका आधार द्रव्य है उनका उत्तर इतनेमें ही हो जाता है कि यदि उनकी अपेक्षा जो कि अग्निमें घडेको रखनेसे क्या घडेकी मिट्टीका विनाश हो जाता है ? सभी कहेगे कि उस मिट्टीका नाश तो नही होता । देखा भी जाता है कि वहीकी वही मिट्टी जो कच्ची थी वह पक गई तो इसमे यह बात कहाँ रही कि कच्चे घडेके गुण और परमाणु वे सबके सब बिखर जाते है और पाकज गुण नयेके नये सारे आया करते हैं । यह बात यहाँ कैसे बनेगी ? तो जब मिट्टीका नाश नही होता तो घडेके गुणोंमें नित्यता कैसे न रही ? नित्य न रहे वे गुण और उन गुणोने अपनी अवस्था बदलकर एक नवीन अवस्था धारण कर ली तो भी यह सिद्ध हो गया कि वे गुण कथंचित् नित्य हैं और कथंचित् अनित्य हैं ।

> ननु केवल प्रदेशाद्रव्यं देशाश्रया विशेषास्तु ।
> गुणसंज्ञका हि तस्माद्भवति गुणेभ्यश्च द्रव्यमन्यत्र ॥ १२४ ॥
>
> तत एव यथा सुघट भङ्गोत्पादध्रुवत्रयं द्रव्ये ।
> न तथा गुणेषु तत्स्यादपि च व्यस्तेषु वा समस्तेषु ॥ १२५ ॥

द्रव्यकी नित्यता व गुणोंकी अनित्यताकी सिद्धिमे शङ्काकारका कथन

शङ्काकार यहाँ कहता है कि जो प्रदेश हैं सो ही तो द्रव्य कहलाते हैं ना और देशके आश्रयसे जो विशेष रहता है वह गुण कहलाता है । तो देखो ! देशमात्र चीज हो, और उसका आश्रय रहने वाला विशेष स्वतन्त्र हो इस कारण गुणोसे द्रव्य भिन्न है । जब गुणोसे द्रव्य भिन्न है तब उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनो द्रव्यमें जिस प्रकार सुघटित होते हैं उस प्रकार गुणोंमें नही होते । उत्पादव्ययध्रौव्य ये धर्म तो रहते हैं द्रव्यमें अब उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक द्रव्यके आधारसे जो विशेष रहे, गुण रहे, उनमे उत्पादव्ययध्रौव्यमयता न रहेगी, क्योंकि देश आधार है, गुण आधेय पदार्थ है । तो जो बात द्रव्यमें है वही बात किसी गुणमें हो जाय अथवा सारे गुणोके समुदायमे हो जाय सो न हो सकेगा । शङ्काकारके आशयसे यहाँ यह बात जाहिरकी गई कि द्रव्यरूप देश तो नित्य है, उसकी अपेक्षासे ध्रौव्य है वह द्रव्य, पर उसके आधारमे जो गुण रहते हैं वे बिखरते हैं, विलीन होते हैं नये आते हैं, इस कारण गुणरूप विशेषमे उत्पाद और व्यय होते हैं । यहाँ दो बातें जाननी चाहिए शङ्काकारकी ओरसे कि द्रव्य है, नित्य है और द्रव्यमे रहने वाले गुण अनित्य हैं, क्योकि वे बदल बदल करते रहते हैं और नवीन नवीन उत्पादमे आया करते हैं । अब उस शङ्काके उत्तरमे कहते है ।

यतः क्षणिकत्वापत्तेरिह लक्षणाद्गुणानां हि।
तदभिज्ञानविरोधात्क्षणिकत्वं बाध्यतेऽध्यक्षात् ॥ १२६ ॥

गुणोंकी क्षणिकताकी सिद्धिमे बाधा बताते हुए उक्त शंकाका समाधान उपर्युक्त शङ्का ठीक नहीं है, क्योंकि द्रव्यको भिन्न, गुणको भिन्न मानकर सिद्धान्त बनानेसे गुणोमे क्षणिकता आ जायगी, किन्तु गुणोमें क्षणिकता प्रत्यक्ष बाधित है। प्रत्यभिज्ञानसे प्रत्यक्षमे यह सिद्ध होता है कि जो गुण कल था वह ही आज है। प्रत्यभिज्ञानसे यह जाना जाता है यह वही है जो पहिले था। तो यों प्रत्यभिज्ञानके बलसे गुणोमे नित्यताकी ही प्रतीति होती है, इस कारण ऐसा भेद न किया जा सकेगा कि प्रदेशरूप द्रव्य तो अलग है और उसके आधारमें रहने वाले गुण अलग है, किन्तु गुण ही द्रव्य हैं गुण आधेयरूपमे रहते हुए जो द्रव्य एक पदार्थ है जिसमे गुण आ जाते हो ऐसी बात नहीं। वस्तु एक अखण्ड है और वह किस प्रकार है यह भी बताया जा सकता, किन्तु भेद दृष्टिसे जब विभाग करते हैं, कथन करते हैं तो वहाँ यह प्रकट होता है कि द्रव्यमे गुण रहते हैं। गुण कुछ अलग नहीं है। पर समझनेके क्षेत्रमे आधार आधेय गुण गुणी आदिक भेद करके समझाया जाता है। तब जैसे द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्य धर्म है इसी प्रकार द्रव्यको ही समझनेके लिए किया गया अंशरूप गुण भी नित्यानित्यात्मक है। यहाँ यह ऐसा स्वतन्त्र पदार्थ न मानना कि आधारभूत द्रव्य तो कोई पृथक वस्तु है और आधेयभूत गुण कोई पृथक वस्तु है।

अपि चैवमेकसमये स्यादेकः कश्चिदेव तत्र गुणः।
तन्नाशादन्यतरः स्यादिति युगपन्न सन्त्यनेकगुणाः ॥ १२७ ॥

गुणोका उत्पादव्यय मानने वालोंके प्रति दोषापत्तिका वर्णन— गुणोका उत्पादव्ययरूप विशेष माननेसे अर्थात् गुणोको ध्रुव तो न माना जाय किन्तु जो नया उत्पन्न हुआ, जिसे पर्याय कहते हैं अवस्था, उसे ही गुण मात्र जानकर गुणको उत्पादव्यय मानें तो इसमें यह दोष है कि द्रव्यमें एक समयमे कोई एक गुण ठहरेगा। जब गुण उत्पादव्यय रूप है तो कोई सा भी गुण रहा, कार्य एक द्रव्यमे, वह नष्ट हो तब कोई दूसरा गुण आ सके। एक साथ द्रव्यमे अनेक गुण न रह सकेंगे और ऐसी बात मान ली जाय तो द्रव्यका परिचय न बन सकेगा। द्रव्यका परिचय तो उन अनेक गुणोको उन शक्त्यांशोको समझनेसे प्राप्त होता है। अब गुणमे तो माना नहीं, उसे मान लिया पर्यायकी तरह जिससे कि एक गुण एक कालमे एक द्रव्यमे रह सकेगा अनेक गुण न ठहर सकेंगे। तब द्रव्यकी सम्पन्नता कैसे विज्ञात हो सकेगी। इससे गुणोको तो उत्पन्न और विलीन माना जाय और द्रव्यको ध्रुव माना जाय, इस तरह की व्यवस्था बनाना विवेकपूर्ण नहीं है। न ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञात होता है न युक्तिसे सिद्ध

होता है। देखिये ! इस मतव्यमें किस तरह प्रत्यक्षसे बाधा आती है कि द्रव्यमें एक समयमें एक गुण रहे और उसका उत्पाद हुआ था, वह नष्ट हो जाय तो दूसरा गुण आयगा, ऐसी मान्यतामें प्रत्यक्षसे बाधा आती है, सो भी बात दिखलाते हैं।

तदसद्यतः प्रमाणदृष्टान्तादपि च बाधितः पक्षः।
स यथा सहकारफले युगपद्वर्णादिविद्यमानत्वात् ॥ १२८ ॥

सर्व गुणोंकी एक साथ सत्ता होनेसे शंकाकारके कथनकी बाधितता—शङ्काकारकी यह शङ्का थी कि इस तरह मान लीजिये कि जो प्रदेश हैं वे ही द्रव्य कहलाते हैं और वे नित्य हैं और उनमें जो गुणरूप विशेष हैं वे अनित्य हैं तो गुणोंका उत्पादव्यय मान लिया जाता है। इस ही शङ्काके उत्तरमें कहा जा रहा है कि ऐसा माननेसे पहिली बात तो यह है कि गुण क्षणिक बन जायेंगे, और गुण क्षणिक हैं यह बात प्रत्यक्षसे बाधित है और प्रत्यभिज्ञानसे बाधित है। दूसरा दोष इसमें यह आता है कि प्रदेश मान लिया अलग है उसके सहारे मान लिया गुण तो प्रदेशरूप द्रव्यमें गुण एक ही रह पायगा, क्योंकि गुणोंका उत्पादव्यय माना है। तो जब एक गुण विलीन हो जाय तब दूसरा गुण उत्पन्न हो सकेगा, क्योंकि उत्पाद व्यय करने वाले पदार्थ एक साथ अनेक नहीं हो पाते, वे क्रमसे ही होते हैं। तो यों द्रव्यमें एक साथ अनेक गुण न रहेंगे। इसपर यदि कोई यह विचार ले कि द्रव्य एक समयमें एक ही गुण रहता है तो रहा आये। सो ऐसा विचार चल नही सकता, क्योंकि इसमें प्रमाणसे और दृष्टान्तों से बाधा आती है। देखिये ! जैसे आमका फल है, उसमें एक ही साथ तो पाये जा रहे हैं रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक गुण। वहाँ यह बात तो नहीं है कि आममें इस रूप गुण है तो रस, गंध, स्पर्श नहीं हैं। जब रूप विलीन हो जाय नष्ट हो जाय तो रस आदिकमे से फिर किसी एकका नम्बर आये ऐसी बात वहाँ नहीं है। एक ही साथ सब गुण हैं। हाँ उन गुणोंका उत्पाद क्रमसे होता है इसलिए जितने गुण हैं उतनी ही पर्यायें प्रतिसमय द्रव्यमे रहती हैं हाँ एक गुणकी अनेक पर्यायें एक साथ नहीं रह सकती, तो द्रव्यमें एक ही गुण माना जाय इसमें प्रत्यक्षसे बाधा आती है, इस कारण गुणकी मान्यता ठीक नही है। अनेक गुण ही द्रव्य कहलाते हैं, इसके विरुद्ध कुछ भी कल्पना करनेमें निर्दोषता नही आ सकती।

अथ चेदिति दोषभयान्नित्याः परिणामिनस्त इति पक्षः।
तत्किं स्यान्न गुणानामुत्पादादित्रयं समन्यायात् ॥ १२९ ॥

द्रव्यकी भांति गुणोंमें भी उत्पादादित्रय होनेका फलितार्थ—उक्त कथन से कुछ स्पष्ट होनेके बाद जब यह जिज्ञासु इस निर्णयपर आता है कि गुण नित्य और

परिणामी होते हैं। इसके विरुद्ध अर्थात् गुणोको उत्पन्न और विलीन होना माननेपर दोष बताये गये थे, उन दोषोके भयसे यदि यह मान लेते है कि जिज्ञासुके गुण नित्य और परिणामी होते हैं। नित्यका अर्थ है जो सदाकाल रहे और परिणामीका अर्थ है कि जिसके परिणमन हुआ करे। तो यो गुणोको नित्य और परिणामी माननेपर यही बात तो सिद्ध होगी कि गुणोमे उत्पादव्ययध्रौव्य एक साथ रहा करते हैं। गुणोमें परिणामता है अर्थात् जिसके परिणमन हुआ करते है ऐसा एक तत्त्व है। तो उससे सिद्ध हो गया कि गुण नित्य होते है और चूंकि गुण परिणामी हैं उसके परिणाम होते रहते हैं। तो उन परिणामोकी ओरसे देखा जाय तो यह सिद्ध हुआ कि गुणोमे उत्पाद व्यय होता है। तब यही बात तो निष्कर्षमें आई कि द्रव्य क्या है ? गुणोका ही समुदाय। गुण ही एक नामसे बोले जानेपर द्रव्य सज्ञासे बोले जाते हैं। जैसे वृक्ष क्या ? तो शाखा, पत्ते, फूल, फल इन सबका जो समुदाय है वही एक नामसे वृक्ष कहा जाता है। वहाँ ऐसा नहीं है कि वृक्ष अलग चीज हो और उसके आधारमे शाखा, पत्ते, फल फूल रहा करते हैं। जो शाखा आदिक हैं वे ही सब एक बराबर वृक्ष कहलाते हैं। यो ही जो ये अनन्त गुण विदित होते हैं ये ही सब एक बराबर द्रव्य कहलाते हैं। तो जैसे द्रव्यमे उत्पादव्ययध्रौव्य है इसी प्रकार गुणोमे भी उत्पादव्ययध्रौव्य है।

अपि पूर्वं च यदुक्तं द्रव्यं किल केवलं प्रदेशाः स्युः।
तत्र प्रदेशवत्त्वं शक्तिविशेषश्च कोपि सोपि गुणः॥ १३०॥

प्रदेशवत्त्व शक्ति होनेके कारण केवल प्रदेशोको द्रव्य माननेकी मान्यताका खण्डन—इस प्रसङ्गमे जिस शङ्काका समाधान चल रहा था उस शङ्का मे यह बात मूलमे दिखाई गई थी कि केवल प्रदेश ही द्रव्य कहलाता है और उस द्रव्य मे उस प्रदेशमें जो विशेष है वह गुण कहलाता है और उस द्रव्यमे उस प्रदेशमे जो विशेष है वह गुण कहलाता है। तो इसमे शङ्काकारकी मूल मान्यता यह थी कि प्रदेश ही द्रव्य कहलाता है सो उस सम्बन्धमे भी एक निर्णय यह सुनो कि जिन प्रदेशों का लक्ष्य करके यह एक स्वतत्र द्रव्य समझ रहा है वह प्रदेश भी प्रदेशवत्व नामक शक्ति विशेष ही है। प्रदेशवत्व भी एक गुण है। द्रव्यमे ६ साधारण गुण होते हैं— अस्तित्व, वस्तुत्व द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व प्रदेशत्व और प्रमेयत्व। इन गुणोके द्वारा पदार्थमें क्रमश यह बात सिद्ध हुई कि पदार्थ है। पदार्थ अपने स्वरूपसे है, पररूपसे नहीं है। पदार्थ प्रतिक्षण परिणमनशील है, पदार्थ अपने स्वरूपमे ही परिणमता है, पररूपसे नहीं परिणमता। ये चारों बातें सिद्ध होनेपर भी कुछ बुद्धि व्यवस्थित न हो पायगी। जब तक यह बात ज्ञानमे न आयेगी कि प्रदेशवान पदार्थ होता है। इन बातोके समझनेके लिए आधार आधेय तो कुछ होना चाहिए। तो प्रदेशवत्व गुणकी वजहसे पदार्थका आधार ज्ञानमे होता है और वहाँ ही ये सब अस्तित्व वस्तुत्व आदिक

के प्रभाव दीख जाते हैं। तो वह प्रदेशत्व भी एक गुण है और प्रदेश कुछ अलग नही हैं। वस्तुका जो सर्वस्व है स्वरूप वह स्वरूप रह रहा है। उस ही रहनको देशको प्रदेश कहते हैं। तो पदार्थमे प्रदेशवत्व नामक शक्ति विशेष है, वह भी कोई गुण कहलाता है। निष्कर्ष यह निकला कि द्रव्यमे जो पर्याय कही गई है आकार आदि रूपसे वह प्रदेशवत्व गुणका विकार है। इसीको व्यजन पर्याय कहते हैं और इस सम्बन्धमे इस रूपसे पद्धति बताई गई है प्रमुखतया कि प्रदेशवत्व गुणके विकारको व्यजन पर्याय कहते हैं और अन्य समस्त गुणोंके परिणमनको गुण पर्याय कहते हैं। तो इससे भी यह बात समझना चाहिए कि प्रदेश अलगसे द्रव्य हो और उसके आश्रय से उसमे विशेष गुण रहा करते हो, यह बात नहीं है। किंतु गुण समुदाय ही द्रव्य है, इसी बातको अब उपसंहार रूपसे कहते हैं।

तस्माद् गुणसमुदायो द्रव्यं स्यात्पूर्वसूरिभिः प्रोक्तम् ।
अयमर्थः खलु देशो विभज्यमाना गुणा एव ॥ १३१ ॥

गुणसमुदायको द्रव्य माननेके तथ्यका दिग्दर्शन—इस कारण जो पूर्व आचार्योंने कहा है वह ठीक है कि गुण समुदायको द्रव्य कहते हैं। गुण समुदाय द्रव्य हैं ऐसा कथन होनेपर यदि उस द्रव्यका विभाग किया जा रहा है चित्तमें अश बनाये जा रहे हैं तो जो भी एक एक अश हैं वे सब गुण कहलायेंगे। याने गुणोंको छोडकर द्रव्य कोई भिन्न पदार्थ नही है। जो है वह एक अखण्ड है। उस अखण्ड पदार्थ को समझनेके लिए यदि अशोकी कल्पना की जाती है तो वे ही अंश गुण कहलाते हैं और यों सारे अशोकी कल्पना करलें और वहाँ गुण विदित होते हैं तो उन सब गुणो को छोडकर अशोंको छोडकर अलगसे कोई द्रव्य शेष नहीं रहता है। मूल बात यह है कि जो द्रव्य है वह परमार्थ सत् अखण्ड एक है और उस द्रव्यमें स्वभावका भेद करके जो अंश कल्पना की जाती है वे सब गुण कहलाते हैं। यो गुणोका समुदाय द्रव्य है। इस बातको यदि इस ढगसे कहा जाय कि एक अखण्ड परमार्थ सत् पदार्थ होता है और उसको समझानेके लिए जो अश कल्पित होते हैं वे एक अश गुण-कहलाते हैं। अब इस ही बातको सुगमतया समझानेके लिए इस उल्टी पद्धतिसे भी कहा जाता है कि गुण समुदायका नाम द्रव्य है। तो सीधी पद्धतिमें तो यह कहा जाता है कि परमार्थ अखण्ड सत् होता है। उसको समझानेके लिए अश कल्पित होते हैं। वे एक एक अश गुण कहलाते हैं और इस ही बातको अब प्रतिलोम परम्परासे यह कहा जायगा, कि गुणोंके समुदायका नाम द्रव्य है, तो आचार्यदेवने जो द्रव्यका लक्षण गुण समुदाय बताया है वह बिल्कुल युक्तिसंगत है।

ननु चैवं सति नियमादिह पर्याया भवन्ति यावन्तः ।
सर्वे गुणपर्याया नान्या न द्रव्यपर्ययाः केचित् ॥ १३२ ॥

गुण समुदायको द्रव्य माननेपर समस्त गुणपर्यायोकी द्रव्य पर्यायिताके प्रसङ्गकी आरेका—अब यहाँ शङ्काकार शङ्का कर रहे हैं कि यदि गुण समुदायका ही नाम द्रव्य है तब तो द्रव्यमे जितनी पर्याये होगी अथवा हुई या होती है उन सबको गुण पर्याय नामसे कहा जाना चाहिए। फिर द्रव्य पर्याय कुछ भी नही रहती। जब सर्व गुणोंका ही नाम द्रव्य है, द्रव्य गुणसे अतिरिक्त कुछ है ही नही तो गुणोका अथवा द्रव्य ा जो परिणमन है सो ही तो है परिणमन। ये जितने भी परिणमन होते वे सब गुणपर्याय ही कहे जाना चाहिए, क्योंकि गुणोंसे भिन्न कुछ भी द्रव्य नहीं। तो द्रव्य पर्याय नामका कौन सा परिणमन होगा ? तो गुणसमुदाय ही द्रव्य है इस लक्षण के माननेपर यह दोष आता है कि फिर द्रव्य पर्याय कोई न ठहरी। जो परिणमन होंगे वे सब गुण पर्याय ही कहे जायेगे। द्रव्य पर्याय कुछ भी न रह सकेगा। अब इसके उत्तरमे कहते हैं—

तन्न यतोऽस्ति विशेषः सति च गुणानां गुणत्वत्त्वेवपि।
चिदचिद्यथा तथा स्यात् क्रियावती शक्तिरथ च भाववती ॥१२३॥

गुणोमें क्रियावती व भाववती शक्तिका भेद होनेसे सर्व गुण पर्यायोके द्रव्य पर्यायिरूपत्वके प्रसङ्गकी आरेकाका समाधान—गुण समुदायका नाम द्रव्य कहा है सो ठीक है फिर भी गुणोमे भी जो विशेषता है उस विशेषताके कारण द्रव्य पर्याय और गुण पर्याय ऐसे दो प्रयोग घटित हो जाते हैं। यद्यपि सभी गुण गुणत्व धर्म की अपेक्षासे गुण कहलाते हैं तो भी जैसे उन गुणोमे ये विभाग हैं कि कोई चेतन गुण होते हैं कोई अचेतन गुण होते हैं, तो प्रकृत बातको समझानेके लिए यह उदाहरण रूप में कहा जा रहा है कि जैसे गुणत्व धर्मकी अपेक्षासे सभी गुण कहलाते हैं फिर भी उन सब गुणोमे यह विशेषता है कि कोई चेतन गुण है कोई अचेतन गुण है। इसी प्रकार गुणत्वकी अपेक्षासे सभी गुण कहलाते हैं फिर भी उनमे यह विशेषता पडी हुई है कि कोई क्रियावती शक्ति संज्ञा वाले गुण हैं और कोई भाववती संज्ञावाले गुण हैं। अब उनमे क्रियावती शक्तिसे सम्बंधित परिणमन द्रव्य पर्याय कहलायेगा और भविष्यवती शक्तिसे सम्बंधित परिणमन गुणपर्याय कहलायेगा।

तत्र क्रिया प्रदेशो देशपरिस्पंद लक्षणो वा स्यात्।
भावः शक्ति विशेषस्तत्परिणामोऽथ वा निरंशांशैः ॥ १३४ ॥

क्रियावती शक्ति व भाववती शक्तिका स्वरूप पदार्थमे जितनी शक्तियाँ होती हैं उन शक्तियोके दो विभाग किए गए हैं—एक तो प्रदेशरूप जिसको क्रियावती शक्ति कहते हैं, जिसका लक्षण प्रदेशका परिस्पद होना है और दूसरा विशेषरूप।

उसका परिणमन निरश अश द्वारा होता है। तब शक्तियोमे दो विभाग कर दिए गए एक क्रियावती शक्ति और दूसरा-भाववती शक्ति। तो क्रियावती शक्तिका सम्बन्ध है प्रदेशसे और भाववती शक्तियोका सम्बन्ध है अपने अपने स्वरूपसे। यद्यपि प्रदेश गुणो का ही समुदाय है, पर वह समुदाय एक अखण्ड द्रव्य है और वह द्रव्य कितने विस्तार में फैला हुआ है, ऐसी दृष्टि करके उसमें भेद कल्पना होती है। उन प्रदेशोमें जो परिस्पंद होता है वह क्रियावती शक्तिका रूप है। क्रियावती शक्ति होनेसे उसके परिणमनमे द्रव्य पर्याय हुई और भाववती शक्तिके परिणमनमे गुण पर्याय होती है। प्रदेशत्व गुणको क्रियावती शक्ति ही कह लो तो कोई अत्युक्ति नही है। फिर बाकी के अनन्त गुणोंको भाववती शक्ति कह लो और यह भी देखा जाता है कि वहाँ परिणमन दो प्रकारसे हैं—एक तो ज्ञानादिक गुणोंका सबका अपना अपना परिणमन और दूसरा सम्पूर्ण द्रव्यका परिणमन। यद्यपि प्रदेश और गुण पृथक नहीं हैं, किन्तु इनके स्वरूपपर दृष्टि देनेसे दो बातें ज्ञात होती हैं। जैसे ज्ञान गुणका परिणमन है जानना। चारित्र गुणका परिणमन है रमना। तो ये परिणमन सब अपनी अपनी शक्तियोके रूप तो जब प्रथक प्रथक गुणोपर दृष्टि पहुची तो वहाँ सब भावरूप परिणमन दृष्टिमे आये, पर यह भी तो देखा जा रहा कि कोई द्रव्य किसी जगहसे किसी जगह पहुच गया या हला चला तो इस हलन चलनसे या उन प्रदेश परिस्पंद या क्रिया को किस गुणका परिणमन कहोगे ? तो जब सम्पूर्ण द्रव्यके परिणमनकी ओर दृष्टि पहुंचती है तो वहाँ क्रिया भी नजर आती है। अब ज्ञानादिक गुणोकी परिणति क्रिया रहित है, केवल उन गुणोंके अशोंमें ततंमता होती रहती है। ज्ञानादिक गुणोंके परिणमनमे शक्त्याशोंकी हीनाधिकता चलती है। परन्तु द्रव्यका जो परिणमन होता है उसमे उसके सम्पूर्ण प्रदेशोमे परिवर्तन चलता है। यह परिवर्तन क्रिया सहित है। तो इन सबको संक्षेपमे यों समझ लो कि द्रव्यका परिवर्तन प्रदेशवत्व गुणके कारण न हुआ। इसलिए प्रदेशवत्व गुणको क्रियावती शक्ति कहते हैं और शेषके सम्पूर्ण गुण निष्क्रिय हैं, इस कारण उनके भाववती शक्ति कही जाती है। तो भाववती शक्तिके परिणमनमें द्रव्य पर्याय बने। तो शङ्काकारका जो यह कहना था कि यदि गुण समुदाय ही द्रव्य है तो द्रव्यमे जितनी भी पर्यायें होगी उन सबको गुण पर्याय ही कहो, द्रव्य पर्याय मत कहो। उसका यह उत्तर इन दो प्रकारकी शक्तियोंके ज्ञानसे हो जाता है।

यतरे प्रदेशभागास्ततरे द्रव्यस्य पर्याय नाम्ना।
यतरे च विशेषांशास्ततरे गुणपर्यया भवन्त्येव ॥ १३५ ॥

क्रियावती शक्ति व भाववती शक्तिके आधारपर द्रव्यपर्याय व गुण पर्यायका विभाजन—इस समाधानका साराश यह है कि जितने भी प्रदेशाश हैं वे

तो कहलाते हैं द्रव्य पर्यायें और जितने गुणाश है वे कहे जाते हैं गुण पर्याय। द्रव्य पर्यायमें होता क्या है कि द्रव्यके समस्त प्रदेशोमें आकाशन्तर होता है। सो यह परिणमन प्रदेशवत्व गुणके निमित्तसे हुआ। इसीको व्यंजन पर्याय भी कहते हैं। और, प्रदेशवत्व गुणोंके सिवाय शेष समस्त गुणोमें जो परिणमन होना है वह तर्तमरूपसे होता हैं। जैसे—ज्ञानका परिणमन जानना है तो किसीके जाननेमे कुछ अविभाग प्रतिच्छेद व्यक्त है और वे अधिक जानने वाले हैं और उसमे ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद और अधिक व्यक्त हैं तो शेष गुणोके परिणमन तर्तमतासे ज्ञात होते हैं। ऐसे परिणमनोको गुण पर्याय कहते हैं। तब यहाँ तक यह सिद्ध हुआ कि द्रव्य क्या है? गुण समुदायका नाम है और वह गुण समुदाय कही तो है। जितने विस्तारमे है उसको कहते है प्रदेश और प्रदेशवानको कहते हैं द्रव्य! द्रव्य प्रदेश गुण कुछ पृथक नही हैं, पर उनके समझनेकी यही रीति है। तो जो बात द्रव्यमे है वही बात गुणोमे भी होती है। यह प्रकरण चल रहा था उसी प्रसङ्गमे यहा तक यह बात कही गई है। अब उसीको उपसहाररूपसे कहते हैं।

तत एव युदुक्तचर व्युच्छेदादित्रयं गुणानां हि।
अनवद्यमिद सर्वं पूत्यचादि प्रमाणसिद्धत्वात् ॥ १३६ ॥

गुणोंकी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकताके कथनका उपसहार—गुण समुदाय ही जब द्रव्य है और यह बात भली भाँति प्रमाणसिद्ध कर दी गई तो पहिले जो कहा गया था कि गुणोमे उत्पादव्ययध्रौव्य होता है, सब परिणमनोसे सिद्ध होनेके कारण निर्दोष है। भेद दृष्टिमे किसी सत्का वर्णन गुणके रूपमे आता है, भेद दृष्टिमे किसी सत्का वर्णन द्रव्यरूपमे आता है, पर सत्मे जो बात होती है वह तो होगी ही। सत्का स्वरूप है उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्—जो उत्पादव्ययध्रौव्यसे युक्त हो सो सत्। तो ऐसी स्थितिमे अभेद दृष्टिसे देखो तो ये तीनो बातें मिलेंगी, उस भेद दृष्टिसे देखो तो तीनो बाते मिलेंगी। भेद दृष्टिसे देखने पर गुण विदित हुए तो वे भी उत्पादव्यय ध्रौव्य वाले सिद्ध हुए। अभेद दृष्टिसे देखनेपर द्रव्य नजर आया तो वह भी उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त रहा। विषय यहा यह समझना है कि जो कुछ है वह उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है। अब उस है को भेददृष्टिसे देखें तो द्रव्यरूपमे उसे उत्पादव्ययध्रौव्य भी नजर आयेंगे और भेद दृष्टिसे उस सत्को देखें तो सब गुणोमे उत्पादव्ययध्रौव्य समझमे आयगा। उन्ही गुणोमे जो ध्रौव्य अंश है, शाश्वतपना है उसकी प्रमुखतामे गुण नित्य प्रतीत होते हैं, पर कोई भी गुण परिणमन बिना नही रहता। और, वह परिणमन गुणोसे कोई भिन्न नही है। इस कारण वे गुण अनित्य भी विदित होते हैं। तो द्रव्यो की भांति गुणोमे भी नित्यानित्यात्मकता बराबर बनी हुई है। ऐसा होनेका कारण यह है कि जब विभज्यमान होता है द्रव्य तब वह गुण कहलाना है और जब विभज्य-

मान नही होता, अखण्ड एक रूपसे विदित किया जा रहा है तब वह द्रव्य कहलाता है। वैसे तो द्रव्य और पर्यायये दो बातें माने बिना काम न चलेगा। अब गुण तो भेद दृष्टिसे देखे गए द्रव्यका ही नाम है और पर्याय तो होती ही है। अभेद दृष्टिसे देखा तो वह द्रव्य पर्याय होता है। भेददृष्टिसे देखा तो वहाँ गुण पर्याय हुए। यो प्रत्येक पदार्थ तृतीयात्मक है और इसी कारण उसके समस्त गुण उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त होते हैं। इसमे किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं है।

अथ चैतल्लक्षणमिह वाच्यं वाक्यान्तर प्रवेशेन।
आत्मा यथा चिदात्मा ज्ञानात्मा वा स एवचैकार्थः॥ १३७॥

वाक्यान्तरसे गुणोके स्वरूपके कथनका संकल्प—अब गुणोका लक्षण दूसरी पद्धतिसे कहते हैं। वह पद्धति क्या होगी? उसको स्पष्ट करनेके लिए एक उदाहरण भी दे रहे हैं कि जैसे आत्मा, जिदात्मा, ज्ञानात्मा ये सब एक ही अर्थको प्रकट करते हैं इसी प्रकार वाक्यंतर दूसरी पद्धतिसे गुणोंका लक्षण इस प्रकार किया जायगा कि जो गुण रूप अर्थके वाचक शब्द हैं उन शब्दोको कहा जायगा और उन एकार्थ वाचक शब्दोके लक्ष्य अर्थपर गुणोका लक्षण स्पष्ट होगा। तो गुणोका दूसरी पद्धतिसे क्या लक्षण है? वह आगे कह रहे हैं।

तद्वाक्यान्तरमेतद्यथा गुणाः सहभुवोपि चान्वीयनः।
अर्था वैकार्थत्वादर्थादेकार्थवाचकाः सर्वे॥ १३८॥

वाक्यान्तरसे गुणोके स्वरूपके निरूपणका संकल्प—गुण सहभावी और अन्वयी इन सबका एक ही अर्थ है अर्थात् तीनो ही शब्द एक गुणरूप अर्थके वाचक हैं। वस्तुत किसी भी पदार्थका अथवा तत्त्वका सही अर्थ बताने वाला कोई शब्द नहीं होता, क्योकि शब्द जितने होते हैं वे विशेषताका ही सपन करते हैं। अर्थात् विशेषता की ही प्रसिद्धि करते हैं। चेतन अचेतन समस्त पदार्थोंमें जो ऐसी संज्ञा दी हुई है उस संज्ञाको कोई एक विशेषता जाहिर होती है लेकिन ज्ञान द्वारा समस्त पदार्थ जान लिए जा सकते हैं। उस जाने हुए पदार्थको पदार्थकी किसी विशेषताके नामसे कहा जाय तो जानने वाला पुरुष उसको पूर्णतया जान लेता है। जैसे ऊपरकी गाथामे उदाहरण दिया गया कि इसमे चिदानन्दात्मक और ज्ञानात्मक ये एक ही अर्थको प्रकट करते हैं, पर जिस अर्थको कहा इन शब्दोने उस पदार्थका पूरा वर्णन इन शब्दोसे नहीं हो सका है। आत्माका अर्थ है जो निरन्तर जानता रहे। अतति सतत गच्छति जानाति इति आत्मा। जो निरन्तर जानता रहे उसे आत्मा कहते हैं। जैसे कि आदित्य मायने सूर्य, आदित्यका अर्थ है—जो निरन्तर चलता रहे। तो आत्माके इस अर्थमे केवल

ज्ञान गुणकी विशेषता ही तो बताई गई। किंतु आत्मा केवल एक गुणमात्र तो नही है। जहाँ अध्यात्म ग्रन्थोंमें यह उपदेश किया गया है कि आत्मा ज्ञानमात्र ही है, वहाँ प्रयोजन है अंतस्तत्त्वमे मग्न होनेका। यदि कोई पुरुष आत्माके स्वरूपमे मग्न होना चाहता है तो वह आत्माको ज्ञानमात्र निरखकर अनुभव करके सफल हो पायगा। दूसरी बात यह है कि जो असाधारण गुण है, प्रमुख गुण है, उसके साथ सभी गुणोका सम्बन्ध है। गुणोमे एक विभुत्व गुण होता है, जिस गुणका यह कार्य है कि गुणोका होना अथवा एक गुणमे दूसरा गुण समा जाना। यह विभुत्व गुण इस ढङ्गसे है जैसे आत्मामें ज्ञान गुण है और अस्तित्व गुण है तो अस्तित्व गुणसे ज्ञान रह सका और ज्ञान गुण होनेसे अस्तित्व भी रह गया। नही तो अस्तित्व किसका ? तो गुणोंमे परस्पर सहयोगिता रहती है। तो उस सहयोगितामे प्रमुख गुणकी बात कहनेपर भी केवल यह तो नही कह दिया जाता कि पदार्थमें सिर्फ यही गुण है। शब्द जितने होगे वे किसी एक गुणको ही प्रकट करने वाले होगे। तो परमार्थ पदार्थके यथार्थ स्वरूप को कहनेके लिए कोई भी शब्द समर्थ नही है। विशेषतायें ही बताना है। तो उन शब्दोकी जो विशेषतायें है उन विशेषताओंसे वाच्य अर्थका स्पष्टीकरण होता रहता है। तो इसी प्रकार गुणोके जो पर्यायवाची शब्द कह रहे हैं इन शब्दोका जो अर्थ होगा उन अर्थोंसे गुणोका अर्थ प्रकट होगा।

गुणोके वाचक शब्दोमे गुणका निष्पत्यर्थ—अब गुणोके वाचक इन तीन शब्दोमेसे गुणका तो प्रसङ्ग ही है, उसका तो ब्योरा ही दिया जा रहा है। उसका लक्षण क्या कहना ? सहभावी और अन्वयी जो दो शब्द बचे हैं उनका क्रमसे लक्षण कहा जायगा। यदि गुणोंका ही लक्षण करते हैं तो गुणोकी भी निष्पत्तिका अर्थ देखिये गुण्यते भिद्यते द्रव्यं येन स गुण.। जिसके द्वारा द्रव्य भेदा जाय मायने जिन जिन अशोके द्वारा द्रव्यका भेद किया गया, अंश अंशमे द्रव्यकी परख की गई उन्हे गुण कहते हैं। इस गुणके अर्थसे यह सही बोध होता कि द्रव्य अखण्ड है। उस अखण्ड पदार्थको जाननेके लिए भेद दृष्टिसे जो बात कही गई है उसका नाम गुण है। तो इसमे भी यह अर्थ ध्वनित होता है कि गुणोंके कथन द्वारा द्रव्यको ही अश अश रूपसे समझाया गया है। तो जो विशेषता द्रव्यमे है और स्वभाव प्रकृति द्रव्यमें है वहीं स्वभाव प्रकृति गुणोमे होगी। तो जैसे गुण द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त है इसी प्रकार गुण भी हैं। यह गुण शब्दकी निष्पत्ति अर्थसे सिद्ध हो जाती है।

साह सार्धं च समं वा तत्र भवन्तीति सहभुवः प्रोक्ता।
अयमर्थो युगपत्ते सन्ति न पर्यायवत्क्रमात्मानः॥ १३९॥

गुणवाचक सहभावी शब्दका निष्पत्यर्थ—सहभावी शब्दमे दो शब्द पडे

हुए हैं— सह और भावी। सह साधं और सम ये तीनों ही शब्द सहके द्योतक अर्थात् सहका अर्थ है साथ और भावीका अर्थ है होना, तो जो साथ साथ होवें उनको सह-भावी कहते हैं। इसमें यह बात बताई गई है कि पदार्थमें जितने भी गुण बताये गए वे सब गुण साथ साथ होते हैं, कहीं पर्यायकी तरह क्रमसे नहीं होते। तो पर्याय चूंकि परिणमन है जिसमे उत्पादव्यय होता रहता है, तो जिसमें उत्पादव्यय होता है वह उत्पादव्यय वाला तत्त्व एक साथ न हो सकेगा। अर्थात् जिस अवस्थाका उत्पाद है बस वही वर्तमान है। उसके बाद उसके विलीन होते ही जो नवीन उत्पाद हो बस वह वर्तमान है। यों पर्यायें क्रमसे हुआ करती हैं, किन्तु गुण सदैव शाश्वत रहते हैं। तो गुणोंके वाचक इस शब्दसे यह ध्वनित हुआ कि जिन भेदरूप अंशोंके द्वारा द्रव्यका परिचय कराया गया था वे समस्त अंश शाश्वत् हैं। अतएव एक साथ रहते हैं, पर्याय की तरह क्रमसे होने वाले नहीं हैं। तो सहकारी शब्दसे गुणोंकी यह विशेषता जानी गई कि वह शाश्वत् है और सभीके सभी पदार्थमे एक साथ रहते हैं। अब सहभावी शब्दके अर्थके सम्बन्धमे शङ्काकार की शङ्का और उसका समाधान दिया जारहा है।

ननु सह समं मिलित्वा द्रव्येण च सहभुवो भवन्त्विति चेत् ।
तन्न यतो हि गुणेभ्यो द्रव्यं पृथगिति यथा निषिद्धत्वात् ।१४०।

गुणवाचक सहभावी शब्दके अर्थके विषयमे शङ्का और समाधान— शङ्काकार कहता है कि सहभावी शब्दका जो अर्थ ऊपर बताया गया है वह अर्थ ठीक नहीं, किंतु यह अर्थ करना चाहिए कि जो द्रव्यके साथ मिलकर रहते हैं उन्हें सह-भावी कहते हैं। सहभावी शब्दका अर्थ तो यह किया गया था कि जो एक साथ रहते हैं वे सहभावी हैं। लेकिन अर्थ होना चाहिए यह कि जो द्रव्यके साथ रहता है वह सहभावी है। यद्यपि मोटे रूपसे इन दोनो अर्थोंमे कोई अन्तर जाहिर नहीं होता, सीधे एकसे विदित होते हैं। जो एक साथ रहे सो सहभावी, जो द्रव्यके साथ रहे वह सहभावी, एकदम कोई अन्तरकी बात विदित नही हो पाती लेकिन इसमे अन्तर बहुत अधिक है और इतना बडा अन्तर है कि जिससे लक्ष्य ही खतम हो जाता है। आधार भी सब मिट जाता है। तो वह क्या अन्तर है? उस अन्तरको बताते हुए समाधान कर रहे हैं। शङ्काकार द्वारा जो सहभावी शब्दका यह अर्थ किया कि जो द्रव्यमें एकसाथ रहे सो सहभावी है। और, वह है गुण। गुण द्रव्यके साथ साथ रहते हैं अथवा द्रव्यके साथ मिलकर रहते हैं। इस अर्थके करनेमे यह दोष है कि यह जाहिर होता है इस अर्थमे अथवा यह मतव्य बनेगा कि गुणोंसे भिन्न कोई द्रव्य पदार्थ है और फिर ये सब गुण द्रव्यके साथ मिलकर रहते हैं और ऐसा मान लेनेपर तो सिद्धान्त ही खतम हो जाता है। पहिले ही बता दिया गया है कि द्रव्य गुण ये भिन्न भिन्न तो नही हैं। तो इस कारण सहभावी शब्दका यह अर्थ किया जाना अनुचित है कि द्रव्य

के साथ साथ जो रहे उन्हे सहभावी कहते हैं और वे गुण होते हैं।

गुणोंकी सहभाविताके सिद्धान्तका तथ्य—सिद्धान्त यह है कि द्रव्य अनन्त गुणोका अखण्ड पिण्ड है अथवा द्रव्य कोई एक अवक्तव्य पदार्थ है, जो ज्ञानमे आजाता है पर शब्दोमे नहीं आता। अनेक बातें ऐसी होती हैं कि ज्ञानमे तो सब आ गया, पर शब्दमे या गिनतीमे या अन्य प्रकारोमे नही आता। जैसे रेतीली नदीके किनारे खड़े होकर देखनेपर सारी रेत दीख तो जाती है मगर क्या वह रेत गिनतीमें आ सकता है ? या उसको अलग अलग रूपमें भी निरख सकते है ? दीख रही है सारी रेत, पर उसका विवरण कर सकने वाला शब्द नही है, जो कि ज्ञानके एक परिणमनमें जान लिया गया है। तो इस पद्धतिमे द्रव्य एक अखण्ड अवक्तव्य पदार्थ है, उसे वक्तव्य करनेके लिये अंश विभाग करके गुण बनाये गए हैं। यो जो अंश हैं वे सब द्रव्य ही तो हैं, द्रव्य तो न रहे और जब द्रव्य हैं तब वे गुण भी हैं। तो साथ साथ रह रहे हैं गुण तो यह तो ठीक है, पर द्रव्यमे साथ मिलकर रहा कहते हैं गुण, यह विश्लेषण ठीक नही है, उसे इस प्रकार समझें कि द्रव्य अनन्त गुणोंका अखण्ड पिण्ड है, उन गुणोंमे प्रतिक्षण परिरमण होता रहता है। तो अनादिसे लेकर अनन्त तक जितने भी परिणमन होते हैं उन सबमे वह गुणपना सदा साथ रहता है। कितनी ही पर्यायें हो जायें सब पर्यायोमे वही गुण है। और, जितने भी गुण हैं पदार्थमें उनका परस्पर वियोग भी नहीं होता। तो पर्यायमे यह बात नही। वह व्यतिरेकी है और एक साथ नहीं रहती। तो सहभावी शब्दका यह अर्थ हुआ कि जो एक साथ रहें उन्हें गुण कहते हैं, सहभावी कहते हैं। तो इस अर्थका यह निष्कर्ष निकला कि वे अंश जिसके द्वारा पदार्थको जाना गया वे सब शाश्वत हैं और सदैव एक साथ रहते हैं।

ननु चैवमतिव्याप्तिः पर्यायेष्वपि गुणानुषंगत्वात् ।
पर्यायः पृथगिति चेत्सर्वं सर्वस्वदुर्निवारत्वात् ॥ १४१ ॥

सहभावी शब्दके सैद्धान्तिक अर्थमें अतिव्याप्ति दोषके प्रसङ्गकी शङ्का और उसका समाधान—गुणका विशेष परिचय पानेके लिये कुछ एकार्थवाची शब्द बताये गये हैं। गुण सहभावी और अन्वयी हैं उनमेसे यहाँ सहभावी शब्दके अर्थपर विचार चल रहा है। सहभावीका अर्थ होता है कि जो साथ साथ रहे, द्रव्यके साथ साथ मिलकर रहे, यह भी अर्थ नहीं, किंतु सभी गुण परस्परमें विरोध न रखकर एक आधारमें साथ साथ रहे उनका नाम सहभावी है। इस अर्थको सुनकर एक शङ्का की जा रही है कि सहभावीका यह लक्षण तो अतिव्याप्ति दोषसे दूषित है, क्योंकि यह लक्षण पर्यायमे आ जाता है। पर्यायें भी तो साथ साथ रहती हैं। जैसे एक जीवमें श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र, आनन्द आदिक अनेक परिणमन एक साथ

रहते हैं। जो साथ साथ रहे उनका नाम गुण है। ऐसा कहनेमें वे पर्यायें भी गुण कह लायेंगी। तो अतिव्याप्ति दोष हो जायगा। अतिव्याप्ति दोष कहते हैं उसे, कि जो लक्षण लक्ष्यमें जावे, लक्ष्यमें भी पहुंचा दे और सहभावीका लक्षण है जो साथ साथ हों और लक्ष्य हो गुण तो सहभावीका यह स्वरूप लक्ष्य गुणमें भी आ जाता है और अलक्ष्य पर्यायोंमें भी जहाँ जब अलक्ष्यमें लक्ष्यकी पहिचानसे अतिव्याप्ति दोष होगा। ग्रन्थकारने इस शङ्काका समाधान करते हैं कि पर्यायोंमें गुणोंके लक्ष्य नहीं जाते, क्योंकि पर्यायें साथ साथ नहीं रहतीं, वे तो भिन्न भिन्न ही रहती हैं। जब अनेक पर्यायें एक समयमें देख रहे हैं तो एक ही परिणमनको भेद दृष्टिसे निरखकर देख रहे हैं। जैसे एक द्रव्यको भेद दृष्टिसे निरखनेपर गुण विदित होते हैं। इसी प्रकार द्रव्यका प्रतिसमय एक एक परिणमन होता है। उस एक परिणमनको भेददृष्टिसे निरखनेपर गुण विदित होते हैं वे अनन्त परिणमन, किंतु जो समय भेदसे होने वाले परिणमन हैं, कालक्रमसे जो पर्यायें चला करती हैं उन पर्यायोंमें परस्पर भेद है। उनमेंसे किसी एक पर्यायके रहनेपर अन्य समस्त पर्याय नहीं रहती। तो यों पर्यायें सहभावी नहीं हैं और इस तरह अगर लक्षणको दूषित ठहराया जाय तो फिर हर एक दूषण हर एकमें लगाया जा सकता है। पर्यायोंका भी अनित्य माननेसे जब अवस्थामें भेद न रहा तो सभी पर्यायें सभी पदार्थ सब रूप हो जायेंगे, फिर उनमें अवस्था भेद नहीं हो सकता। तो यों सहभावीका स्वरूप गुणोंमें ही, वहाँ वे सब सदा साथ रहते हैं, उनमें कालक्रम व्यतिरेक नहीं पाया जाता। तो गुणोंका विशेष परिचय पानेके लिए सहभावी शब्दसे बताया गया है, उससे यह प्रकाश मिलता है कि द्रव्यकी ये सब शक्तियाँ साथ साथ रहा करती हैं। अब अन्वय शब्दके अर्थसे गुण की विशेषताको बताते हैं।

अनुरित्यच्युच्छिन्नप्रवाहरूपेण वर्तते यद्वा।
अयतीत्ययगत्यर्थाद्धतोरन्वर्थतोऽन्वयं द्रव्यम् ॥१४२॥

गुणवाचक अन्वर्य शब्दका अर्थ—अन्वय शब्दमें दो शब्द हैं—अनु और अय। अनुका अर्थ है बिना किसी रुकावटके प्रवाहरूपसे, जो चलता रहे उसका नाम है अन्वय। अन्वयमें अनु तो है उपसर्ग और अयधातु है, अयधातु गत्यार्थक होती है। अय मायने चलने वाला तो जो अनु अर्थात् अनुसार सर्व समयोंमें चला जाय उसे अन्वय कहते हैं। ऐसे गुण हैं जो कि जो अनादिसे अनन्त काल तक सदा रहा ही करते हैं। जितनी पर्यायें होती हैं उन सब पर्यायोंमें जो रहा करते हैं सो गुण हैं, अन्वयी हैं। जैसे एक आमके फलमें पहिले हरा रंग था, अब पीला रंग हुआ, वहाँ बीचमें समयका अन्तर नहीं है कि पहिले हरा था अब बीचमें कुछ न रहा, अब पीला हो गया। वहाँ रूप शक्ति निरन्तर है और उसका परिणमन हरे पीले आदिक अन्तर रहित होकर क्रमसे चलता रहता है। तो जैसे उन रंगोंमें रूप शक्ति निरन्तर रहती है। ऐसा ही

रंग हो कोई सा भी रंग बदले, कोई सा भी नवीन रंग आये लेकिन उनकी जो स्रोतभूत शक्ति है, रूप गुण है उसका कभी विच्छेद नहीं होता, इस कारण अन्वयका अर्थ गुणोंमें विल्कुल घटित हो जाता है कि जो समस्त पर्यायोमे चला करे उसे अन्वय कहते हैं अन्वयी शब्दसे गुणोंकी यह विशेषता जाहिर हुई कि ये त्रिकालवर्ती होते हैं, समस्त पर्यायोंमे यह गुण रहता है। तो गुण शब्दके तीन शब्दोंसे तीन विशेषतायें ज्ञात हुईं। प्रथम तो गुणके मायने यह है कि जो भेदा जाय, गुण्यते भिद्यते द्रव्यम् अनेन अर्थात् एक अखण्ड द्रव्यमे जो भेद किया गया है, उस भेदसे जो अश विदित होता है वह गुण कहलाता है। इससे तो यह प्रकाश मिला कि वस्तु तो एक अखण्ड द्रव्य है। उसे भेद दृष्टिसे निरखनेपर जो नाना शक्तियाँ विदित हुई वे गुण हैं। सहभावी शब्दसे यह प्रकाश मिला कि ऐसे ये अंश सदा साथ साथ रहते हैं, उनमें विरोध नही है। एक गुण है तो अन्य गुण न रह सके और अन्वयी शब्दसे यह प्रकाश मिला कि वे सब गुणपर्यायोमें चलते रहते हैं याने सदा रहा करते हैं। उनका विच्छेद नही होता। यो गुण का वर्णन करके और विशेष वर्णन करनेके लिए भूमिकामें कुछ द्रव्य शब्दकी व्याख्या करते हैं।

सत्ता सत्त्वं सद्वा सामान्यं द्रव्यमन्वयो वस्तु ।
अर्थो विधिरविशेषादेकार्थवाचका अमी शब्दाः ॥ १४३ ॥

सत्ता, सत्त्व, सत् शब्दोंकी द्रव्यवाचकता—सत्ता, सत्त्व, सत् सामान्य, द्रव्य, अन्वय, वस्तु, अर्थ, विधि ये सभी शब्द एक अर्थके वाचक हैं। जिसकी द्रव्य शब्द से प्रसिद्धि कर रखी है याने किसी भी पदार्थके वाचक ये सब शब्द हैं। इनमें प्रथम कहा—सत्ता और सत्त्व। ये करीब करीब एकसे ही शब्द हैं। भाववाचकता प्रत्यय और त्व प्रत्यय लेकर सत्ता और सत्त्व बनता है। इनमें यदि कोई सूक्ष्म अन्तर निरखा जाय तो प्रयोग विधिके अनुसार सत्ता शब्दके कहते ही यह ध्वनित होता है कि वह उत्पादव्ययध्रौव्य एक लक्षण वाली है अर्थात् सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षण वाली है। और, सत्त्व शब्द कहकर यही बात इन शब्दोंमें प्रसिद्ध होता है कि यह उत्पादव्ययध्रौव्यसे युक्त है। ऐसा इसमे भाव पडा है। तो भाववाचक शब्द होनेसे दोनोका अर्थ एक समान है। अब तीसरा शब्द दिया है सत्। सत् तो विशेष्य है। जो मौजूद हो उसे सत् कहते हैं और सत्त्व उसका भाववाचक शब्द था। याने सत्पना तो सत्पना और सत ये दोनों प्रथक नही हैं। तो कभी भाववाचक शब्दसे भी वर्णन किया जा सकता है और कभी सीधा पदार्थ शब्दसे या द्रव्यवाचक शब्दसे वर्णन किया जा सकता है। सत्ताका अर्थ है—जो निरन्तर रहती है, सत् है, सत् था, सत् रहेगा, ऐसा जो कुछ सत् है उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य हमेशा सत् रहता है इस कारण उसे सत् कहना युक्तिसंगत ही है। जो सत् होता है वह उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप होता है। जो भी सत् है

उसमे यह कला है ही कि वह निरन्तर नवीन-नवीन पर्यायोंरूपसे परिणत होता रहे। प्रत्येक सत्‌की यह कला है। चाहे यह बात किसी पदार्थमें विदित हो पाये अथवा न हो पाये किन्तु सत् कहते ही उसे हैं जिसमे निरन्तर नवीन-नवीन परिणति विकसित होती रहे।

सामान्य और द्रव्य शब्दकी एकार्थ वाचकता—द्रव्य वाचक शब्दोमे चौथा शब्द दिया है सामान्य। यह द्रव्य सामान्यरूप है। गुण और पर्याय शब्दोंसे जो वाच्य होता है वह विशेषरूप है। द्रव्यके तिर्यक विशेष हैं गुण और द्रव्यकी ऊर्द्ध विशेष हैं पर्यायें और, ऊर्द्ध विशेष तिर्यक विशेष सबमे रहने वाला या ये सब जिसमे नजर आयें एक सामान्य जो तत्त्व है उसे कहते हैं सामान्य। तो द्रव्यका नाम सामान्य भी है। सामान्य शब्दसे द्रव्यकी महिमा, द्रव्यका परिचय इस रूपमें मिलता है कि ये सर्व गुण पर्यायात्मक सदा रहने वाले हैं। गुणमे भी यह है, पर्यायमे भी यह है और वास्तवमें द्रव्य क्या है ? जब इसकी व्याख्यामें आगे बढते हैं तो यह सामान्यरूप विदित होता है। क्योंकि हर तरहसे इसमें शाश्वतपना दृष्टिगोचर होता है। और, सर्व अवस्थाओं मे इसका सत्त्व जाना गया है। इसको द्रव्य शब्दसे भी कहते हैं। द्रव्यका अर्थ है जिसमें पर्यायें पा रहा है, जो पर्यायें पाता रहेगा उसे द्रव्य कहते हैं। तो यह बात प्रत्येक पदार्थमें है। कोई भी पदार्थ पर्याय बिना नही रहता। पहिले पर्यायें थी, अब पर्यायें हैं और भविष्यमें सदा पर्यायें होती रहेंगी। इस कारण इसे द्रव्य कहते हैं।

अन्वय और वस्तु शब्दकी द्रव्यवाचकता—द्रव्यवाचक शब्दोंमें छठवाँ शब्द दिया है अन्वय। अन्वयका अर्थ है कि जिसका सर्व समयोमे सम्बन्ध हो। सर्व समयोंमें जो रहे, अनन्त पर्यायोंमें जिसका वर्तमान हो, सत्त्व हो उसको अन्वय कहते हैं। इस अन्वय शब्दसे यह प्रकाश मिला कि पदार्थ वहीका वही समस्त परिणमनोंमें रहता है। ७ वाँ शब्द है वस्तु। वस्तुका अर्थ है जिसमे सर्व गुणपर्यायें बसें। इसमें एक आधार समझा गया। अभिन्न होकर भी उत्पादव्यय किसमे हो रहे हैं ? गुण किसमें बस रहे हैं। बस उस आधारको वस्तु शब्दसे बताया गया है। अथवा वस्तु शब्दका यह भी अर्थ है कि जो अपने स्वरूपसे हो और परस्वरूपसे न हो। इससे यह स्वतन्त्रता और परिपूर्णता बतायी गई है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभावसे है और पररूपसे नहीं है। अथवा वस्तुका अर्थ कीजिए जिसमें अर्थक्रिया हो उसे वस्तु कहते हैं। इससे यह प्रकाश मिला कि प्रत्येक पदार्थमें निरन्तर परिणमन होता रहता है। परिणमनशील वे समस्त पदार्थ हैं।

अर्थ और विधि शब्दकी द्रव्य वाचकता—८ वाँ शब्द दिया है—अर्थ। पदार्थको अर्थ भी कहते हैं। अर्थका अर्थ है—अर्यते, निश्चीयते इति अर्थः अर्थात् जो निश्चित किया जाय, निर्णय किया जाये उसको अर्थ कहते हैं। तो जाननेमें क्या

आया करता है ? जो आया करे वही अर्थ है। वैसे लोग स्थूलरूपसे यह कह देते हैं कि मैंने हरा रंग देखा, अथवा हमने गुण जान लिया। जाननेमें क्या आया करता ? हरा रंग या पर्याय नही, गुण नहीं, किन्तु वे पदार्थ ही जाननेमे आया करते हैं। तो हमने हरा रंग जाना, इसका अर्थ वास्तविक यह हुआ कि हरे रंगकी पर्यायमें परिणत इस द्रव्यको जाना। पर इतने रूपसे, इतना घुमाकर कोई न भी कहे तो भी वास्तविकता यही है कि जाना जाता है पदार्थ। गुण और पर्याय नही जाना जाता, किन्तु पदार्थ ही भेद दृष्टिसे गुणरूपमे जाना जा रहा है। पदार्थ ही पर्यायरूपसे जाना जा रहा है पर निश्चयमे आया करता है पदार्थ। इस कारणसे उसे अर्थ कहते हैं। ९ वाँ शब्द दिया है विधि। जो विधिरूप हो, सद्भावरूप हो, उसको विधि कहते है। पदार्थ जो भी होते हैं वे सब विधिरूप होते हैं। मीमांसक सिद्धान्तने अभावको भी पदार्थ माना परन्तु अभाव अपदार्थ नही हो सकता। पदार्थ विधिरूप हो सकेगा। अभाव तो किसी अन्यके भावरूप हुआ करता है। तो यो अर्थ शब्दसे भी पदार्थ जाना जाता है। यो द्रव्यके पर्यायवाचक इन शब्दोसे द्रव्यकी विशेषतायें जानी गई हैं और उन विशेषताओंसे उस शाश्वत त्रैकालिक पदार्थका परिचय कराया गया है।

अयमन्वयोस्ति येषामन्वयिनस्ते भवन्ति गुणवाच्याः।
अयमर्थो वस्तुत्वात् स्वतः सपक्षा न पर्ययापेक्षाः॥ १४४॥

गुणोकी अन्वयिता - गुण अन्वयी कहलाते हैं इसका अर्थ है कि समस्त परिणमनोमे जो चले, रहे, ऐसा अन्वय जहाँ पाया जाय वह अन्वयी कहलाता है। इसका भाव यह है कि वास्तवमे गुण अपने ही अन्वय पूर्वक रहता हैं याने पर्यायोकी अपेक्षा नही रहती। द्रव्य अनन्त गुणोका समुदाय होता है और उन सभी गुणोंमें निरन्तर प्रतिसमय नई-नई परिणतियाँ होती हैं। उन समस्त परिणतियोमे गुण बराबर साथ रहते हैं। याने प्रत्येक गुणका अपनी समस्त अवस्थाओंमे अन्वय पाया जाता है। इसीको कोई लोग संतति शब्दसे कहते हैं, कोई अनुवृत्ति शब्दसे कहते हैं। तो यो द्रव्यमे अर्थात् अनन्त गुणोंके समुदायरूप अखण्ड पदार्थमे ये सभी अनन्त गुण अपने त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायोमें पाये जाते हैं इस कारण गुणको अन्वयी कहते हैं। ऊपर जो द्रव्यके पर्यायवाचक शब्द कहे हैं वे सब गुणमे भी घटित होते हैं। जैसे द्रव्य एक अन्वयरूप है इसी प्रकार गुणमें भी अन्वय पाया जाता है। गुण अन्वयी हैं इसी हेतु वे सदा अपने स्वरूपमें बने रहते हैं। कोई उनका व्यतिरेक नहीं है। वे सपक्ष हैं। इसका अर्थ यह है कि व्यतिरेकी नहीं है, किन्तु सदैव अन्वयी हैं। अन्वयी उन्हें कहते हैं कि जहाँ ऐसी बुद्धि बने कि यह वही है और जहाँ ऐसी बुद्धि न बने उसे व्यतिरेकी कहते हैं। तो ये गुण सदाकाल रहते हैं। हैं ये गुण अनन्त इस कारण एक गुणका दूसरे गुणमें स्वरूप नहीं है। इस दृष्टिसे ये परस्पर व्यतिरेकी हैं। जिस आत्मामें ज्ञान

दर्शन चारित्र आदिक अनेक गुण हैं तो उन गुणोमें किसी भी गुणमें अन्य गुणका स्वरूप नहीं है। यों व्यतिरेकी कहलाते हैं गुण। परन्तु एक गुण अपनी समस्त परिणतियोमे रहते हैं और वे इस बुद्धिको पैदा करते हैं कि यह वही है इस कारण उसे अन्वयी कहा है। पर्यायोंमे तो यह बुद्धि नहीं जगती। यह वही है। जैसे कोई जीव मनुष्य था और अब देवपर्यायमें आया तो जीवकी अपेक्षा तो अन्वय बनता है कि यह वही जीव है जो मनुष्य भवमें था पर मनुष्य पर्याय यह देवपर्यायमें यह वही है, यह बुद्धि नहीं जगती। गुणोमे भी जैसे चारित्र गुणकी अनेक परिणतियां है, कषाय होना अकषाय रहना, तो उन समस्त परिणतियोंमें चारित्र गुण वही है, वही विकाररूप परिणमा था, अब स्वभावरूप परिणम रहा है। जो आज स्वभावरूप परिणम रहा है वह चारित्रगुण वही है जो जीवमें अनादिसे था। यों यह वही है ऐसा जिसमें बताया जाय उसे अन्वयी कहते हैं। पर्यायोंमें ऐसी बुद्धि नहीं जगती वे व्यतिरेकी होती हैं।

ननु च व्यतिरेकित्वं भवतु गुणानां सदन्वयत्वेपि।
तदनेकत्व प्रसिद्धौ भावव्यतिरेकतः सतामिति चेत् ॥ १४५ ॥

शंकाकार द्वारा गुणोंमें व्यतिरेकित्व सिद्धि—अब शङ्काकार कहता है कि व्यतिरेकीपना तो अनेकमें घटित होता है और गुण हैं अनेक तो उनमें भी व्यतिरेक घटित करना चाहिए। उन गुणोंको अन्वयी फिर क्यों कहा गया है? यद्यपि गुणोंका सत्के साथ अन्वय है, रहता है सदा रहे, लेकिन हैं तो गुण अनेक। और यह भी स्पष्ट है कि एक गुणमें अन्य गुणका स्वरूप नहीं है। प्रत्येक गुण निराला है। स्वयं स्वयके स्वरूपको लिए हुए हैं। तब गुणोंमें व्यतिरेकीपना क्यों नहीं घटित किया जा रहा है। पर्यायोमे भी तो इसी आधारपर व्यतिरेक घटित हो जाता है कि एक पर्याय के स्वरूपमें दूसरी पर्यायका स्वरूप नहीं है। तो यहां भी यह बात है कि एक गुणमें अन्य गुणका स्वरूप नहीं है, इस कारण वहां भी व्यतिरेक घटित करना चाहिए। अब इस शङ्काका उत्तर कहते हैं।

तन्न यतोस्ति विशेषो व्यतिरेकस्यान्वयस्य चापि यथा।
व्यतिरेकिणो ह्यनेकेप्येकः स्यादन्वयी गुणो नियमात् ॥१४६॥

प्रत्येक गुणकी अन्वयिता सिद्ध करते हुए शंकाकाकी उक्त शङ्काका समाधान—शङ्काकारकी उपयुक्त शङ्का ठीक नहीं है, क्योंकि अन्वय और व्यतिरेकमें विशेषता है। व्यतिरेकी अनेक होते हैं और गुण नियमसे अन्वयी होते हैं, यद्यपि व्यतिरेक गुणोंमे भी घट जाता है क्योंकि वे अनेक हैं और एक गुणमें दूसरे गुणका स्वरूप नहीं है। यों व्यतिरेक घट जाय फिर भी उसमें अन्वय पाया जाता है, अर्थात् प्रत्येक

गुण तीनों काल अपनी समस्त पर्यायोंमें एक रहता है । तो व्यतिरेककी बात कही जाय तो कह लो, पर व्यतिरेक घट रहा है तिर्यक्रूपसे, अर्थात् वर्तमानमे पदार्थमे जितने गुण हैं वे सब अपने अपने स्वरूपमे हैं इस कारण एक गुणमें दूसरे गुणका व्यतिरेक है, लेकिन साथ ही साथ यह गुण अन्वयी भी तो है । प्रत्येक गुण त्रिकाल समस्त पर्यायोमे वहीका वही रहता है लेकिन पर्यायोमे व्यतिरेक ही घटित होता है । एक समयमें अनन्त गुणोकी अपेक्षासे अनन्त पर्यायें हैं, उनमे भी गुणकी तरह व्यतिरेक घटित होगा और तीनकालकी समस्त पर्यायोंमे भी परस्पर व्यतिरेक घटित होगा लेकिन गुणोमे एक साथ रहने वाले उन समस्त गुणोमे स्वरूपतः परस्पर व्यतिरेक है लेकिन समस्त पर्यायोंमे इन गुणोका अन्वय है, इस कारण ये अन्वयी कहलाते हैं । तो अन्वयीपनेकी विशेषता होनेसे गुणोंको अन्वयी ही कहा गया है और पर्यायोमे सर्वथा व्यतिरेक होनेसे वर्तमानमें भी अनन्त गुणोंकी अनन्त पर्यायोमे परस्पर व्यतिरेक है और आगे पीछे भी हुई समस्त पर्यायें व्यतिरेकी ही कहलाती है अब व्यतिरेकके सम्बंध मे भेद प्रभेद करके वर्णन करते हैं ।

स यथा चैको देशः स भवति नान्यो भवति स चाप्यन्यः ।
सोपि न भवति स देशो भवति स देशश्च देशव्यतिरेकः ।१४७।

देशव्यतिरेक (द्रव्यव्यतिरेक) का वर्णन—अनन्त गुणोंके अभिन्न पिण्ड को देश कहते हैं । यह अभिन्न पिण्ड एक ही साथ है, एक ही समयमे है, पर्यायके समुदायकी तरह नही है ऐसा गुणोंमे नहीं है किन्तु समस्त अनन्त गुण एक ही समयमे अभिन्न पिण्डरूपमें हैं । इस अखण्ड पिण्डको देश कहते हैं । जो एक देश है वह दूसरा देश नही, जो दूसरा है वह दूसरा ही है, पहिला नही । इस प्रकारसे इस देशमे व्यतिरेक निरखना इसको देश व्यतिरेक कहते हैं । व्यतिरेक चार प्रकारसे देखा जायगा—देशव्यतिरेक, क्षेत्रव्यतिरेक, कालव्यतिरेक और भावव्यतिरेक । तो देशव्यतिरेकमे वस्तुके उन समस्त प्रदेशोमे एक एक प्रदेशको निरखकर, मानकर फिर उसमे यह देखना कि एक प्रदेशमें दूसरा प्रदेश नही है इसलिए पाया जाता है देशव्यतिरेक । यदि देशव्यतिरेक न हो तो पदार्थ एक देशमात्र ही रह जायगा, उसका विस्तार न बन सकेगा । जैसे आकाश अनन्त प्रदेशी है तो उसमें परस्पर प्रदेश भिन्न हैं, पृथक तो नहीं हैं, किंतु तद्भावका अभाव है अथवा देश व्यतिरेक सभी द्रव्योमें देखा जायगा कि प्रत्येक द्रव्य एक एक देश कहलाता है । गुण समुदायका नाम देश है तो किसी भी द्रव्यमें किसी अन्य द्रव्यका प्रवेश नहीं है । यों समस्त पदार्थ परस्परमें व्यतिरेकी हैं । एकमें दूसरा नहीं है । यों देशव्यतिरेक कहा जाता है । क्षेत्रव्यतिरेकका वर्णन अब अगली गाथामें करते हैं ।

अपि यश्चैको देशो यावदभिव्याप्य वर्तते क्षेत्रम् ।
तत्तत्क्षेत्र नान्यद्भवति तदन्यश्च क्षेत्रव्यतिरेकः ॥ १४८ ॥

क्षेत्रव्यतिरेकका वर्णन—जो एक देश है, गुण द्रव्य है वह जितने क्षेत्रको व्यापकर रह रहा है वह क्षेत्र वही है दूसरा नहीं है । जो दूसरा क्षेत्र है वह दूसरा ही है । यहाँ पदार्थको क्षेत्रकी अपेक्षासे अपने स्वरूपमें निरखा गया है । प्रत्येक पदार्थ अपने अपने ही क्षेत्रमे रहते हैं, उसको छोडकर अन्य क्षेत्र दूसरा ही क्षेत्र है । और ऐसे एक क्षेत्रके साथ दूसरे क्षेत्रका व्यतिरेक होना सो क्षेत्रव्यतिरेक है । देशव्यतिरेकमे द्रव्यव्यतिरेक बताया गया है । अनन्त गुणके अखण्ड पिण्ड अनन्त पदार्थ हैं । वे सब पदार्थ परस्परमें एक दूसरेसे भिन्न हैं अर्थात् जो एक द्रव्य है वह वही है एक द्रव्य दूसरा नहीं है । जो दूसरा द्रव्य है वह वही है, वह पहिला नही है । इस गाथामे क्षेत्र व्यतिरेक बताया गया है कि जितना निजी क्षेत्रको घेर करके पदार्थ रह रहा है अर्थात् जितना अपने समस्त प्रदेशमे है वह उसका क्षेत्र है, अन्य दूसरा क्षेत्र इसमे मिला हुआ नहीं है । इससे भिन्न है, ऐसे क्षेत्रकी अपेक्षासे पदार्थोंको भिन्न-भिन्न निरखना सो क्षेत्र व्यतिरेक है । काल व्यतिरेक इस प्रकार है ।

अपि चैकस्मिन् समये येकाप्यवस्था भवेन्न साप्यन्या ।
भवति च सापि तदन्या द्वितीय समयेपि कालव्यतिरेकः ॥१४९॥

कालव्यतिरेकका वर्णन—एक समयमे जो भी अवस्था होती है वह वही है वह अन्य नही है । दूसरे समयमे जो अवस्था होती है वह वही दूसरी है, वह पहिली आदिक अन्य नहीं है । इस प्रकार उन अवस्थाओंमे परस्पर व्यतिरेक निरखना सो काल व्यतिरेक है । यह काल व्यतिरेक एक पदार्थकी अवस्थाओंमे भी निरखा जा सकता है और समस्त पदार्थोंकी अवस्थाओंमें भी निरखा जा सकता है । पर विशेष प्रयोजन है एक ही पदार्थकी समस्त अवस्थाओं की परस्पर भिन्नता निरखना । एक समयमे जो अवस्था होती है वह वही है दूसरी नहीं हो सकती । और, जो दूसरे समय मे अवस्था है वह उसी समयकी है, अन्य अवस्था नहीं है । यह बात तो स्पष्ट विदित होती है कि मनुष्य मनुष्य ही है देव आदिक नही है । पशु पशु ही हैं मनुष्य आदिक नहीं हैं, क्रोध क्रोध ही है, वह मान माया आदिक नहीं है । निष्कषाय भाव तब है जब वहाँ अकषाय है, शान्त है । वहाँ वह कषायवान अशान्त नहीं है । तो एक अवस्थामें दूसरी अवस्था नहीं है । यों अवस्थाओको परस्पर भिन्न-भिन्न निरखना सो काल व्यतिरेक है । यों पदार्थमे द्रव्यव्यतिरेक, क्षेत्र व्यतिरेक और काल व्यतिरेककी बात कही गई है, अब भाव व्यतिरेक बतावेंगे ।

भवति गुणांशः कश्चित् स भवति नान्यो भवति चाप्यन्यः।
सोपि न भवति तदन्यो भवति तदन्योपि भावव्यतिरेक ॥१५०

भावव्यतिरेकका वर्णन—अब इसमे भावव्यतिरेक बना रहे हैं। जो एक गुणाश है वह वही है दूसरा नही है और जो दूसरा गुणाश है वह वही दूसरा है पहिला आदिक नहीं है, इस प्रकार एक गुणाशमे दूसरे गुणांशके न रहने को भावव्यतिरेक कहते हैं। गुणाशका अर्थ यहाँ अविभाग प्रतिच्छेद है गुणमे जितने सम्पूर्ण अंश है। अर्थात् गुणोके परिपूर्ण विकासमे जितने अविभाव प्रतिच्छेद होते हैं एक एक अविभाग प्रतिच्छेद गुणाश कहलाते हैं तो वहाँ एक गुणाशमें दूसरे गुणाश नही हैं। यदि एक गुणाशमे दूसरा गुणांश हो तब तो वस्तु यह गुणरूप अश मात्र रह जायेगा। फिर उसमें हीनाधिकता और तर्तमता सिद्ध न हो सकेगी। जिस ज्ञानमें अविभाग प्रतिच्छेद जो विकसित हैं सूक्ष्म निगोद जीवके वे कम हैं, मनुष्यादिकके अधिक हैं और केवली भगवानके अविभाग प्रतिच्छेद सबसे अधिक हैं। तो यदि एक गुणांशमें दूसरा गुणाश समा जाय तो अनेक गुणांश न होनेके कारण फिर उनमें यह तर्तमता न रह सकेगी, इस कारण मानना ही होगा कि एक गुणांशमें अन्य गुणाश नहीं रहा करते।

यदि पुनरेक न स्यात्स्यादपि चैव पुनः पुनः सैषः।
एकांशदेशमात्र सर्वं स्यात्तन्न वाधितत्वात्प्राक् ॥ १५१ ॥

विधिवत् व्यतिरेक चतुष्टय न माननेपर दोपापत्तिका दिग्दर्शन—यदि ऊपर कहे हुए व्यतिरेक चतुष्टय न माने जायें तो इसका अर्थ यह होगा कि जो एक देश है वही अन्य सर्व देश है। तब द्रव्यकी भिन्नताका परिचय कैसे होगा ? जो पहिले समयमें द्रव्य है वही पूरा दूसरे समयमे है उसी रूप तो वस्तु फिर एक पर्याय मात्र हुई, अशमात्र हुई। सदा टिक सकने वाली नही हुई। जो क्षेत्र एकका है उसमे अन्य क्षेत्र भी समाया हुआ है। तो वह सर्व क्षेत्र मात्र हो गया। वहाँ वह भी न रहा। यो ही यदि भावमें भावका व्यतिरेक नहीं है, एक गुणमे दूसरे गुणका व्यतिरेक नहीं है या गुणाशमे अन्य गुणाशका व्यतिरेक नही है तो सर्व एक गुणाशमात्र हो जायगा। तब वस्तुका परिचय प्राप्त ही नहीं किया जा सकता।

अयमर्थः पर्यायाः प्रत्येकं किल यथैकशः प्रोक्ताः।
व्यतिरेकिणो ह्यनेके न तथाऽनेकत्वतोपि सन्ति गुणा॥ १५२ ॥

पर्यायोंमें व्यतिरेकिता और गुणोंमे अन्वयिताकी सिद्धि—ऊपर कहे हुए व्यतिरेकोका यह भाव है कि एक-एक समयमें क्रमसे भिन्न-भिन्न होने वाली जो

परिणतियाँ हैं वे ही व्यतिरेकी हैं, गुण व्यतिरेकी नहीं हैं। यह सब व्यतिरेकका समझाना इस उद्देश्यसे किया गया है कि यह निर्णय हो जाय कि गुणमें व्यतिरेक नहीं होता, पर्यायोंमें ही व्यतिरेक है। ये सब व्यतिरेक पर्याय दृष्टिसे निरखे जायें तो चारों की अपेक्षासे यह पर्यायमें व्यतिरेक घटित होगा, पर गुणोंमें व्यतिरेक एक समयमें हुआ भी लेकिन भिन्न समयमें व्यतिरेक ही मिलेगा और एक समयमें व्यतिरेक न मिलेगा। जो द्रव्यके एक समयकी पर्याय है वही पर्याय दूसरे समयमें नहीं होती। दूसरे समयमें तो अन्य ही कोई दूसरी पर्याय होगी। इस कारण द्रव्यका एक समयका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भिन्न है और दूसरे समयका द्रव्य क्षेत्र, काल भाव भिन्न है। देश क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे जो यह व्यतिरेक घटित करता है वह समय क्रमसे करता है। एक समयका यह चतुष्टय भिन्न है, दूसरे समयका यह चतुष्टय भिन्न है, इस कारण पर्याय व्यतिरेकी है। व्यतिरेकका लक्षण यह है कि जहाँ यह बुद्धि बनी कि यहाँ वह नहीं है, पर्यायें अनेक हैं और वे भिन्न-भिन्न हैं इस कारण इन पर्यायोंमें यह व्यतिरेक भली प्रकार घटित होता है कि यह वह नहीं है। एक पर्याय दूसरी पर्यायरूप नहीं है, किन्तु गुणमें यह बात नहीं है। गुण यद्यपि अनेक हैं और एक समयमें अनेक गुण होने से स्वरूपकी अपेक्षासे एक गुणमें दूसरा गुण नहीं है। है तो वस्तु अखण्ड, अगर एक गुणमें दूसरा गुण समा गया और ऐसी दृष्टि आ गई तो वहाँ फिर गुण किसमें न रहेंगे। तो गुण एक समयमें अनेक हैं और स्वरूप उनका अपना अपना है, लेकिन वे सभी गुण जो पहिले समयमें हैं वे ही सब गुण दूसरे तीसरे समयमें हैं अनन्त समय तक। इस कारण गुणोंमें व्यतिरेक न बनेगा। कुछ समय बाद कह दिया जाय कि अब यह गुण नहीं हैं, प्रत्येक गुण अपने अनादि अनन्त अवस्थाओंमें पाया जाता है इस कारण प्रत्येक गुणमें यह वही है ऐसा अन्वय घटित होता है। तो गुण अन्वयी है, पर्याय व्यतिरेकी है। गुण शब्दके एकार्थ वाचक शब्द बताये गए थे और उन शब्दोंमें तीन शब्द मुख्य कहे गए—गुण सहभावी और अन्वयी। तो गुण तो यहाँ विशेष्यरूपसे ही कहे गए हैं—सहभावी और अन्वयी। इन दो विशेष्योंका अर्थ बताना था। सहभावी शब्दका अर्थ घटित करके अब गुणोंमें अन्वयीपना घटित किया जा रहा है तो ये व्यतिरेक चतुष्टय गुणोंमें नहीं पाये गए इस कारण गुण अन्वयी कहलाते हैं।

किन्त्वेकशः स्वबुद्धौ ज्ञानं जीवः स्वसर्वसारेण।
अथ चैकशः स्वबुद्धौ दृग्वा जीवः स्वसर्वसारेण॥ १५३॥

दृष्टान्त पूर्वक गुणोंमें अन्वयिताका समर्थन—द्रव्य तो एक अखण्ड है। द्रव्यको जिस किसी भी गुणकी प्रमुखतासे जाना तो भले ही उपाय किसी एक गुणकी प्रमुखताका रहा, किन्तु समझा गया वही द्रव्य। वही द्रव्य जब किसी दूसरे गुणकी प्रमुखतासे समझा जाता है तो वहाँ भी समझा गया वही द्रव्य, यही कारण है कि

किसीने अपनी बुद्धिमे अपने सर्वसार रूपसे ज्ञानको ही जीव समझा। किसी दूसरे विवेकीने अपनी बुद्धिमे सर्वसाररूपसे दर्शनको ही जीव समझा, अर्थात् ज्ञान ही सर्वस्व है। जीव ज्ञानको छोडकर और क्या है ? ज्ञान ही जीव है। किसीने समझा कि दर्शन ही जीव है। किसीने समझा कि आनन्द ही जीव है। तो किसीने ज्ञान गुणकी मुख्यता से जीवको ग्रहण किया और किसीने दर्शन गुणकी मुख्यतासे जीवको ग्रहण किया। हालाकि ज्ञान गुण जुदा है, दर्शन गुण जुदा है, सभी गुण परस्पर जुदे हैं, अर्थात् स्वरूपत' लेकिन परस्पर अभिन्न हैं। कही द्रव्यमे भिन्न-भिन्नरूपसे ये गुण नहीं पाये जा रहे-इस कारण जो यह कहा कि ज्ञान ही जीव है वह भी सही है। उसने जीवको ज्ञान की प्रधानतासे ग्रहण किया, और विश्लेषण करके देखें तो उन ज्ञान गुणमात्र ही तो नही है, वह भी अनन्त गुणोका पिण्ड है। और, किसीने दर्शनकी प्रधानतासे ग्रहण किया, दर्शन मात्र ही जीव है तो कही केवल दर्शन गुण ही हो जीवमे, ऐसा नही है। अन्य गुण भी है। किसीने जीवको आनन्द गुणकी प्रधानतासे ग्रहण किया, तो कही ऐसा नहीं है कि जीवमे केवल आनन्द ही गुण है। अन्य गुण भी है। तो यद्यपि गुण अनेक हैं, फिर भी किसी भी गुणके द्वारा जो ग्रहण किया जाता है वह समस्त अर्थ ग्रहण किया जाता है। किसीने चक्षुइन्द्रिय द्वारा आमके रूपको निरखा तो उसने रूप की मुख्यतासे आमको ही जाना और कही चख करके स्वाद लिया तो उस ही पुरुषने अब रसकी भिन्नतासे आमको ग्रहण किया। तो यो भिन्न-भिन्न गुणोकी प्रमुखतासे भिन्न-भिन्नरूपसें वही सर्वस्व द्रव्य जाना जाता है। इस कारणसे गुण परस्पर अभिन्न हैं, लेकिन वे अनेक हैं। अगर स्वरूपको देखा जाय तो ज्ञान गुणका स्वरूप ज्ञान गुणमे है, दर्शन गुणका स्वरूप दर्शन गुणमे है इसलिए गुणोमे अनेकता होनेपर भी पर्यायोकी तरह यह वह नही हैं ऐसा व्यतिरेक न घटित होगा। गुण अन्वयी है और पर्याय व्यतिरेकी है, यह ही निर्णय युक्तिसगत होता है।

तत एव यथाऽनेके पर्यायाः सैष नेति लक्षणतः।
व्यतिरेकिणश्च न गुणास्तथेति सोऽय न लक्षणाभावात् ॥१५४॥

गुणोमे व्यतिरेक लक्षणकी अनुपलब्धि—इस कारण जैसे अनेक पर्यायोमे व्यतिरिक घटित होता है वह भी नहीं है, इस लक्षणसे वे पर्यायें व्यतिरेकी हैं उस ही प्रकार अनेक होनेपर भी गुण व्यतिरेकी नही हैं क्योकि उनमें व्यतिरेकका लक्षण बताया गया है कि यह वह नही है सो गुणोमे किसी भी समय यह नही कहा जा सकता कि यह वह नही है। गुण शाश्वत् हैं, इस कारण गुण व्यतिरेकी नही, किन्तु अन्वयी हैं। इस प्रकरणमें अन्वय और व्यतिरेकका रहस्य समझनेके लिए सीधे शब्दो मे यह जानना कि पर्यायें तो सब प्रकारसे व्यतिरेकी हैं। एक समयमे अनन्त पर्यायें भी हैं, क्योकि पदार्थमे अनन्त गुण हैं और जितने गुण हैं उन सबकी पर्यायें भी होत

हैं। एक अखण्ड द्रव्यको जैसे भेददृष्टिसे अनेक गुणोंके रूपमें देखा इसी प्रकार एक समयकी पर्यायको भेददृष्टिसे अनेक पर्यायोंके रूपमें देखा और यह अनेकता उन गुणोंमें नियत प्रकारसे है। यह पर्याय इस गुणकी है। तो एक समयमे जो अनन्त पर्यायें हो रही हैं, अनन्त गुण होनेके कारण वहाँ भी पर्यायोंमें किसी एक पर्यायमें दूसरी पर्याय नहीं है और भिन्न भिन्न समयोंमें जो वे अनन्तानन्त पर्यायें होती रहती हैं तो समयभेद मे भी अर्थात् पूर्व समयकी पर्याय उत्तर समयकी पर्यायमें नहीं हैं तो यों गुणोंमें तिर्यक रूपसे और ऊर्ध्वांश रूपसे दोनो प्रकारसे व्यतिरेक घटित होता है किन्तु गुणोंमें एक पदार्थमें चूंकि अनन्त गुण हैं इस कारण अपने अपने स्वरूपकी दृष्टिसे एक गुणमें दूसरा गुण नहीं है, लेकिन वे सभीके सभी गुण पहिले समयमे भी थे, अब भी हैं और भविष्यमें अनन्त समय तक वे ही गुण रहेंगे, इस कारण गुण अन्वयी कहे गए हैं और पर्यायें व्यतिरेकी कही गई हैं।

तल्लक्षणं यथा स्याज्ज्ञानं जीवो य एव तावांश्च ।
जीवो दर्शनमिति वा तदभिज्ञानात् स एव तावांश्च ॥ १५५ ॥

उदाहरणपूर्वक गुणोंमे अन्वयिताका दिग्दर्शन—उपर्युक्त गाथामें बताया था कि पर्यायोंमें तो व्यतिरेकका लक्षण घटित होता है, किन्तु गुणोंमें व्यतिरेकका लक्षण घटित नहीं होता। उसी बातको इस गाथामें स्पष्ट कह रहे हैं कि गुणोंमें अन्वय लक्षण ही घटित होता है। जिस समय जीवको ज्ञानस्वरूप कहा जाता है उस समय वह उतना ही है और जिस समय जीवको दर्शन स्वरूप कहा जाता है उस समय जीव दर्शनमात्र ही है। इस प्रकार जीवको बतानेमें प्रत्यभिज्ञान होता है कि यह वही है। जिस समय ज्ञानस्वरूप जीवको जाना और बादमे दर्शनस्वरूप जाना तो दर्शन स्वरूप जीवको जाननेके समयमें यह प्रत्यभिज्ञान होता है कि यह वही जीव है जिसे ज्ञानस्वरूपमें जाना था और परिपूर्णतया जाना था। तो ऐसा प्रत्यभिज्ञान होनेसे भी गुणोंमें अन्वय सिद्ध होता है। तो एक समयमें अनेक गुण हैं और उन अनेक गुणोंमें एक प्रकारसे व्यतिरेक सिद्ध होता था, किंतु एक समयमें रहने वाले गुणोंमें भी अन्वय सिद्ध हो रहा है, क्योंकि प्रत्यभिज्ञान ऐसा ही होता है—यह वही जीव है जिसे ज्ञान-स्वरूपमें जाना था। यही जीव है जिसे अब दर्शन स्वरूपमें जाना जा रहा है।

एष क्रमः सुखादिषु गुणेषु वाच्यो गुरूपदेशाद्वा ।
यो जानाति स पश्यति सुखमनुभवतीति स एव हेतोश्च ।१५६।

आनन्द आदिक सभी गुणोंमें अन्वयिताका कथन—यही क्रम सुखादिक गुणोंमें भी लगाना। जिस समय जीवको आनन्दस्वरूपमें देखा जाता है उस समय वह

जीव आनन्दमात्र है। और, ऐसा समझनेमें हेतु यह है कि देखिये ! जो दशा है वही तो दीखती है और वह ही अनादिसे अनुभव करता है ऐसी प्रतीति होती है तो इस प्रकारके प्रत्यभिज्ञानसे सिद्ध होता है कि गुणोमे अन्वय है। ये गुण कोई भिन्न भिन्न चीज नही है कि एक जीवमें भिन्न भिन्न सत्त्वको लिए हुए गुण हो, किंतु वह एक पदार्थ है और पदार्थ होनेसे उसमे एक स्वभाव है और सत् होनेके कारण वह निरन्तर उत्पादव्यय करता रहता है। अब पदार्थ और स्वभाव तथा पर्याय ये तीनों बातें ज्ञानमे लेनी पडीं, इससे पदार्थ तो एक अखण्ड अवक्तव्य है। अब उस ही पदार्थको वक्तव्य बनानेके लिए जो भेदव्यवहार किया गया है उससे उस स्वभावके अंश किए गए। और, वह अंश शक्तिके रूपमे आया। इसी प्रकार पर्यायोको वक्तव्य करनेके लिए उसके अंश किए गये और वे अंश पृथक पृथक रूप स्वरूपमे इस प्रकारसे आये कि यह अमुक गुणकी पर्याय है, यह अमुक गुणकी पर्याय है। यों गुण और पर्यायोका भेद एक तीर्थप्रवृत्तिके लिए किया गया है। तो जो शक्तिभेद किया गया वह जीवका सर्वस्व सार है जैसा कि स्वभाव। उनमेंसे जिस किसी भी शक्ति याने गुणरूपमें पदार्थको देखा जा रहा है, पदार्थ उस समय तन्मात्र विदित होता है, क्योकि वह स्वभाव है। जैसे कि जब केवल स्वभावरूपसे देखा जाता है तो वह स्वभावमात्र विदित होता है। जीवको जब चैतन्य स्वरूपमे निरखा तो जीव चिन्मात्र विदित हुआ। अब कुछ भेददृष्टि करके जब ज्ञानरूप देखा तो ज्ञानमात्र दर्शन स्वरूप देखा तो दर्शनमात्र और आनन्दस्वरूप देखा तो आनन्दमात्र यह जीव दृष्टगत हुआ। यही कारण है कि इस हीका एकान्त हठ करके कुछ एकान्दवाद निकला। जैसे एक दर्शन मानता है कि यह ब्रह्म केवल आनन्द स्वरूप है। एक दर्शन स्वीकार करता है कि यह आत्मा केवल दृष्टिस्वरूप है चेतना स्वरूप मात्र है और वह चेतना एक दर्शनरूपमें स्वीकार किया गया है। उसमे ज्ञान नहीं माना। एक दर्शन जीवको ज्ञानमात्र मानता है। ज्ञानाद्वैत, वैसे ज्ञानमात्र अथवा दर्शनमात्र अथवा आनन्दमात्र जैन दर्शनने भी माना है किन्तु वह उस दृष्टिकी बात है, एकान्त नहीं किया गया है। तो यों जीव जब आनन्दस्वरूप देखा गया तो आनन्दमात्र समझा गया। वहाँ भी अन्वय ही दीखा।

अथ चोद्दिष्टं प्रागप्यर्था इति संज्ञका गुणा वाच्याः।
तदपि न रूढिवशादिह किन्त्वर्थाद्यौगिकं तदेवेति ॥ १५७ ॥

अर्थ शब्दकी गुणवाचकता—यहाँ पहिले बताया गया था कि गुणोंका अर्थ इस संज्ञासे भी कहा जाता है याने गुणोंका नाम अर्थ भी है और वह अर्थ शब्द केवल रूढिसे भी नहीं, किन्तु यौगिक रूपसे भी है। धातुमें प्रत्यय लगाकर धातुके अर्थके अनुरूप अर्थ करना यह यौगिक अर्थ है तो गुणोंको अर्थ भी कहते हैं। अर्थ शब्दका क्या व्युत्पत्यर्थ है सो आगे बतायेंगे। अभी यह जानें कि जिस गुणका व्युत्प-

र्थ यह है कि जो भेदा जाय उसे कहते हैं गुण यानी पदार्थको स्वभावरूपमें देखा, अब उस ही स्वभावमें भेद करके गुण समझमें आया। गुण्यते भिद्यते द्रव्य अनेन इति गुणः जो भेदा जाय उसे गुण कहते हैं। अथवा जिन शक्तियोंके द्वारा पदार्थ भेदा जाय एक अखण्ड अवक्तव्य पदार्थको अंश रूप कर करके समझाया जाय तो वे अंश तब गुण कहलाते हैं। तो जैसे गुण शब्दका यौगिक अर्थ यह है कि जिस अर्थसे शक्तिका स्वरूप विदित हुआ इसी प्रकार अर्थका भी यौगिक अर्थ है और वह क्या अर्थ है सो अगली गाथामें बताते हैं।

स्यादृगिताविति धातुस्तद्रूपोऽयं निरूच्यते तज्ज्ञैः।
अत्यर्थोऽनुगतार्थादनादिसन्तानरूपतोऽपि गुणः ॥ १५८ ॥

अर्थ शब्दकी व्युत्पत्त्यर्थसे गुणवाचकताका स्पष्टीकरण—ऋ इतौ एक धातु है अर्थात् ऋ धातुका गमन अर्थ है। जो गमन करे उसे अर्थ कहते हैं। अर्थ शब्द का यौगिक अर्थ एक यह भी है अर्यते निश्चीयते इति अर्थः जो निश्चित किया जाय, जो जाना जाय, निर्णीत किया जाय उसे अर्थ कहते हैं। प्रायः जितने गत्यर्थक धातु हैं उनका जानना भी अर्थ होता है। तो चाहे यह कहा जाय कि जो चले सो अर्थ है अथवा यह कहा जाय कि जो जाना जाय सो अर्थ है। यौगिक अर्थ दोनों बनते हैं, पर जहाँ यह अर्थ है कि जो जाना जाय सो अर्थ है। इस अर्थमें तो पदार्थ आया, क्योंकि सभी जगह पदार्थ ही जाना जाना है। जब कभी गुणोंका भी ज्ञान किया जाता तो गुणोंके रूपमें पदार्थ जाना जाता है। केवल गुण नहीं जाना जाता। जैसे वस्त्र सफेद है यह ज्ञात किया तो रूपसे वस्त्र को जाना न कि केवल सफेद रूपसे। जब कभी जो पदार्थ जाना जाता है वह वह किसी गुण के रूपमें अथवा पर्याय के रूपमें जाना जाता है, यदि गुणों के रूपमें न जानकर पर्याय के रूपमें न जानकर केवल पदार्थ को ही जान लिया जाय तो वही तो मोक्ष मार्ग का अपूर्व पुरुषार्थ है। और स्वानुभवके निकटकी स्थिति है। तो एक अर्थ का अर्थ है पदार्थ और एक अर्थ से अर्थका वाच्य हुआ गुण जो गमन करे सो अर्थ। यह गुण त्रिकाल द्रव्यमें चलता रहता है। इसका कभी लोप नहीं होता। त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायोंमें इसका गमन है-इस कारण इसे अर्थ कहते हैं। अनादि संतान रूपसे यह गुण साथ साथ चले आते हैं। इस कारण गुणोंका अर्थ नाम देना यह अन्वर्थक ही है।

अयमर्थः सन्ति गुणा अपि किल परिणामिनः स्वतः सिद्धाः।
नित्यानित्यत्वादप्युत्पादादित्रयात्मका सम्यक् ॥ १५९ ॥

गुणोंकी स्वतःसिद्धता, स्वतः परिणामिता व उत्पादादित्रयात्मकता

का समर्थन—इस प्रसंगमें जो कुछ भी वर्णन किया गया है उस सबका सारांश यह है कि गुण भी स्वतः सिद्ध और परिणामी है। स्वतः सिद्ध तो यों है कि जैसे पदार्थों का सत्त्व किसीने उत्पन्न नहीं किया तो पदार्थका स्वभाव भी उत्पन्न नहीं किया गया। स्वभाव स्वभाववानमें सहज है और उस ही स्वभावमें भेद दृष्टिसे निरखने पर गुण विदित हुए तो गुण भी स्वतः सिद्ध कहलाये और परिणमे भी इस प्रकार हैं कि जैसे पदार्थ परिणमे हैं। जो कुछ भी है वह नियमसे है। वह नियमसे परिणमनशील है। तो जो है उस ही सत्को जब अंश विभाग कल्पनासे देखा तो जो भी शक्तियाँ विदित हुई जो गुण जाना गया वह गुण भी परिणमनशील है, क्योंकि गुण बराबर पदार्थ कहलाता है। जैसे कोई कहे कि वृक्ष हिला तो वृक्ष हिला इसके मायने यह है कि उसके डाले पत्ते, फल फूल हिले, क्योंकि वे वृक्षके अंग हैं। ऐसे ही पदार्थ परिणमे ऐसा कहने पर यह ध्वनित हुआ कि पदार्थमें गुण परिणमा। तो यों गुण परिणामी है। तो स्वतः सिद्ध एवं परिणामी होनेसे ये गुण कथंचित् नित्य भी हुए और कथंचित् अनित्य भी, और नित्यानित्यात्मक जब हुआ तो उससे यह सिद्ध हुआ कि उत्पादव्यय और ध्रौव्य है। जिस दृष्टिसे ये गुण अनित्य विदित हो रहे हैं उस दृष्टिमें उत्पाद और व्यय है। उत्पादव्यय हुए बिना अनित्यता क्या कहलायेगी? नवीन अवस्था उत्पन्न होना और पुरानी अवस्था विलीन होना इस ही धारामें रहनेपर अनित्य कहा जायगा। सो जैसे द्रव्यमें उत्पाद और व्यय होता है तो द्रव्यको ही अंश विभागसे समझकर जो गुण जाने गये वे गुण भी निरन्तर नवीन अवस्थामें आते हैं और उनकी पुरानी अवस्था विलीन होती है। तो यों गुण उत्पादव्यय स्वरूप हैं। अतएव अनित्य हैं। और नित्य यों हैं कि गुण शाश्वत रहते हैं।

दृष्टान्तपूर्वक गुणोंकी नित्यानित्यात्मकताका वर्णन—जैसे आममें कितने ही रंग बदलते जायें किन्तु रूपशक्ति वही है। बदलनेके समयमें भी कोई अन्तर नहीं आता कि पहिले नीला था अब हरा हुआ। तो इस बीचमें कुछ न रहा। रूप शक्ति वही है। यह रूप गुण पहिले नीली पर्यायमें था वही अब हरित पर्यायमें आ गया, तो जो गुण ध्रुव हैं जैसे कि द्रव्य ध्रुव है, पदार्थ अनादि अनन्त है उसका कभी लोप नहीं हो सकता यों ही पदार्थका भेददृष्टि से देखनेपर जो गुण समझ में आये वे सब भी ध्रुव हैं नित्य हैं। यों गुण नित्यानित्यात्मक हैं एक दृष्टिसे, तो यह विभाग किया जा सकता है कि गुण नित्य है और पर्याय अनित्य है, किन्तु इस दृष्टिमें यह आशय रहा गया कि जो शक्तिमात्र है वह तो नित्य है और उस शक्तिकी जो अवस्था है वह अनित्य है, किन्तु जब शक्ति और अवस्था कोई भिन्न-भिन्न नहीं हैं तब उस सबको गुण रूपमें ही देखा इस दृष्टिमें वे गुण नित्यानित्यात्मक सिद्ध होते हैं।

अस्ति विशेषस्तेषां सति च समाने यथा गुणत्वेपि।
साधारणास्त एके केचिदसाधारणा गुणा सन्ति ॥ १६० ॥

गुणोंमें साधारणता व असाधारणताका भेद—पदार्थ गुणोंका पिण्ड है। उन गुणोंमें दो प्रकारसे भेद पाया जाता है। कुछ गुण तो होते हैं सामान्य और कुछ होते हैं विशेष। अथवा गुणत्व सामान्यकी अपेक्षासे सभी गुणोंमें समानता है, क्योंकि सभी गुण हैं, इस प्रकारसे समानरूपसे विदित होते है, किन्तु विशेष दृष्टिसे देखा जाय तो उन गुणोंमें कुछ तो साधारण गुण हैं और कुछ असाधारण गुण हैं। साधारण गुण उन्हें कहते हैं जो सर्व द्रव्योंमें पाये जायें और साधारण गुणोंकी दृष्टिसे द्रव्यमें भेद नहीं किया जा सकता कि यह जीव है, यह पुद्गल है आदिक। कुछ असाधारण गुण होते हैं। असाधारण गुण उन्हें कहते हैं जो किसी एक जातिके द्रव्यमें ही पाया जाय, अन्य जातिके द्रव्यमें न पाया जाय। असाधारण गुणसे जातिभेद पड़ता है। तो यों वस्तुमें २ प्रकारके गुण हैं—साधारण और असाधारण। दोनों प्रकारके गुण होनेसे ही वस्तुमें वस्तुपना होता है। यदि किसी द्रव्यमें केवल साधारण गुण माना जाय, असाधारण गुण न माना जाय तो साधारणगुण भी न टिकेंगे क्योंकि वे व्यक्ति ही कुछ नहीं हैं, फिर उसमें साधारण गुण क्या आया ? चीज ही नहीं कुछ और यदि असाधारण गुण ही माने जायें, साधारण गुण न माने जायें तो असाधारण गुण रहे कैसे ? जैसे द्रव्यमें साधारण गुण अस्तित्व है और द्रव्योंमें असाधारण गुण जैसे जीवमें चेतन है तो एक जीवकी ही बात यहाँ उदाहरणमें लें कि जीवमें यदि चैतन्यको नहीं माना जाता तो अस्तित्व किसका ? जब कोई व्यक्ति ही नहीं, पदार्थ ही न रहा तो है कुछ न रहे। तो चेतनके बिना जीवका अस्तित्व कुछ नहीं है और कोई साधारण गुण ही मानता याने जीवमें अस्तित्व मानता है, चेतन नहीं मानता तो चेतन बिना अस्तित्व क्या ? और चेतन माने, अस्तित्व न माने तो जब कुछ है ही नहीं तो चेतन कहाँसे ठहरेगे। यों साधारण और असाधारण दोनों प्रकारके गुण माननेसे ही वस्तुका वस्तुत्व बढता है। अब साधारण और असाधारणका अर्थ बताते हैं।

साधारणास्तु यतरे ततरे नाम्ना गुणा हि सामान्याः।
ते चाऽसाधारणका यतरे ततरे गुणा विशेषाख्याः॥ १६१॥

साधारण और असाधारण गुणोंका लक्षण— जितने साधारण गुण हैं वे सामान्य नामसे कहे जाते हैं अर्थात् वह सामान्य गुण है और जो असाधारण गुण हैं वे सब विशेष नामसे कहे जाते हैं, अर्थात् वे विशेष गुण हैं जो सामान्य रीतिसे प्रत्येक द्रव्यमें पाये जायें ऐसे गुणोंको साधारण गुण कहते हैं जैसे अस्तित्व सभी द्रव्योंमें समान रूपसे है। जीव वह भी है, पुद्गल वह भी है, धर्मादिक द्रव्य वह भी है। तो हैपने की अपेक्षासे उनमें सामान्यपना आया। और जो गुण खास खास द्रव्यमें ही पाये जायें उन्हें असाधारण गुण कहते हैं। जैसे चेतन यह जीव जातिके पदार्थमें ही पाया जाता है अन्यमें नहीं। जैसे मूर्तिकता रूप, रस, गंध, स्पर्शका पिण्ड होना यह पुद्गल द्रव्यमें

ही पाया जाता है अन्य द्रव्यमे नही। तो जो गुण खास-खास द्रव्यमे ही पाये जायें, सबमें नही, उन्हे असाधारण गुण कहते हैं। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि जो सब द्रव्योमें रहे वह तो साधारण गुण है और जो किसी विशेष द्रव्यमें रहे वह विशेष गुण कहलाता है। तो साधारण गुण और असाधारण गुण दो प्रकारसे क्यो विदित हो रहे हैं, इसका वर्णन अब बताते हैं।

तेषामिह वक्तव्ये हेतुः साधारणैर्गुणैर्यस्मात्।
द्रव्यत्वमस्ति साध्यं द्रव्यविशेषस्तु साध्यते त्वितरैः॥ १६२॥

साधारण गुणोसे द्रव्यसामान्यकी सिद्धिमे अस्तित्व गुणसे द्रव्यसामान्य की सिद्धि---साधारण और असाधारण गुण क्यो बनाये गए हैं पदार्थोमे, इसका कारण यह है कि साधारण गुणोसे तो द्रव्य सामान्यकी सिद्धि होती है और विशेष गुणोसे विशेष द्रव्य सिद्ध किया जाता है। जैसे साधारण गुण हैं ६ अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व। अस्तित्व गुणके कारण यह व्यवस्था विदित हुई कि पदार्थ है। पदार्थका अस्तित्व अस्तित्व गुणके कारण व्यवस्थित होनेमे है, उसीकी तो चर्चा है। जो नही है उसकी चर्चा कैसे की जा सकती है? कभी कभी ऐसा विदित होता है कि जो नहीं है उसकी भी चर्चा होती है। सो वहां भी बात यह है कि कहीं किसी समय किसी प्रकार है तब वहां चर्चा बनती है। जैसे कोई कहे कि खरगोशके सीग उदाहरणमें बहुत दिये जाते हैं और होते वे हैं नही! तो जो नही है तो जो नही है उसकी भी तो चर्चा की गई लेकिन सर्वथा नहीं है उसकी चर्चा नहीं होती। खरगोश तो है कहीं, सीग भी होती हैं, किसी भी जगह होती हो। तो ये दो शब्द जो बोले गए हैं इन शब्दोका वाच्य तो है कही। गाय, भैस आदिकमे सीग पाये जाते। खरगोश जानवर होता ही है। अगर सींग होते ही नही तो यह शब्द ही न बनता। जितने शब्द बने हुए हैं उनका वाच्य होता ही है। न हो तो शब्द ही नही उठ सकता है। तो खरगोश भी है, सीग भी हैं, पर यहां नास्तित्व बताया जा रहा खरगोशके सींगका याने खरगोशमे सीग नही हैं। शब्द जो बोले गए हैं उन शब्दोका वाच्य अर्थ अवश्य है। खरगोश भी है, सीग भी हैं। तो जो नहीं है उसके तो शब्द भी कोई नही होते, चर्चा ही क्या हो सकेगी? तो द्रव्यमें साधारण गुण अस्तित्व है, इस अस्तित्व गुणसे द्रव्य सामान्य सिद्ध होता है। जीव है, पुद्गल है, सब कोई है पने की दृष्टिमे सारे द्रव्य एक समान हैं। जैसे कोई कहे सत्, तो ऐसा कहनेसे यह विभाग न बनेगा कि जीव ही ग्रहणमें आया, अन्य ग्रहणमे न आया। सत् सत् कहते ही सब कुछ ग्रहणमे आ जाता है। तो साधारण गुणोसे द्रव्य सामान्य विदित होता है।

वस्तुत्व गुणसे द्रव्य सामान्यकी सिद्धि—जैसे यहाँ अस्तित्व गुणसे सब

पदार्थोंका अस्तित्व समझा गया वैसे वस्तुत्व आदि गुणोंसे भी द्रव्य सामान्य जाना जाता है। वस्तुत्व गुण—इसका तीन प्रकारसे अर्थ किया जाता है। पहिला अर्थ यह कि अपने स्वरूपसे होना, पर स्वरूपसे न होना यह गुण वस्तुत्व कहलाता है। यदि यह बात न हो तो कोई पदार्थ ही नहीं रह सकता। अपने स्वरूपसे भी हो और पर-स्वरूपसे भी हो तो पदार्थ क्या रहा ? वह तो पर बन गया। खुद भी क्या रहा ? और, परस्वरूपसे जैसे नहीं है इसी तरह स्वरूपसे भी न हो जाय तो असत् हो गया। तो यह बात होना भी आवश्यक है कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है और परस्वरूपसे नहीं है। यह गुण साधारण गुण है। यह कला समस्त द्रव्योंमें पाई जाती है। सभी द्रव्य अपने अपने स्वरूपसे हैं पर स्वरूपसे नहीं है। वस्तुत्वका दूसरा अर्थ यह है कि जिसमें गुण वसे। तो गुण वसे ऐसी बात सभी द्रव्योंमें है, इस अर्थकी अपेक्षासे भी वस्तुत्व गुण साधारण गुण हुआ और उससे द्रव्य सामान्यकी व्यवस्था हुई। तीसरा अर्थ है जिसमें अर्थ क्रिया हो उसे वस्तु कहते हैं। अब कैसा अर्थ हुआ यह बात वस्तु होने नहीं बताया। जानने देखने की ही क्रिया हुई या मूर्तपनेकी परिणतिकी क्रिया हुई यह बात वस्तुत्वमें नहीं बनी हुई है, किन्तु सामान्यतया यह बताया गया कि जिसमें अर्थक्रिया हो सो वस्तुत्व गुणके कारण पदार्थकी अर्थक्रिया होती है। तो यह भी एक साधारण गुण है और इस गुणसे द्रव्य सामान्यकी व्यवस्था बनायी गई है।

द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व व प्रदेशवत्त्व गुणसे भी द्रव्य सामान्यकी सिद्धि— तीसरा साधारण गुण है द्रव्यत्व गुण। जिस गुणके कारण पदार्थ निरन्तर परिणमता रहे उसे द्रव्यत्व गुण कहते हैं। यह गुण भी सब द्रव्योंमें समानरूपसे पाया जाता है। सभी पदार्थ तभी हैं रह पाते हैं जबकि वे प्रतिसमय परिणमन किया करते हैं। तो द्रव्यत्व गुणसे भी सभी द्रव्य समानरूपसे विदित हुए। चौथा गुण है अगुरुलघुत्व गुण जिस गुणके कारण पदार्थ अपने स्वरूपमें ही परिणमता है, पर पदार्थके स्वरूपमें नहीं परिणमता। इस अगुरुलघुत्व गुणके कारण द्रव्यकी व्यवस्था बनी है। यदि कोई पदार्थ पर पदार्थके रूपसे परिणमने लगे तो इसका अस्तित्व नहीं रह सकता। इस कारण अगुरुलघुत्व गुण है ही पदार्थमें, जिससे कि वह अपने स्वरूपमें ही परिणमता है, परस्वरूपसे नहीं परिणमता, किन्तु यह गुण समस्त द्रव्योंमें पाया जाता है, इस गुण के कारण द्रव्यमें विभाग न हो सके कि यह जीव है, यह पुद्गल है आदिक तो अगुरुल-घुत्व गुण भी साधारण गुण है। ये चारों गुण समझमें आनेपर भी अभी द्रव्य कुछ समझा नहीं गया, क्योंकि किसमें कहाँ निरखे यह गुण। तो उसके लिए प्रदेशवत्व गुण मदद देता है। प्रदेशवत्व गुणके प्रसादसे प्रत्येक पदार्थ प्रदेशवान रहता है। जैसे कि अभी जीवको ऐसा अनुभव होता कि यह शरीर प्रमाण विस्तारमें है, तो है वह एक जीव लेकिन इतने विस्तारमें है तो प्रदेशरूप तो समझमें बात आने लगी ना। कोई पदार्थ एक प्रदेश भी है तो अर्थ यह हुआ कि उसका विस्तार नहीं है। न रहा विस्तार

पर प्रदेश तो वहाँ भी है जहाँ गुण समझे जा रहे हैं। तो प्रदेशवत्व गुणके कारण पदार्थोंमे प्रदेशवत्वकी व्यवस्था हुई, यह भी साधारण गुण है। इससे द्रव्योमे विभाग न बन सका।

प्रमेयत्व गुणसे द्रव्य सामान्यकी सिद्धि—छठा साधारण गुण है प्रमेयत्व गुण। जो ज्ञानमे ज्ञेय रह सके उसे प्रमेयत्व कहते हैं। यहाँ एक जिज्ञासा हो सकती है कि प्रमेयत्व गुणकी आवश्यकता क्या हुई थी? पदार्थका अस्तित्व बन गया। अब ज्ञानमे आये अथवा न आयें यह बात कोई अलग ही हुई। प्रमेयत्व न भी हो, तो पदार्थोंका अस्तित्व तो बन ही गया, किन्तु यह जिज्ञासा स्वरूप दृष्टिसे शान्त हो जायगी। जो सत् है वह प्रमेय ही होता है। असत् प्रमेय नही होता। और, जो सत् है वह नियमसे प्रमेय ही होगा। अप्रमेय नही रह सकता। जिसका ज्ञान विशुद्ध है निरावरण है तो ज्ञानकी ओरसे यह कला प्रकट हुई है कि जो भी सत् है वह ज्ञानमे आयगा। तो सर्व सत्को ज्ञेय होना ही पड़ा। न हो ज्ञेय तो वह सत् ही नही रह सकता। भले ही कुछ छद्मस्थोमें यह विभाग किया जायगा कि साधारण ५ गुण ही मान लेना, प्रमेय न मानना तो ऐसे अनेक पदार्थ हैं जो छद्मस्थके ज्ञानमे नहीं आ रहे, नही आ रहे फिर भी वे पदार्थ हैं तो वह एक सावरण ज्ञानकी बात है। और चाहे इस प्रकार भेद डाल लें, पर वस्तुमे वस्तुकी ओरसे यह भेद न करेगा। प्रत्येक वस्तुमे प्रत्येक गुण है। चाहे उसे कोई गुण न भी जान सके, मगर गुण प्रमेय है ही निरावरण ज्ञान होनेपर। पर पुरुष शरीर प्रमेयको प्राप्त कर सकता है। यो ६ साधारण गुणोसे द्रव्य सामान्यकी व्यवस्था होती है।

असाधारण गुणोंसे द्रव्यविशेषकी सिद्धि—पदार्थमे जो विशेष गुण पाये जाते हैं उनसे द्रव्य विशेषकी सिद्धि होती है। यदि विशेष गुण न हो तो वहाँ सामान्य गुण भी नही ठहरता और सामान्य गुण होना जैसे विशेष गुण होनेके लिए आवश्यक है इसी प्रकार विशेषगुण होना सामान्य गुण बनाये रखनेके लिए आवश्यक है। सामान्य गुणोसे जैसे द्रव्य सामान्यकी सिद्धि होती है उसी प्रकार विशेष गुणोसे द्रव्य विशेषका विभाग बनता है। जैसे कि जहाँ चैतन्य पाया जाय वह जीव है। जहाँ मूर्तपना पाया जाय कि पुद्गल है, जहाँ गति हेतुता है वहं धर्म द्रव्य है। जहाँ स्थिति हेतुता है वह अधर्म द्रव्य है। जो अवगाहन हेतु है वह आकाश द्रव्य है। जहाँ परिणमन हेतुपना है वह काल द्रव्य है, तो इन विशेष गुणोके द्वारा विशेष द्रव्यका विभाग बन जाता है और द्रव्य विशेष अथवा विशेष गुण होना यह अर्थक्रियाके लिए आवश्यक है। सामान्य गुण अर्थक्रियामे सहयोगी तो है पर विशेष गुण हुए बिना किस प्रकारकी क्रिया होगी किस पदार्थमे यह बात बन ही न सकेगी। इस कारण अर्थक्रिया होनेमे विशेष गुणके अस्तित्वका बहुत बड़ा सहयोग है।

संदृष्टिः सदिति गुणः स यथा द्रव्यत्वसाधको भवति ।
अथ च ज्ञानं गुण इति द्रव्यविशेषस्य साधको भवति ॥१६३॥

उदाहरणपूर्वक साधारण गुणोंसे द्रव्यसामान्यकी व असाधारण गुणोसे द्रव्य विशेषकी सिद्धिका प्रतिपादन—इसी उक्त तथ्यको उदाहरणपूर्वक इस गाथा में दिखाया जारहा है कि जैसे सत् यह गुण सामान्यद्रव्यका साधक है अर्थात् अस्तित्व है, इतने मात्रसे द्रव्य सामान्यकी सिद्धि है कि है कुछ। और जब कहा ज्ञान गुण है तो यह ज्ञानगुण द्रव्यविशेषका साधक है अर्थात् ज्ञानगुण कहनेसे एक जीव द्रव्यकी सिद्धि होती है। जिसमें ज्ञानगुण है वह क्या है ? उत्तर मिलेगा—कोई भी पदार्थ। तो यों अस्तित्व गुण द्रव्यत्वका साधक है बस है कोई द्रव्य। और विशेष गुण जैसे कि ज्ञान गुण कहा तो वह किसी द्रव्य विशेषका ही साधक है अर्थात् जीव। तो प्रत्येक पदार्थ अपना अपना स्वरूप रखता है। वह स्वरूप विशेष गुणसे ही विदित होता है। तो यों विशेष गुण एक द्रव्य विशेषका साधक है और सामान्य गुण द्रव्य सामान्यका साधक है। इस तरह गुणोंमें भेद है कि कोई गुण साधारण है और कोई गुण असाधारण है। अब उत्पादव्ययकी बात देखी जाय तो द्रव्यसे गुण अलग नहीं है और द्रव्य मे उत्पादव्यय होता ही है। इसमें विवाद न रहा तो भेददृष्टिसे परखे गये जो गुण हैं उनमें भी उत्पादव्यय माना जा सकता है। यह हुआ अशरूपसे और वह द्रव्य हुआ एक समस्त रूपसे। तो जब उत्पादव्यय माना है तो विशेष गुणमें है या साधारण गुणमे। यहाँ भी विशेष गुण और साधारण गुण पृथक नहीं हैं। वस्तु एक है, उसके ही परखनेके लिए गुण बताये गए हैं। उन सब गुणोंमें यह विभाग बनायें कि कुछ गुण ऐसे हैं जो सब द्रव्योंमें पाये जा सकते। किसी एकका अस्तित्व सबमे नही पाया जाता, मगर अस्तित्व गुण जैसे एकमें है वैसे ही दूसरेमें है। कहीं अस्तित्व गुण एक हो, दुनियामें सर्वव्यापक हो और वह फिर सब पदार्थोंमे पाया जाता हो ऐसा नहीं है किंतु सभी पदार्थ सत् हैं इस बातको जाहिर करने वाला जो अस्तित्व गुण है, वह सब द्रव्यों में समान है, इसलिए इसे सामान्य गुण कहते हैं। जो समानमें हो उसे सामान्य कहते हैं। कहीं अद्वैत एक न बन जायगा कि कोई-एक सद्ब्रह्म हो और वह सबमें पाया जाता हो। तो उत्पादव्यय कह ही चुके। साधारण और असाधारण गुण प्रत्येक पदार्थ के उसमे ही हैं। तो जहाँ द्रव्यमें उत्पाद हो तो सभी गुणोंमें उत्पाद समझ लीजिए और जैसे द्रव्य शाश्वत् हैं इसी प्रकार सभी गुणोंको शाश्वत् समझना चाहिये।

उक्तहि गुणानामिह लक्ष्यं तल्लक्षणं यथाऽऽगमतः ।
सम्प्रति पर्यायाणां लक्ष्यं तल्लक्षणं च वक्ष्यामः ॥१६४॥

पर्यायोंका लक्षण कथन करनेका सकल्प—यहाँ तक गुणोंका लक्ष्य और

लक्षण कहा गया। गुणोंका लक्षण क्या है यह भी बताया और गुणोंका लक्ष्य क्या है, अर्थात् गुणोंके परिज्ञानसे पहिचानना किसको है यह भी बताया गया है। अब गुणोंका लक्ष्य क्या है ? पदार्थ। कोई अवक्तव्य अखण्ड द्रव्य, उसे ही तो समझनेके लिए भेद दृष्टिसे अंश करके गुणोंकी बात कही जाती है। और गुणोंका लक्षण क्या हुआ ? तो यह सब कहा ही गया है और साधारण असाधारण प्रकाररूपसे भी गुणोंके विषयमें प्रकाश डाला है। अब उन गुणोंकी कोई न कोई अवस्था होती ही है, उन्हें कहते हैं पर्याय। जब अभेद दृष्टिसे देखते हैं तो वह है एक द्रव्यकी एक पर्याय। और, जब भेद दृष्टिसे देखते हैं तो उसमें जितने गुण विदित किए गए उन गुणोंकी पर्याय। किसी भी रूपसे देखें पर्यायका स्वरूप है अवस्था परिणमन, व्यक्ति। सो अब पर्यायोंका लक्ष्य और लक्षण कहते हैं।

क्रमवर्तिनो ह्यनित्या अथ च व्यतिरेकिणश्च पर्यायाः।
उत्पादव्ययरूप अपि च ध्रौव्यात्मकाः कथञ्चिच्च ॥ १६५ ॥

क्रमवर्तिता व अनित्यताके परिचय द्वारा पर्यायोंका लक्ष्यीकरण— पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं अर्थात् गुणोंकी तरह एक साथ रह सकें ऐसा नहीं है, क्योंकि पर्यायें समयानुसार उत्तरोत्तर नवीन-नवीन होती रहती हैं। तो एक पर्यायमें दूसरी पर्याय होती ही नहीं, समझ ही नहीं पाता, अवसर ही नहीं मिलता। तो सब पर्यायें एक साथ द्रव्यमें कैसे पायी जा सकती हैं ? वे क्रमसे ही होती हैं। क्रमवर्ती कहकर यह अर्थ न लेना कि जिस क्रमसे होना नियत है उस क्रमसे ही होता है। ऐसा अर्थ यहाँ विवक्षित नहीं है, किन्तु पर्यायोंकी तरह एक साथ नहीं हुआ करता है पर्यायें एक द्रव्यमें, इस बातको समझनेके लिए क्रमवर्ती शब्द कहा है, तो पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं। पर्यायोंका कोई एक ही विशेषण सोचा जाय तो उस ही विशेषणसे पर्यायके सब विशेषण जान लिए जाते हैं। यहाँ दूसरा विशेषण दिया गया है कि पर्यायें अनित्य होती हैं। तो क्रमवर्ती जो होंगी वे अनित्य होंगी ही। क्रमवर्ती विशेषणसे ही जाहिर हो जाता है कि पर्यायें अनित्य हैं। जब क्रमसे हुआ तो तब हुआ, तब उत्पाद है। जब न था तब न था। अगली समयमें और कुछ होगा तो इसका विनाश है तो यो अनित्य होना उस पहिले विशेषणसे ही ध्वनित हो जाता है, फिर भी विशेष स्पष्टीकरणके लिए यहाँ विशेष दिया है कि पर्यायें अनित्य हैं।

व्यतिरेकिता, उत्पादव्ययमयता व कथंचित् ध्रुवताके परिचय द्वारा पर्यायोंका लक्ष्यीकरण— पर्यायें व्यतिरेकी हैं। यह विशेषण भी पूर्व कहे गए विशेषणोंसे अपने आप ध्वनित हो जाता है। फिर भी स्वरूप विशद बनानेके लिए यहाँ विशेष लिया है। व्यतिरेकीका अर्थ है भिन्न-भिन्न होना, पूर्वपर्यायका स्वरूप जुदा है,

उत्तर पर्यायका स्वरूप जुदा है। पूर्व पर्यायमें उत्तर पर्याय नहीं, उत्तर पर्यायमें पूर्व पर्याय नहीं। इस तरह ये पर्यायें व्यतिरेकी हैं, भिन्न-भिन्न हैं। देखिये! जो क्रमवर्ती होगा वह भिन्न तो होगा ही। तो क्रमवर्तीके कहनेसे व्यतिरेकी सिद्ध हो जाता है। जो अनित्य हुये वे व्यतिरेकी होंगे, फिर भी अनित्यके साथ व्यतिरेकीपनेकी व्याप्ति स्पष्ट न होनेसे इसे अलगसे कहा है कि पर्याय व्यतिरेकी होती हैं। और, चौथा विशेषण कह रहे हैं कि पर्यायें उत्पादव्ययरूप हैं, नाना पर्यायोंका उत्पाद, पूर्वपर्यायका व्यय होना, यह बात प्रतिसमय पदार्थमें चलती ही रहती है। यों वे पर्यायें कथंचित् ध्रौव्य स्वरूप होती हैं। ध्रौव्य किस तरह हुई? पर्यायें नवीन नवीन हुई, बदली गई पर कोई पर्याय शून्य न रही। कितने ही परिणमन होनेपर भी पर्याय तो रही ही। पर्यायपना मिटता नहीं इस कारणसे पर्याय कथंचित् ध्रुव होती हैं।

तत्र व्यतिरेकित्वं प्रायः प्रागेव लक्षितं सम्यक्।
अवशिष्टविशेषमितः क्रमतः संल्लक्ष्यते यथाशक्ति ॥ १६६ ॥

पर्यायोंके लक्षणोंका संक्षिप्त परिचय—ऊपरकी गाथामें जो पर्यायोंके लक्षण में ४-५ विशेष दिए गए हैं उनमें व्यतिरेकीपनेका तो वर्णन पहिले बहुत आ चुका है। अब शेष रहे क्रमवर्ती अनित्य उत्पादव्ययस्वरूप और कथंचित् ध्रौव्य इन विशेषणोंका वर्णन किया जायगा। यद्यपि इन विशेषणोंमेंसे कोई भी एक विशेषण कहा जाय इतने मात्रसे पूर्ण बोध हो जाता है। जैसे जिस मनुष्यके सम्बंधमें लोगोंको विशेष परिचय है उस मनुष्यमें विशेषतायें अनेक हैं रिस्ते भी अनेक हैं, पर एक ही बात कहते ही वह पूरा मनुष्य परिचयमें आ जाता है, तो इसी प्रकार जो द्रव्य गुण पर्यायोंके सम्बंध में विशेष जानकारी रखता है ऐसे पुरुषोंको कोई भी एक शब्द बोला जाय तो उससे उस जातिकी बात जितनी भी है, उस ज्ञानीको विदित है, वह सब उसके ज्ञानमें आ जाता है। जब कहा कि पर्यायें व्यतिरेकी हैं कोई कथन मात्रसे क्रमवर्ती होना, अनित्य होना, उत्पादव्यय स्वरूप होना यह सिद्ध हो जाता है और व्यतिरेकी है, ऐसा कहनेसे यह तो नहीं ज्ञात किया गया कि वह ऐसा परस्पर भिन्न है कि वह होकर मिट जाय और दूसरा कुछ न हो ऐसी भी नौबत आ सके, ऐसा नहीं होता। पर्यायोंके व्यतिरेकीपन समझनेके बावजूद भी यह बात ज्ञानीके परिचयमें बैठी रहती है कि पर्यायें तो कथंचित् ध्रुव हैं, कोई न कोई पर्याय रहती है। पर्याय सामान्यकी अपेक्षा नित्य है, व्यतिरेकी है, अतएव क्रमवर्ती है। व्यतिरेकी है अतएव अनित्य है। व्यतिरेकी है अतएव उत्पाद व्यय स्वरूप है, फिर इन सब विशेषणोंके कहनेकी आवश्यकता क्यों हुई? इसके दो कारण हैं—एक तो विशेष प्रतिपादन करना, दूसरी बात सूक्ष्म रूपमें इसमें परस्पर व्याप्ति भी नहीं है। जो व्यतिरेकी हो वह क्रमवर्ती ही हो यह बात स्पष्ट नहीं होती। गुणोंके स्वरूप हैं। तो प्रत्येक गुण अपने अपने स्वरूपको लिए हुए हैं। और एक गुणमें

दूसरे गुणका व्यतिरेक है, भिन्न भिन्न उनका स्वरूप है, व्यतिरेकपन तो गुणोंमे आयगा लेकिन गुण क्रमवर्ती हों यह बात नहीं आती। गुण सभी सहकारी होते है। इस तरह गुण व्यतिरेकी हैं ऐसा कहनेसे अनित्य ही है, यह बात स्पष्ट जाहिर नही होती। जो दार्शनिक पदार्थोंको ध्रुव मानते और अनेक पदार्थ मानते—जैसे कि विशिष्टाद्वैतवाद में पदार्थ अनेक हैं और वे अद्वैत स्वरूप हैं, ध्रुव हैं तो व्यतिरेकी तो वे होंगे ही क्योंकि अनेक हैं और अपने स्वरूपको लिए हुए हैं। तो इतने मात्रसे अनित्यकी बात नहीं जाहिर होती। जब अनित्य जाहिर न हो तो उत्पादव्यय कैसे जाहिर हो ? और जो व्यतिरेकी हैं वे सभी ध्रुव हों यह बात नही बनती। जैसे क्षणिकवादमें पदार्थ व्यतिरेकी हैं लेकिन ध्रुव नही हैं तो यही सब विवादोंका सम्बन्ध करनेके लिए पर्यायोके इन सब विशेषणोंकी बात कही जा रही है और उनमेंसे व्यतिरेकीपनकी बातपर तो बहुत प्रकाश डाला जा चुका है। अब क्रमवर्तीपनेके सम्बन्धमें प्रकाश डाला जायगा।

अस्त्यत्र य प्रसिद्धः क्रम इति धातुश्च पादविक्षेपे।
क्रमति क्रम इति रूपस्तस्य स्वार्थानतिक्रमादेषः ॥ १६७ ॥

वर्तन्ते ते नयतो भवितुं शीलास्तथा स्वरूपेण।
यदि वा स एव वर्ती येषां क्रमवर्तिनस्त एवार्थात् ॥ १६८ ॥

पर्यायोंकी क्रमवर्तिताका प्रतिपादन—इन दो गाथाओंमें क्रमवर्तीका लक्षण बता रहे हैं। क्रम शब्दमें क्रम धातु मिली है। क्रम धातुका अर्थ है पादविच्छेद। पादविच्छेदका मतलब है कदमोंका धरना। चूंकि कदमोंका धरना क्रमसे भी होता है अतएव क्रम धातुका अर्थ है क्रमसे गमन करना। गमन करनेका भाव है यहाँ होना। क्रमसे होनेका नाम है क्रम धातुका अर्थ। उस ही धातुसे क्रम शब्द बना है। तो क्रम धातुका जो अर्थ है उसका उल्लंघन न करके यहाँ क्रमवर्ती शब्दमे क्रमका भाव लिया गया है अर्थात् जो क्रमसे वर्तन करे यानि क्रमसे होवे उसे क्रमवर्ती कहते है। पर्यायें सभी क्रमसे होती हैं क्योंकि पर्यायें हैं कालस्वरूपसे सम्बन्ध रखने वाले तत्त्व। तो काल होता है क्रमसे। प्रत्येक समयमें जो जो अवस्थायें होती रहती हैं उनको पर्यायें कहते हैं। तो ये पर्यायें क्रमसे होंगी। एक अखण्ड द्रव्यमें जो पर्याय है वह अखण्ड है, ऐसा मानकर देखें तो प्रत्येक समयमें उस उस अखण्ड द्रव्यका परिणमन होता है। तो जो भी परिणमन होता है वह पर्याय है। ये पर्यायें क्रमसे हुआ करती हैं अतः इन्हें क्रमवर्ती कहते हैं। भेददृष्टिसे निरखनेपर वही द्रव्य गुणों रूपमें दीखा और जब पर्यायें दीखीं इस ही भेद दृष्टिके प्रसङ्गमें जो प्रत्येक गुणकी एक एक पर्याय हुई। ये पर्यायें प्रत्येक गुणकी प्रति समयमें होती रहती हैं। दूसरे समयकी पर्याय पहिले समयकी पर्याय नष्ट होते समय होती है। यों पूर्व पूर्व पर्यायें नष्ट होती हैं उत्तर पर्यायें उत्पन्न

होती हैं। यों अनन्त पर्यायें क्रमबद्ध होती हैं तो उनको क्रमवर्ती कहते हैं। अथवा इस प्रकारका भी अर्थ करते है कि क्रम स्वरूपसे होनेका जिनका स्वभाव है उन्हें क्रमवर्ती कहते हैं। क्रमवर्ती शब्दसे सहभावी गुणोंकी प्रतिपक्षता बताई गई है। गुण सहभावी हैं। एक साथ उनका होना है, उनका अस्तित्व है। इनका अस्तित्व क्रमसे होता है। इस ही क्रमवर्ती शब्दके भेदसे अब अगली गाथामें स्पष्ट करते है।

अयमर्थः प्रागेकं जातं समुच्छिद्य जायते चैकः।
अथ नष्टे सति तस्मिन्नन्योऽप्युत्पद्यते यथा देशः॥ १६९॥

पर्यायोंकी क्रमवर्तिताका स्पष्टीकरण—पर्यायें क्रमवर्ती हैं, इसका अर्थ यह है कि पहिले एक पर्याय उत्पन्न हुई फिर उसका नाश होकर दूसरी पर्याय हुई, फिर दूसरेका भी नाश होकर अन्य पर्याय (दूसरी पर्याय) हुई। इस प्रकार पूर्व-पूर्व पर्याय नष्ट होनेपर उत्तर-उत्तर पर्याय होती जाती है, इसीका नाम क्रमवर्ती है। अब इस क्रमवर्तीपनेको अभेद दृष्टि और भेद दृष्टिसे देखा जा सकता है। अभेद दृष्टिसे निरखनेपर अनन्त गुणोंका अभिन्न पिण्ड जिसे एक देश जाना गया था, तो वह पदार्थ जिस अवस्था सम्पन्न जब जब होता है उसको नजरमें रखकर यह कह सकते हैं कि एक समयका देश दूसरे समयसे भिन्न है। तो अवस्थाभेदसे उस एक पदार्थमें भिन्नता आती है, वहाँ समूची एक पर्याय मिट गई है और भेद दृष्टिसे निरखनेपर जितने गुण जाने गए उतनी ही पर्यायें और एक समयमें ऐसी अनेक पर्यायें हैं वे तिर्यक रूपमें व्यतिरेकी हैं। लेकिन पर्यायोंका स्वरूप कालकी अपेक्षा होता है। अतः प्रति समयमें वे ही अनेक पर्यायें पूर्व पूर्व पर्याय नष्ट होकर उत्तर-उत्तर पर्यायें होती हैं। यों काल-क्रमकी अपेक्षा ये पर्यायें परस्पर भिन्न हैं। यों अभेद दृष्टि व भेद दृष्टि दोनोंसे निरखने पर पर्यायोंका क्रमवर्तीपना सिद्ध होता है।

ननु यद्यस्ति स भेदः शब्दकृतो भवतु वा तदेकार्थात्।
व्यतिरेकक्रमयोरिह को भेदः पारमार्थिकस्त्विति चेत्॥ १७०॥

शङ्काकार द्वारा व्यतिरेक और क्रममे अर्थभेदके अभावकी आरेका—अब यहाँ शङ्काकार एक शङ्का रख रहा है कि व्यतिरेकीपन और क्रमवर्तीपनमें शब्द भेद ही माना जाय तब तो यह बात ठीक बनती है। रहो, क्योंकि दोनोंका एक ही अर्थ है। क्रमसे होता है तो जो क्रमसे हो रहे हैं पूर्वपर्याय नष्ट हो उत्तर पर्याय उत्पन्न हो तो वे पर्यायें अभिन्न ही तो हैं। उनमें व्यतिरेक है। तो व्यतिरेकपन और क्रमवर्ती पन दोनोका एक ही अर्थ होनेसे शब्दभेद माना जाय तब तो ठीक लग रहा है और यदि दोनोमे अर्थभेद माना जाता तो यह बतलावो कि वास्तवमें क्रमवर्तीपन और

व्यतिरेकीपन इन दोनोंमें अन्तर क्या है ? इस शङ्काका भाव यह है कि यहाँ क्रमवर्तीपन और व्यतिरेकीपनमें अन्तर पूछा गया है । अब इस शङ्काका उत्तर देते हैं ।

तन्न यतोऽस्ति विशेषः सदंशधर्मे द्वयोः समानेपि ।
स्थूलेष्विव पर्यायेष्वन्तर्लीनाश्च पर्ययाः सूक्ष्माः ॥ १७१ ॥

लौकिक दृष्टान्तपूर्वक व्यतिरेक और क्रममें अर्थभेदका दिग्दर्शन—शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि व्यतिरेक और क्रमवर्ती दोनो यद्यपि एक सत्के अंशरूप धर्म हैं और एक ही पदार्थके अंशरूप धर्मोंकी समानता है फिर भी इन दोनोंमें अन्तर है, अथवा यह कहो कि पूर्व समयवर्ती पर्याय और समयवर्ती पर्याय ये दोनो कालकृत अंश हैं । इन अंशोंमें समानता है अर्थात् एक स्थूल दृष्टिसे प्रतिसमय होने वाली पर्यायो में असमानता नजर नहीं आती, किन्तु कुछ अनेक पर्यायोके गुजरनेके बाद इसमे असमानता दृष्टिगोचर होती है । जैसे कोई बालक एक वर्षमे चार इंच वृद्धिको प्राप्त होता है तो भले ही १ वर्षमें या ६ माहमें समझमे आ जाता है कि यह बालक पहिले से कुछ बढ गया है लेकिन बढ तो रहा है वह प्रति मिनटमे । यदि प्रतिमिनटमे न बढता होता तो उन मिनटोका समूहरूप एक वर्ष है, उसमे भी बढना नहीं बन सकता । सो प्रति मिनटमें बढनेपर भी उस बालककी लम्बाईमें क्या असमानता विदित होती है ? नहीं । समानता नजर आती है । तो यों पूर्व समयवर्ती पर्याय और उसके निकट की उत्तरवर्ती पर्याय इन दोनोंमें समानता है, पर समानता होने पर भी अन्तर है, विशेषता यह है कि असमानता विदित नहीं हो पा रही, दृष्टिगोचर नहीं हो रही, तब भी युक्ति यह बतलाती है कि पूर्वसमयकी पर्यायसे उत्तर समयकी पर्याय भिन्न है । यदि इन दोनो पर्यायोंमें व्यतिरेकीपना न हो ऐसी अनेक पर्यायें होनेपर भी विसदृश परिणमन नजर न आने चाहिए । जैसे कि प्रति मिनटमे बालककी वृद्धि न मानी जाय तो एक वर्षमें भी वृद्धि न बन सकेगी । यों ही यदि पूर्व समय और उत्तर समयकी पर्यायमे व्यतिरेक न माना जाय तो अनेक समयोकी पर्याय गुजरनेके बाद एक एक दम विसदृश पर्याय नजर आ जाती है यह विसदृश यह व्यतिरेक भी न होना चाहिए । जिस प्रकार स्थूल पर्यायोंमें सूक्ष्म पर्यायें अन्तर्लीन हो जाती हैं और ऐसा होनेपर भी उन सूक्ष्म पर्यायोंमें लक्षण भेदसे भेद है यह बात समझमे आ जाती उसी प्रकार सर्वत्र यही बात समझना चाहिए कि सर्व पर्यायोमें चाहे सदृशता न जाहिर होती हो तब भी व्यतिरेक है ।

उदाहरण पूर्वक व्यतिरेक व क्रममें अर्थभेद रहनेका प्रतिपादन—विसदृशताकी बात यहांमें विभाव पर्यायोंकी नहीं जाती जहाँ कि विसदृशता दृष्टिगोचर हो जाती है, किन्तु जहाँ स्वभाव परिणमन हो रहा है ऐसे नित्य शुद्ध पदार्थोंमें और

उपाय शुद्ध पदार्थोंमें परमात्मामें जो स्वभाव पर्यायें होती रहती हैं वे सब सदृशरूप हैं, इतनेपर भी पूर्व समयकी पर्यायसे उत्तर समयकी पर्यायमें व्यतिरेक है; व्यतिरेक गुण बिना पर्याय न बन सकेगी। और पर्यायोंके हुए बिना द्रव्यका सत्व न रह सकेगा। तो यों प्रत्येक समयकी पर्यायोंमें परस्पर व्यतिरेक है। क्रमवर्ती शब्द कहने पर भी यह व्यतिरेक अर्थ ध्यानमें नहीं आता। क्रमवर्ती शब्दका अर्थ इतना ही है कि, क्रमसे होता है। तो जिस शब्दसे जो अर्थसे जो शब्द ध्वनित होता है उस शब्दका उतना ही अर्थ आता है। तो क्रमवर्तीसे क्रमवर्तीपना ही विदित होता है। अब उनमें व्यतिरेक है, यह बात समझनेके लिए व्यतिरेकीपनेकी बात कही गई है। तो मोटेरूपमें यहाँ यह भाव समझना कि जैसे कहा जाता है ना कि स्थूल पर्याय चिरस्थायी है और इसी दृष्टिसे उस पर्यायको कथंचित् ध्रौव्यस्वरूप भी कहा है। जैसे मनुष्य पर्याय। कोई मनुष्य ८० वर्ष तक जीवित रहता है तो ८० वर्ष तक वह एक पर्यायमें रहा। मनुष्य पर्याय ८० वर्ष तक स्थायी रही, यह एक स्थूल दृष्टिसे निरखा गया। सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर तो वहाँ भी प्रतिसमय परिणमन होता रहा। लेकिन वे सूक्ष्म पर्यायें इस स्थूल मनुष्य पर्यायमें गर्भित हुई सो यों गर्भित हो जाय तो भी लक्षण भेदसे वे भिन्न-भिन्न हैं, एक ही मनुष्यभवमें प्रतिसमय जो बातें गुजरती हैं उनमें तो परस्पर व्यतिरेक है। यों व्यतिरेक और क्रमवर्तीमें लक्षणभेदसे भेद होता है। इसी बातको अब आगे बतायेंगे कि व्यतिरेक शब्दसे कौन सा मर्म परखा गया, जिससे कि यह समझा जा सके कि क्रमवर्तीपने विशेषणमें जो मर्म जाना गया है उस मर्मसे भिन्न है व्यतिरेकी शब्द द्वारा वाच्यमर्म। तो व्यतिरेकका स्वरूप जाननेपर यह स्पष्ट विदित हो जायगा कि क्रमवर्तीपनेका मर्म और है और व्यतिरेकीपनेका मर्म और है।

तत्र व्यतिरेकः स्यात् परस्परा भावलक्षणेन यथा।
अंशविभागः पृथगिति सदृशांशानां सतामेव ॥ १७२ ॥

तस्माद्व्यतिरेकित्वं तस्य स्यात स्थूलपर्ययः स्थूलः ॥
सोऽयं भवति न सोऽयं यस्मादेतावतैव संसिद्धिः ॥ १७३ ॥

व्यतिरेकका स्वरूप – व्यतिरेकका स्वरूप कह रहे हैं जिससे कि यह ज्ञात हो जाय कि क्रमवर्तीमें और व्यतिरेकमें अन्तर क्या है? उनमें परस्पर अभावके लक्षणसे अंश विभाग जाने जाते हैं और इसी विभावका नाम व्यतिरेक है, यह वह नहीं है इस चिन्हके द्वारा व्यतिरेकका परिचय होता है। व्यतिरेकका अर्थ है विभिन्न। परस्परमें पृथक। सो पर्यायोंमें ऐसा पार्थक्य है कि जो पूर्व समयवर्ती पर्याय है वह अन्य है उत्तर समयवर्ती पर्याय अन्य है, ऐसा यह भी नहीं है। इस चिन्हके द्वारा जो पार्थक्य विदित होता है उसको व्यतिरेक कहते हैं। एक समयवर्ती पर्यायका द्वितीय

नही और व्यतिरेकमें क्रम विवक्षित नही ।

ननु तत्र किं प्रमाणं क्रमस्य साध्ये तदन्यथात्वे हि ।
सोऽयं यः प्राक् स तथा यथेति य प्रक्तुनिश्चयादिति चेत् ।१७६।

क्रम और व्यतिरेककी सिद्धिमें प्रमाणकी पृष्टव्यता—अब शङ्काकार कहता है कि क्रम और व्यतिरेककी सिद्धि करनेमे क्या प्रमाण है ? जो पहिले था सो ही यह है, अन्तर कुछ जाहिर नहीं हुआ । पहिले भी यही निरूपण था और अब भी यही विश्लेषण किया जा रहा है । क्रम और व्यतिरेक ये केवल शब्दभेद हैं । बात एक ही कही जा रही है । पर्यायें एकके बाद एक होती हैं । जही भिन्नताकी बात है वही क्रमकी बात है । क्रमकी सिद्धिमें अथवा क्रम अन्य प्रकार है उस सिद्धिमे कोई प्रमाण नही है । यदि प्रमाण है तो बताओ । शङ्काकारने यह पूछा कि क्रमका स्वरूप और व्यतिरेकका स्वरूप किस युक्तिसे जाना जाता है जो हम आपके अनुभवमे भी उतरे ? उसी शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि—

तत्र यतः प्रत्यक्षादनुभवविषयाद्यथानुमानाद्वा ।
स तथेति च नित्यस्य न तथेत्यनित्यस्य प्रतीतत्वात् ॥ १७७ ॥

प्रमाण द्वारा क्रम और व्यतिरेककी मौलिक सिद्धि—यहाँ केवल दो बातें निरखना है एक नित्यपनेका ज्ञान हो और एक अनित्यपनेका ज्ञान हो तो उन्हीं बोधों क्रम और व्यतिरेकका ज्ञान हो तो उन्हीं बोधोमे क्रम और व्यतिरेकका स्वरूप जाहिर हो जाता है । जहाँ नित्यता है वहाँ व्यतिरेक घटित न होगा, जहाँ अनित्यता है वहाँ व्यतिरेक भी घटित होगा और क्रम भी घटित होगा । कदाचित् नित्यतामे व्यतिरेक घटित हो जाय पर क्रम तो घटित होता ही नहीं है । सो देखिये ! प्रत्यक्ष प्रमाणसे अपने अनुभवसे और अनुभवसे और अनुमान प्रमाणसे ये दोनों बातें सिद्ध होती हैं । यह उस प्रकार नही है, इस प्रकारके बोधसे तो अनित्यता जाहिर होती है । मनुष्य भव था, अब देवभव आया । यह देवभव मनुष्यभवकी तरह नही है । पहिले बालक था, अब जवान हुआ । यह जवान बालककी तरह नहीं है । यह उस प्रकार नहीं है, इस तरहकी जहाँ प्रतीति है वहाँ अनित्यता साबित होती है । यह उसका प्रकार है । जहाँ यह बात जाहिर होती है वहाँ नित्यपनेकी प्रतीति होती है । यह मनुष्य वही तो है । उदाहरणमें जो कुछ बताया जायगा तो पर्यायें बतायी जायेंगी । वो स्थूल पर्यायें तो नित्यताके दृष्टान्तमें ले लो और सूक्ष्म पर्यायको नित्यताके दृष्टान्तमें ले लो । वस्तुतः नित्यताके दृष्टान्तमें द्रव्य और गुण लिये जा सकते हैं । और अनित्यताके दृष्टान्तमें पर्यायें ली जा सकती हैं । तो पर्यायोंमें यह बात विदित हो रही है कि यह

नहीं है। भिन्न-भिन्न समयोंमें जितने परिणमन होते जाते हैं वे सब परस्पर भिन्न हैं। क्रमसे होते हैं और क्षणिक हैं। द्रव्य शाश्वत् हैं और वही है, उसमें बदल नहीं होता। जो बदलका अंश है वह यहां विवक्षित नहीं, किन्तु हमेशा रहता है द्रव्य और जिस स्वभाव रूपसे है उसी स्वभावरूप रहता है। जैसे जीव निगोद जैसी अवस्थाओंमें रहा जहां ज्ञानकी ओरसे देखा तो जोड सा लगता था कितना कर्मोंसे आवृत था, कितना कुयोनियोंमें घूमा लेकिन सदैव चित्स्वरूप रहा और उसका प्रमाण यह है कि छोटी योनियोंसे हटकर मनुष्य भवमें यही जीव आता है तो यहां विकास विदित होता है। तो स्वभाव यदि किसी समय मिट गया होता तो यह फिर कहांसे आता ? तो स्वभाव दृष्टिसे पदार्थ ही यह वही है। अनादि अनन्त वही है। उसमें बदल नहीं होता है। तो इस तरह यह उस प्रकार नहीं है इस बुद्धिसे अनित्यता विदित होती है। यह उस प्रकार ही है, इसमें नित्यता जाहिर होती है।

अयमर्थः परिणामि द्रव्यं नियमाद्यथा स्वतः सिद्धम्।
प्रति समयं परिणमते पुनः पुनर्वा यथा प्रदीपशिखा ॥१७८॥

स्वतः सिद्धि पदार्थके प्रतिसमय होने वाले परिणमनोंमें क्रमकी झलक-उपर्युक्त शंका और उत्तर के रूप में कहे गये प्रकरण का यह अर्थ है कि द्रव्य जिस प्रकार स्वतः सिद्ध है उसी प्रकार नियम से परिणामी भी है। परिणाम हुए बिना सत्त्व आ नहीं सकता। इस कारण जैसे कि पदार्थ स्वतः ही सत् है, किसी दूसरे की कृपासे, सम्बन्धसे, प्रभावसे सत् नहीं है, इसी प्रकार वस्तुमें परिणमनका स्वभाव सो परिणमनशील भी स्वतः है। किसी दूसरे पदार्थके सम्बन्ध से प्रभावसे परिणमनशीलता स्वतः है और इसी कारण ही अपनी कलासे निमित्त जो पाकर विभाव रूप परिणम गया। तो जैसे वस्तु स्वतः सिद्ध है उसी प्रकार परिणामी भी नियमसे है और स्वतः है, जैसे कि दीपक की शिखा बराबर परिणमन करती है इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ भी प्रति समय परिणमन करता है। यह दृष्टान्त लौकिक दृष्टान्त है, जैसे दीपककी लौ तो वही हैं जो घंटा भरसे जल रही है किन्तु दीपककी शिखा स्थिर नहीं रह पाती। थोड़े न थोड़े रूपमें उसमें तरंग मदता तीव्रता होती रहती है, तो जैसे वहां देख रहे हैं कि दीप शिखा प्रतिसमय परिणमन कर रही बारबार मंद तीव्र छोटी बडी आदिक रूपमें परिवर्तन कर रही है इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ भी प्रतिसमय परिणमता है। पदार्थमे जो अगुलंघुत्व नामक गुण है उस गुणके कारण पदार्थ प्रति समय अपनी षड्गुण हानि वृद्धिमें परिणमता है फिर उस हीके फलमें व्यक्तरूप नजर आता है, तो यहां तक यह निर्णय कराया कि पदार्थ स्वतः सत् है, स्वतः सिद्ध है, अतएव अनादि अनन्त है और अपने ही सहाय है, परिणमता है, अपने ही चतुष्टयसे सत्त्व है, अपने ही स्वरूप से है अतएव यह निर्विकल्प है, अखण्ड है, उसमें यहा दो

बातें देखिये—जान लेनेसे ये सब बातें गर्भित हो जाती हैं कि पदार्थ स्वतः सत् है और स्वतः ही नियम से परिणामी है।

इदमस्मि पूर्वं पूर्वभाव विनाशेन नश्यतोंशस्य।
यदि वा तदुत्तरोत्तर भावोत्पादेन जायमानस्य ॥१७६॥

पूर्वपर्यायका व्यय और उत्तर पर्यायका उत्पादन होने में व्यतिरेककी झलक—पूर्व पूर्व भावके विनाशके द्वारा जो किसी अंशका विनाश हो रहा है और उत्तर उत्तर भावके उत्पाद द्वारा जो किसी अंशका उत्पाद हो रहा है बस उस होका तो यह परिणमन कहलाता है। परिणमनका अर्थ है पूर्वभावके रूपसे तो विनाश हो जाना और उत्तर भावके रूपसे उत्पाद हो जाना। परिणमनमें वस्तु वही है, कुछ नवीन उत्पाद नहीं होता न वस्तुका विनाश होता, किन्तु उस ही सद्भूत पदार्थके किसी अंशकी व्यक्ति है तो पूर्व अंशका व्यय है अथवा आविर्भाव और विलीन शब्द से कहा जाय तो भी कह सकते हैं लेकिन इन शब्दों में एकान्त की गुंजाइश है, यों तो परिणामिकभाव आविर्भाव और तिरोभाव समान है। पदार्थ में अनन्तानन्त पर्यायें हर समय हैं, ऐसा उनका दर्शन है, उन पर्यायों में से किसी पर्यायका उत्पाद है और किसी पर्यायका तिरोभाव है। इस मंतव्यको यदि इस निगाह से देखा जाय कि द्रव्य होता है अनादि अनन्त इस कारणभूतकी सब पर्यायोंमें उस द्रव्यमें हुई थीं भविष्यकी सर्व पर्यायें इस द्रव्यमें होगी किन्तु जब यह दृष्टिमें लिया गया है कि द्रव्य अनादि अनन्त हैं, इतने लम्बे द्रव्यको निरखनेपर यों ही दिखेगा कि बस अनन्त पर्यायोंका समूह द्रव्य है तो जितनी विशालतासे द्रव्यको देखा, उसमें अनन्त पर्यायें मान ली गई, अब उन अनन्त पर्यायोंमेंसे एक पर्यायका अविर्भाव है और बाकी पर्यायोंका तिरोभाव है किसीका होकर तिरोभाव है किसी का न हुए तिरोभाव है ऐसी दृष्टिमें तो यह बात मानी जा सकती थी किन्तु पदार्थमें प्रतिसमय सर्वपर्यायें हैं, उनमें किसी का आविर्भाव है, किसी का तिरोभाव है, यह एक दृष्टान्त बन जाता है, इस कारण यहाँ उत्पाद और व्यय शब्दसे कहना होता है, जो चीज थी ही नहीं, जो चीज परिणमती न थी उसका उत्पाद और जो परिणति हुई थी उसका व्यय तो यों पदार्थ में पूर्व-पूर्व भावका विनाश और उत्तरभावका उत्पाद होता है और इसी उत्पाद व्ययसे यह सिद्ध होता है कि इन समस्त परिणमनोंमें परस्पर व्यतिरेक है।

तदिदं यथा स जीवो देवो मनुजाद्भवन्नथाप्यन्यः।
कथमन्यथात्वभावं न लभेत स गोरसोपि नयात् ॥ १८० ॥

उदाहरणपूर्वक पर्यायोंमें परस्पर अन्यथात्वकी (व्यतिरेककी)-सिद्धि

पूर्व-पूर्व भावका विनाश और उत्तर-उत्तर भावका उत्पाद होता है, इस सम्बन्धमें दृष्टान्त दे रहे हैं कि जैसे कोई जीव पहिले मनुष्य पर्यायमे था, अब मनुष्य पर्यायसे देव पर्यायमे आया तो यहां देव पर्यायके रूपसे उत्पाद हुआ और मनुष्य पर्यायके रूपसे विनाश हुआ, पर जीव वह एक ही है, जो कि इन अनेक पर्यायोंमें जा रहा है । फिर भी पर्याय सहित पदार्थको देखनेपर मनुष्य जीवसे देव जीव कथंचित् भिन्न है, क्योंकि अर्थ क्रिया, विचार शरीर आदिक सभी बातोंमें अन्तर है । एक चेतन वही है इस कारण वह एक है, पर पर्यायकी मुख्यतासे देखनेपर मनुष्य जीव अन्य है और देव जीव अन्य है, अथवा अजीव पदार्थका दृष्टान्त लो । जैसे दूधसे दही बना तो दूध अन्य है और दही अन्य है और तभी रसके परित्यागी दूधका त्याग करनेपर दहीके त्यागी कहने पर दहीके त्यागी नहीं कहलाते । तो स्वाद भी भिन्न है, गंध भी भिन्न है, स्पर्श भी भिन्न है सभी भिन्नतायें आ गईं, यो दूधसे दही कथंचित् अन्यथा है ऐसे ही समस्त पदार्थ जब पूर्वभवसे विनष्ट होते हैं और उत्तरभवको उत्पन्न होते हैं तब फिर उनका भी उत्पादव्यय इसी परिणमनरूप कहा जायगा । मूल भूत पदार्थ सर्व पर्यायोंमें हैं केवल एक पर्यायका उत्पाद व्यय अविर्भाव तिरोभाव होता है।

तिरोभाव व व्यय शब्दके लक्ष्य—तिरोभाव शब्दसे यहाँ व्यय को यों नहीं कहा कि तिरोभावका अर्थ यह है कि है, मगर ढका हुआ है, और ऐसा तिरोभाव साख्य सिद्धान्तमें व्यतीत हुई पर्यायोका भी है और पर्यायोमें हाने वाली पर्यायोंका भी है । बिना उनके तिरोभाव भविष्यमें होने वाली पर्यायमें लगानेकी बात और अधिक फिट बैठती है है और ढकी है, अब उसे उघाड दिया तो उसका अविर्भाव हो गया, लेकिन पदार्थमें ऐसी व्यवस्था नहीं है कि उसमें अनन्त पर्यायें एक साथ हुईं । यहाँ तो इसलिए कहा गया कि अनन्त पर्यायोका पिण्ड कि चूंकि द्रव्य अनादि अनन्त हैं और समूचे द्रव्य को समझना है जिससे अनादि अनन्तपना भी ज्ञात हो तो उस बोध के लिए अनन्त पर्यायोंका पिण्ड द्रव्य कहा गया द्रव्य तो प्रत्येक जब कभी भी देख लो एक पर्यायमे ही रहेगा, उसमें दो पर्यायें भी नहीं होती हाँ भेद दृष्टिसे एक समयमें जो अनन्त पर्यायें दिखी हैं, वे सब कल्पनाकी बातें हैं, भेद दृष्टिसे निरखनेकी बातें हैं, जैसे कि एक अखण्ड है उसे भेद दृष्टिसे देखनेपर अनेक गुण शक्तियाँ उसमे दृष्टिगत होती है पर परमार्थतः पदार्थ क्या है ? तो वह अवक्तव्य है एक स्वभावी है, एक सत् है और प्रतिसमय एक पर्यायमें रहता है, जो भी परिणमन हुआ उस पर्यायको हम भेद दृष्टिसे उपयोग किए बिना बोल नहीं सकते । अतएव वे निर्विकल्प हैं, यों पदार्थ स्वत. सिद्ध है और नियमसे स्वत. परिणामी है ।

सत्ता व परिणामिताका परस्पर अविनाभावित्व—कभी कल्पना करो कि पदार्थ सत् है. बस है से ही मतलब है परिणामी न माना जाय तो क्या हानि है ।

ऐसे अनेक दर्शन भी हैं कि जो वस्तुका अस्तित्व मानते हैं किन्तु परिणमन नही मानते। जैसे अद्वैतवादी, ब्रह्माद्वैतवादी मानते हैं कि है एक ब्रह्म, किन्तु वह परिणामी है, उसमें परिणमन नही होता ? तो परिणमन जब नही होता, तो उसका अस्तित्व समझना कठिन होता है। उसका अस्तित्व भी समझाते है और परिणमन नही होता यह भी मानते है तो इसके लिए फिर एक दूसरा तत्त्व "प्रकृति" मानना पडा कि उसमे परिणमन होता है, पर प्रकृतिमे कुछ भी परिणमन हो, प्रकृति अचेतन है, अचेतनके परिणमनसे कोई चेतन कैसे दु खी हो जाता है। चेतनमे जो दु खका परिणमन होता है उससे तो इसे परिणामी मानना होगा ? इस प्रश्नके उत्तरमे फिर यह बात कहनी पडती है कि दु खी चेतन नही हो रहा है। दु खी परिणमन भी प्रकृतिमे चल रहा है, लेकिन यह चेतन बुद्धि उस निश्चित अर्थको चेतती है। यह बुद्धि अचेतन है, क्योंकि वह प्रकृतिका धर्म है, लोकमे बुद्धिका जो निश्चय होता है ऐसे पदार्थको इस ब्रह्मने चेत लिया, बस चेतनाके कारण यह भ्रम होता है कि ब्रह्ममे दु.ख है। यो एक सीधी परिणमनशीलताको न माननेपर यो अनेक कल्पनायें करनी होती हैं जिनसे कोई विरोध भी नही बनता और न स्पष्ट कर्तव्यका भान हो पाता। प्रत्येक पदार्थ स्वत सिद्ध है और नियमसे स्वत. परिणामी है ऐसा माननेसे ही पदार्थकी व्यवस्था संगत होती है।

> ननु चैवं सत्यसदपि किञ्चिद्वा जायते सदेव यथा।
> सदपि विनश्यत्यसदिव सदृशा सदृशत्व दर्शनादितिचेत् ॥१८१॥

> सदृशोत्पादो हि यथा स्यादुष्ण परिणमन यथा वन्हिः।
> स्यादित्यसदृशजन्मा हरितात्पीतं यथा रसालफलम् ॥ १८२ ॥

वस्तुका ही उत्पादव्यय मान लेनेका शंकाकारका कथन—शङ्काकार कहता है कि ऐसा माननेसे कि पूर्व भवका विनाश और उत्तर भवका उत्पाद यह होता रहता है, इस सिद्धान्तमें तो यह ध्वनित है कि सत्की तरह असत् भी पैदा हो जाता है और असत्की तरह सत् पदार्थ भी नष्ट हो जाता है। अनेक घटनाओमे ऐसा विदित होगा कि उत्पन्न असत् होता है इसी प्रकार अनेक घटनाओमे यह विदित होता है कि असत् पदार्थ नष्ट हुआ और अनेक घटनाओमें यह विदित होता है कि सत् पदार्थ नष्ट हुआ। जैसे जहाँ परिणमन समान नजर आ रहा है वहाँ जो उत्पाद हो रहा है सो यह विदित हो रहा कि सत्का उत्पाद हो रहा। जो था, जो है वही उत्पन्न हो रहा कोई नया नही, और जहाँ असदृश विलक्षण पर्याय बन रही है वहाँ यो लग रहा कि जो न था उसका उत्पाद हो रहा। किसी किसीका समान उत्पाद

होता और किसीका असमान उत्पाद होता, कुछ यह जाहिर हो रहा कि देखो सत्की तरह असत् भी पैदा हो गया और असत् की तरह सत् भी पैदा हो गया, दृष्टान्त तो जैसे अग्नि बराबर जल रही है प्रतिसमय परिणम रही है, नवीन नवीन पर्यायें उसमें बन रही हैं तो क्या बन रहा है ? सत् ही बन रहा है ! कर्म बन रहा है कर्म कर्म ही होता चला जा रहा है तो वहाँ सत् ही तो उत्पन्न होता हुआ जा रहा है। कोई नई चीज तो नहीं बनती। अग्निमे ठंडापन आ जाय तो लगेगा ऐसा कि कोई उसमें नई चीज आ गई। तो अग्निका जो उष्णरूप परिणमन है वह उसका समान उत्पाद है और वहाँ विदित हो रहा कि सत्का ही उत्पाद हो रहा, असत्का नहीं। लेकिन कच्चा आम हो कोई और वह पकनेपर पीला हो गया तो वहाँ तो एकदम नई बात बन गई। हरा था पीला हो गया, जो न था सो हो गया। तो यों असत्का उत्पाद बन गया। तो नवीन नवीन पर्यायोकी उत्पत्ति होनेमे यह जाहिर हुआ कि कहीं तो जो था सो ही उत्पन्न हुआ और कहीं जो न था सो उत्पन्न हुआ। इसी तरह कहीं तो यह लगेगा कि जो न था सो ही नष्ट हुआ और कहीं यह लगेगा कि जो था सो नष्ट हो गया। तो प्रतिसमय वस्तुमे जो परिणमन हो रहा है उसमें उत्पन्न होना और नष्ट होना माना जाय तो यहाँ दोष आता है। इसलिए वस्तुमें उत्पादव्यय नहीं है, ऐसा मानकर फिर यह शङ्का नहीं उठ सकती। अब इस शङ्काका उत्तर देते हैं।

नैवं यतः स्वभावादसतो जन्म न सतो विनाशो वा।
उत्पादादित्रयमपि भवति च भावेन भावतया ॥ १८३ ॥

वस्तुकी नित्यता व भावसे भावान्तर होनेकी उत्पादव्ययरूपता बताते हुए शकाका समाधान—उपर्युक्त शंका ठीक नहीं है, कारण कि एक स्वाभाविक बात है यह कि न तो कभी असत्का जन्म होता है और न सत् पदार्थका विनाश होता है। सर्वत्र यही बात है कि कोई सत् है और अगले समयमें उसका कोई भावान्तर बन गया, कोई नवीन अवस्था ही बन गई पदार्थ तो वहीका वही बन रहा। तो जब पदार्थ शाश्वत् है, तो असत्का उत्पाद नहीं कहा जा सकता। आममें जैसे पहिले हरापन था अब पकनेपर पीलापन आया तो कुछ विलक्षण रग बन जानेसे लग रहा ऐसा कि देखो अब यहाँ असत्का उत्पाद हुआ। पीला था तो नहीं और बन गया। तो जो न था वह हो गया, किन्तु यह दृष्टि न दें कि कुछ न था और हो गया पीला। वो आममें आमकी ही सकल, अवस्था दूसरी हो गई। तो ऐसा कहीं भी नहीं होता कि असत्का उत्पाद हो जाय। यदि असत्का उत्पाद होने लगे, फिर तो जगतमें व्यवस्था ही कुछ न रहो। कुम्हार घड़ा बनायेगा तो उसे मिटटी लानेकी क्या जरूरत ? हिम्मत लडाया, बस असत्का उत्पाद होने लगा। होना होगा तो घड़ा हो जायगा क्योंकि वह तो असत्से होता है। तो कोई जगतमे व्यवस्था न बनेगा, कार्य कारणभाव

न रहेगा । इससे जानना कि कभी भी असत्का उत्पाद नहीं होता । इसी प्रकार सत्
पदार्थका कभी नाश नहीं होता । लग रहा ऐसा हरापन था देखो उसका नाश हो
गया, पर हरा तो कोई सत् नहीं है । वह तो एक आमकी अवस्था थी । आम तो नहीं
मिटा । तो सत्का कभी विनाश नहीं होता । प्रक्रिया यह चलती जाती है कि पदार्थ
अपने एक स्वरूपको छोडकर दूसरे स्वरूपमे आ जाता है । जो पदार्थ है ही नहीं वह
तो कहींसे भी नहीं आ सकता । और जो पदार्थ है वह कहीं नष्ट हो ही नहीं सकता ।
अत. यह निर्णय रखना चाहिए कि न तो असत्की उत्पत्ति है और न सत्का विनाश
है किन्तु पदार्थमे प्रतिसमय एक भावसे दूसरा भाव बन जाता है । वह क्या है ?
भावान्तर एक भावको छोडकर दूसरा भाव आना अथवा एक भावसे दूसरा भाव
प्रकट होना इसका अर्थ क्या है ? इसी बातको अब कहते हैं ।

अयमर्थः पूर्वं यो भावः सोऽप्युत्तरत्र भावश्च ।
भूत्वा भवनं भावो नष्टोत्पन्नो न भाव इह कश्चित् ॥ १८४ ॥

भावसे भावान्तरताका स्पष्टीकरण—जो पहिले भाव था वही उत्तर
भावरूप हो जाता है जो रगरूप शक्ति पहिले हरे रूपमे थी वही रूप शक्ति अब पीले
रूपमे हो गई । कुछ न था और हो जाय, ऐसा तो कहीं भी नहीं है । जहाँ इतना भी
विलक्षणपना नजर आ रहा है कि कहाँ तो पीला था और वह नई चीज बन गई तो
वहाँ भी कोई नवीन चीज नहीं बनी, भावसे भावान्तर ही हुआ । अथवा यो कहो कि
हो करके होनेका नाम भाव है । होकर होता जा रहा है उसे भाव कहते हैं और इस
दृष्टिमे नित्यका अर्थ यही बनेगा कि पदार्थके होते रहनेका नाश नहीं । होना सो
नित्य है । कोई नित्य अपरिणामी नहीं होता कि है, बस उसमे कोई परिणमन नहीं
यह एक नित्य एकान्तकी बात हो जायगी । अगर कोई पदार्थ परिणमनरहित है,
अपरिणामी कूटस्थ नित्य है तो उसका अन्दाज तो करो कौन सा पदार्थ जिसका कोई
व्यक्त रूप न समझमें आये इस पदार्थकी सत्ता ही क्या जानी जायगी ? कोई सत्
ऐसा होता ही नहीं कि जो अपरिणामी हो । तो नित्यपनेका भी यही अर्थ है कि
पर्यायें होते रहनेसे कभी भी व्यय नहीं होते, होते ही रहना, होकर होना, यह क्रम
जारी रहे इसका नाम है नित्य । लोक व्यवहारमे भी कहते कि भाई नित्यप्रति ऐसा
करो तो वह नित्य क्या चीज रही ? वह कोई एक बात रही । रोज रोज जारी
रहना, इसीका नाम लोकव्यवहारमे भी नित्य कहते हैं । तो नित्य यही है कि
परिणतियोका व्यय न होना, होकर होनेका नाम भाव है नष्ट और उत्पन्न
वाला कोई भाव नहीं होता । कोई सत् ऐसा नहीं जो नष्ट हो जाये अथवा न
उत्पन्न हो जाय, क्योंकि आकारका ही नाम भाव है । आकारका अर्थ यहाँ
किन्तु कोई भी अवस्था कोई भी संकल, उसका नाम आकार है । चाहे

भावरूप व्यक्ति हो और चाहे संस्थानरूप व्यक्ति हो, सभीका नाम भाव है। जैसे रूप रस गंध स्पर्शमें आम है, वह उसका भाव है, और जो संस्थान है, जितना गोल लम्बा जैसा कुछ है आम वह उसका आकार है। तो आकारका ही नाम भाव है। वस्तुका एक आकार बदलकर दूसरे आकाररूप हो जानेका नाम भावान्तर है।

"होकर होनेका नाम भाव है" इसका सम्बन्धित प्रकाश द्वारा स्पष्टीकरण—रूप रस गंध स्पर्श बदलकर दूसरे रूप हो गए रूप रस शक्ति वही है, तो इसीका नाम भावान्तर है। तो आममें कुछ दिन बाद जो पीला रूप हो जाता है तो केवल रूप नहीं बदला उसमें रूप रस गंध स्पर्श चारों बदले हुए हैं। पहिले कड़ा था अब नरम हो गया है, पहिले कुछ और तरहका गंध था अब और प्रकारकी गंध आती है। पहिले उसमें कोई दूसरा रस था अब कोई दूसरा रस आ गया, रूप, रस, गंध, स्पर्श और उसके संस्थान बनावा इन सबको मिलाकर आकार कहते हैं। तो आकारका नाम भाव है। एक आकार बदलकर दूसरा आकार होने इसका नाम भावान्तर है। प्रत्येक वस्तुमें प्रतिसमय एक आकारसे दूसरा आकार होता रहता है। इससे समझना चाहिए कि नवीन पदार्थोंकी उत्पत्ति नहीं होती, और न किसी सत् पदार्थका विनाश होता है। केवल एक अवस्थाएं बदलती रहती है। जो लोग अवस्थाओंको और अवस्था जिसमें होती है ऐसे उस सूक्ष्म सत्से भिन्न माना है उनको भी व्यवस्था बनानेके लिए किसी पदार्थको नित्य और किसी पदार्थको अनित्य मानना पड़ता है। जैसे इस जगतकी सृष्टि यह रचना कैसे हो रही है? तो आधार बताया जाता कि पुरुष और प्रकृति इन दोके मेलसे हो रही। पुरुष तो है अपरिणामी, प्रकृति है परिणामी। फिर जब यह प्रश्न आता है कि लो प्रकृति तो अब अनित्य हो गई तो वहां उत्तर देना पड़ता है कि प्रकृतिके भी दो रूप हैं अव्यक्तरूप और व्यक्तरूप। अव्यक्त तो ज्योंका त्यों कहलाता है और व्यक्त रूप बुद्धि, अहंकार इंद्रिय आदिक रूपमें बनता रहता है। तो चलो अब यहां प्रकृतिको नित्यानित्यात्मक मानना ही पड़ा, ऐसे ही पुरुष भी सत् है तो उसे भी नित्यानित्यात्मक मान लिया जाय तो झगड़ा लम्बा नहीं बनाना पड़ता। तो कोई भी पदार्थ जो है वह नष्ट नहीं होता। जो कुछ भी नहीं है वह उत्पन्न नहीं होता। उत्पाद व्ययका अर्थ तो होकर होनेका नाम है। इसलिए चाहे उत्पाद व्यय कहो और चाहे होकर होना कहो दोनों बातें एक अर्थके वाचक हैं। नवीनकी उत्पत्ति और सत्का विनाश वाला यहां उत्पाद व्यय अर्थ न लगाना। इसी बातको दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं।

दृष्टान्तः परिणामी जलप्रवाहो य एव पूर्वस्मिन्।
उत्तरकालेपि तथा जलप्रवाह स एव परिणामी ॥ १८५ ॥

"भूत्वा भवनं भावः" का दृष्टान्तपूर्वक समर्थन—जैसे जलका प्रवाह

वह पहिले समयमे जो जलप्रवाह परिणमन करता है वही जलका प्रवाह दूसरे समयमे परिणमन करता है। जल प्रवाहका दृष्टान्त इस कारण किया है कि वहाँ होकर होते रहना, चलते रहना, बदलते रहना यह बात स्पष्टतया विदित होती है। और जो यहाँ दिख रहे हैं, घडी पुस्तक चौकी आदिक, ये कुछ होते हुए नजर नही आते। यद्यपि होना हमेशा सभी पदार्थोंमें है। एक अवस्थासे दूसरी अवस्था होना यह प्रतिसमय होता रहता है, किन्तु इस पदार्थमें समझ तो नहीं बैठती कि यह घडी होती जा रही हैं, ये काठ चौकी पुस्तक आदिक परिणमन करते निरन्तर चले जा रहे हैं, यह बात कुछ ध्यानमे तो नही आती। तो स्पष्टतया समझमे आये, इसके लिए जल प्रवाहका दृष्टान्त दिया है। जल बढ रहा है लो आँखोसे ओझल हो गया, वह प्रवाह आगे बढकर अब जरा कुछ दौडते जावो, देखते जावो तो यह समझमे आयगा कि यह प्रवाह यह गया। तो जैसे जल प्रवाह चलता जा रहा है कौन चलता जा रहा है? वही क्या करता जा रहा? निरन्तर चलता जा रहा। ऐसे ही समस्त पदार्थोंकी बात है कि प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय परिणमन करते जा रहे हैं। बदलते जा रहे हैं। भाव से भावान्तररूप होते चले जा रहे हैं। कौन होते चले जा रहे? वहीके वही पदार्थ। तो इस दृष्टान्तसे यह बात प्रतीत हो जायगी कि पदार्थ वहीका वही है जो भावसे भावान्तर रूप होता चला जा रहा है। तो वही सत् है, उसका आकार बदला, किन्तु असत्का उत्पाद नही हुआ, और वही सत् है। आकार बदला, बदले जानेपर भी और पूर्व आकार न रहनेपर भी पदार्थ वही है। कही सत् पदार्थ नष्ट नही हो गया। यो एक सत् पदार्थका होते रहना बस यही पदार्थमे एक प्रकृति पडी हुई है जिसको न समझकर लौकिक पदार्थोंकी व्यवस्था बनानेके लिए ब्रह्मा, विष्णु महेशके रूपमें तीन देवताओंकी कल्पना करते हैं। ब्रह्मा रचता है, विष्णु रखाये रहते हैं और महेश संघार करते हैं। और, जिनकी दृष्टिमे यह बात आ जायगी कि जो पदार्थ सत् है उसमे प्रकृति पडी ही हुई है कि भावान्तर बनना, पूर्व भावका विलीन होना और पदार्थ वहीका वही रहना, उन्हे इन अलगसे व्यापार करने वाले तीन देवताओके माननेकी आवश्यकता न होगी। उनकी दृष्टिमें तो देवता ज्ञानानन्द स्वरूप ही रहेगा। तो यह पदार्थकी प्रकृति है कि वह सत् है और निरन्तर भावोमे भावान्तर अपना करता रहता है।

यत्तत्र विसदृशत्वं जातेरनतिक्रमात् क्रमादेव।
अवगाहनगुणयोगादेशांशानां सत्तामेव ॥ १८६ ॥

"भूत्वा भवनं भावः" में स्वजातिका अतिक्रमण न करके विसदृश होनेके तथ्यका प्रकाश—इस प्रसंगमे उत्पादव्यय ध्रौव्य घटित किया जा रहा है यह उत्पादव्यय नष्ट उत्पन्न होनेके रूपमे नही है किन्तु होकर होनेका नाम भाव है।

तो जो हो वह उत्पाद है और जो हो चुका उसका व्यय है। इसको दो प्रकार द्रव्य मे घटित किया जाता है। एक तो प्रदेशाकारमे और दूसरा गुण पर्यायमे। प्रदेशाकार मे यह बात निरखना है कि किसी द्रव्यके प्रदेश फैलते हैं और संकुचित होते हैं। उनके कारण वहाँ आकार बनता है। तो उन आकारोंमे उत्पाद व्यय कोई नवीन बातका नहीं है किन्तु वहा ही कुछ होकर होनेका नाम है, यह घटित किया जायगा। इसी प्रकार गुण पर्यायोंमें भी कुछ नवीन बात होने या नष्ट होने की नही है, किन्तु होकर होनेका ही नाम उत्पाद व्यय है। यो आकारमे और गुण विकारमे उत्पादव्यय घटित करते हुए दिखाना है। तो अभी जो दृष्टान्त दिया गया था वह आकारकी अपेक्षासे था जैसे कि जल प्रवाह पहिले समयमे परिणमन करता वही जल प्रवाह दूसरे समयमें परिणमन करता है। फिर भी जल प्रवाह चलता जा रहा है तो उसमें प्रदेशकी मुख्यतासे कुछ दृष्टान्तोंसे लेना है। तो इस दृष्टान्तमे विसदृशता बतायी गई। परिणमन कुछ सदृश होता है और कुछ विसदृश होता है। तो यहाँ विसदृशता का दृष्टान्त दिया है। तो जो भी विसदृशता हो रही है, एक अवस्थामे दूसरी अवस्था में जो कुछ असमानता दृष्टगत् होती है अथवा असमानता है वह अपने स्वरूपको न छोडकर अपनी जातिका उल्लघन न करके जो कुछ हो रहा है वह देशांशोके अवगाहन गुणके सम्बन्धसे हो रहा है। इसका स्पष्ट भाव यह है कि व्यञ्जन पर्याय नाम है द्रव्यके विकारका। जैसे गुण पर्याय प्रतिसमय होती रहती है इसी प्रकार व्यञ्जन पर्याय भी प्रतिसमय होती रहती है। कहीं व्यञ्जनपर्यायोंमें समानता रहती है तो कही असमानता रहती है। जो पदार्थ निष्क्रिय हैं अथवा शुद्ध हैं उनमे व्यञ्जनपर्यायो की समानता रहती है। और पर्याय विकार हैं, आकारसे आकारान्तर रूप होते रहते हैं, उनकी व्यञ्जन पर्यायोंमें असमानता रहती है। तो एक समयकी व्यञ्जन पर्यायसे दूसरे समयकी व्यञ्जन पर्यायमे समानता भी होती है और असमानता भी होती है। तो जब कभी असमानता हो तो उस समय भी द्रव्यके स्वरूपका नाश नही होता, किन्तु द्रव्यके देशांश प्रदेश अथवा आकार पहिले कैसे ही क्षेत्रोंमे घिरे हुए थे, अब वे ही देशांश दूसरे क्षेत्रको घेरने लगे। बस यही विभिन्नता है। जैसे जब कभी यह जीव चीटीके भवमे था तब इसके प्रदेशने थोडा सा स्थान घेरा और वही चीटी जब कुछ बढती है तो उसी भवमे दूसरा और कोई स्थान घेर लेता है, और मरण करके अगर हाथीका जन्म ले लिया तो उसके प्रदेश बहुत विस्तृत हो जाते हैं। कितना ही क्षेत्र घेर लिया गया। तो यो आकारसे आकारान्तर होनेमें देशांशका संकोच विस्तार हुआ। अथवा पहिले किसी क्षेत्रको घेरा था, अब अन्य क्षेत्रको घेरने लगे, इस प्रकार की विडम्बना तो है, पर द्रव्यके स्वरूपको छोड दिया हो या द्रव्य स्वरूपका नाश हुआ हो, द्रव्य बिगड गया हो ऐसा वहाँ नही है। तो जितनी असमानता होती है वह भी अपनी जातिका उल्लघन न करके ही होती है।

दृष्टान्तो जीवस्य लोकासंख्यातमात्रदेशाः स्युः ।
हानिर्वृद्धिस्तेषामवगाहनविशेषतो न तु द्रव्यात् ॥ १८७ ॥

आत्मप्रदेशोंके विस्तारकी हानि वृद्धिमे अवगाहनविशेषकी कारणरूपता पूर्व समयके आकारसे दूसरे समयका आकार होनेपर परस्परमे विभिन्नता भी हो तो भी वह प्रसतानता द्रव्यकी जातिका स्वरूपका उल्लंघन न करके ही होता है। इस विषयमें दृष्टांत दिया जा रहा है कि जैसे एक भवके असंख्यात लोक प्रमाण प्रसिद्ध होते हैं। उन प्रदेशोंकी हानि अथवा वृद्धि केवल अवगाहनकी विशेषतासे है किन्तु द्रव्यकी अपेक्षासे नही है। जीवमे जितने लोक प्रमाण असख्यात प्रदेश हैं वे उतने ही आरम्भसे अन्त तक अर्थात् अनादि अनन्त रहते हैं। चाहे किसी भवमे यह जीव गया हो पर जीवका प्रमाण परमार्थसे अपने आत्मे प्रदेशकी दृष्टिसे घटता बढता नही है। उन प्रदेशोमे कभी कुछ प्रदेश घट जायें कभी कुछ प्रदेश बढ़ जायें, ऐसा नही हो सकता, किन्तु जिस शरीरमे जितने छोटे या बडे क्षेत्र मिलते हैं सकोच विस्तारकी रीतिसे वे प्रदेश उतनेमे ही समा जाते है। जीवोके अवगाहन अर्थात् जीवके द्वारा ग्रहण किए गए शरीरका अवगाहन कमसे कम अगुलके असख्यातवें भाग प्रमाण है और अधिकसे अधिक हजार योजन कोशके अवगाहन प्रमाण है और इनके बीज कितनी प्रकारके अवगाहन हैं वे गिनतीसे परे हैं। इतने अवगाहनके देहोमे यह जीव उतने ही छोटे-बडे अपने प्रदेशको घेरे हुए रहता है। आत्मा तो उन सब स्थानोमें उतना ही है जितना कि वह है। सिर्फ एक क्षेत्रसे क्षेत्रान्तर रूप हुआ है तो क्षेत्रसे क्षेत्रान्तर रूप हुआ है। तो क्षेत्रसे क्षेत्रान्तर ग्रहण किए मात्र इतनी अपेक्षासे ही आत्माके प्रदेशोकी हानि और वृद्धि समझी जाती है। वैसे तो जो है सो ही है। एक और मोटा दृष्टान्त लो। जैसे बच्चोके खेलनेका गुब्बारा होता है तो जब उसमें हवा भरी नही होती तो वह बहुत थोडे क्षेत्रमे समाया रहता है। उसका सारा प्रमाण एक अगुलका मुश्किलसे होता है और उसमे जब हवा भर देते हैं तो उसका प्रमाण डेढ हाथ बराबर भी हो जाता है। तो यो वह रबड फैला और सकुचित हुआ, इतनेपर भी रबड जितनी पहिले उतनी ही अब है। अब कही रबडके अणु प्रदेश बढ नही गए और पहिले वह कभी घट नही गया था। तो सकोच विस्तारके कारण ये हानि वृद्धि हैं लेकिन इनमें प्रदेश वस्तुतः जितने अनादिसे हैं उतने ही अनन्तकाल तक हैं। उनकी हानि वृद्धि नहीं है। इसी बातको दूसरे दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं।

यदि वा प्रदीपरोचिर्यथा प्रमाणादवस्थितं चापि
अतिरिक्तं न्यूनं वा गृहभाजनविशेषतोऽवगाहाच्च ॥ १८८ ॥

अवगाहनविशेषतासे अतिरिक्त व न्यून होनेकी सिद्धिमें एक दृष्टान्त-

जैसे दीपककी किरणें उतनी ही हैं जितनी कि वे हैं, अब उस दीपकको य दि कोई एक मटकामें रखदे तो उसका प्रकाश मटकाके अन्दर रहेगा। वहासे उठाकर कमरेमें रख दिया तो उसका प्रकाश कमरे भरमें फैल जाता है। तो दीपकके प्रकाशकी किरणोंमें जो यह न्यूनता और अधिकता आयी है यह अवगाहन गुणके निमित्तसे है। दीपकमें स्वयंमे जितनी योग्यता है, जितनी किरणें हैं, जितना सामर्थ्य है वह तो उतना ही रखता है, उसमे कही न्यूनाधिकता नहीं आयी। दीपकको जैसी भी छोटी बडी कोई जगह मिली, आवरण मिले, वस्तु मिली, जिसमे दीपक रखा जाता हो, दीपकका प्रकाश उसी क्षेत्रमे पर्याप्त रहेगा। तो जैसे दीपकके फैलने और संकुचित होनेमें कारण आवरक द्रव्य हैं, दीपकमे स्वयमे तो जितनी बातें हैं वे सब स्थानोमें हैं, ऐसे ही समझिये कि आत्मामें जो छोटे बडे देहोमे फैलनेकी बात होती है वह आवरक देहके निमित्तसे होती है। वस्तुतः जीवमें जितने लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेश हैं उतने ही सदैव रहते हैं। यह दृष्टान्त जो दिया गया है वह स्थूल रीतिसे सुगम समझानेके लिए दिया गया है।

लौकिक प्रकाशकी वास्तविक स्थितिपर प्रकाश—यदि वस्तुत्वकी दृष्टि से देखा जाय तो वस्तु स्वरूप यह कहता है कि किसी भी वस्तुका द्रव्य गुणपर्याय स्वरूप चतुष्टय उस द्रव्यसे बाहर नहीं हो सकता। तो यहाँ यह निर्णय करें कि दीपक कितने पदार्थका नाम है। दीपक है एक लौका नाम जितना कि वह लौ है। तब दीपकका द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव प्रकाश रूप रस आदिक कुछ भी लौके बाहर न होगा। यह जो प्रकाशका फैलाव घटाव नजर आता है वह दीपकका प्रकाश नहीं है, किन्तु दीपकका निमित्त पाकर जो पदार्थ है प्रकाशमे आया है वह ही पदार्थ प्रकाशित है और वह प्रकाश उन्हीं पदार्थोंका है। दीपक भी तो पौद्गलिक पदार्थ है और घट पट आदिक भी पौद्गलिक हैं। जैसे दीपकमें प्रकाशकी योग्यता है ऐसे ही समस्त पुद्गलमे प्रकाशकी योग्यता है फिर भी योग्यतायें विभिन्न हैं। दीपकमें प्रकाशकी योग्यता बहुलतया है। बडी शक्तिमे है और स्वयं प्रकाशित रहें, इस प्रकारके स्वभाव को लिए हुए है। घट पट आदिकमे प्रकाशकी इतनी योग्यता नहीं है और वह स्वय सहज प्रकाशित हो ऐसा भी वहाँ नही है किन्तु दीपकका निमित्त पाकर ये घट पट आदिक अपनी योग्यताके अनुसार स्वयं प्रकाशित होते हैं। तभी यह बात समानताकी देखी जाती है कि दीपकके होते हुए भी कोई पदार्थ कम चमक रहा है कोई विशेष चमक रहा है। वह दीपककी ओरसे ही प्रकाश जाना होता तो वह सर्वत्र एक सा होता है। यह विभिन्नता भी यह सिद्ध करती है कि जिस पदार्थमे जितने प्रकाशरूप होनेकी योगतता है वह पदार्थ दीपक आदिकका निमित्त पाकर उतने रूपमें प्रकाशमे हो जाता है। दृष्टान्त यहापर यह वस्तुत्व समझानेके लिए नही दिया गया, किन्तु लौकिकजनोको यह समझानेके लिए दिया गया है कि जैसे दीपकका यह प्रकाश जो

कि व्यवहारमें दीपरसे संकुचित मालूम होता है, आवरकके योगसे जैसे यह घट दढ हो जाता है फिर भी दीपकमे किरणें उतनी ही हैं ऐसे ही जीवके प्रदेश छोटे बड़े देह को पाकर अपना क्षेत्र घटा बढा लेते हैं फिर भी जीवमे प्रदेश लोक प्रमाण असख्यात उतने ही हैं जितने थे और उतने ही रहेंगे उनमे हानि वृद्धि नही होती,यो हानि वृद्धि न होने का प्रवध है और हानि वृद्धि होनेकी अपेक्षासे उत्पाद व्यय है।

अंशानामवगाहे दृष्टान्तः स्वांशसंस्थितं ज्ञानम् ।
अतिरिक्तं न्यूनं वा ज्ञेयाकृति तन्मयान्न तु स्वांशैः ॥ १८९ ॥

गुणांशोंके अवगाहनकी दृष्टि अब अंशोका जो अवगाह होता है अर्थात् अंशीमे अंश समा जाते है और गु । व्यक्त होते हैं इसका तात्पर्य इस दृष्टान्तसे समझ लेना कि जैसे ज्ञानगुण जितने भी हैं वे अपने अंशोमे स्थित हैं। ज्ञानगुणके अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं और ज्ञानगुण उन समस्त अविभाग प्रतिच्छेदोमे है। जिस तरह कि द्रव्यके प्रदेशकी बात समझी जाती है कि द्रव्यके एक एक प्रदेश हुए अंश और वे क्षेत्रांश जैसे उन सारे परिपूर्ण द्रव्यमे समाये हुए है, जीवके जैसे वे प्रदेश कारण पा करके विस्तृत हो जाते हैं और कारण पाकर संकुचित हो जाते हैं ऐसे ही ज्ञानमे जो अंश है या अविभाग प्रतिच्छेद हैं वे अविभाग प्रतिच्छेद कभी कमती होते हैं कभी बढती होते हैं। सो यह बात केवल ज्ञेय पदार्थका आकार धारण करनेसे होती है। जितना बडा ज्ञेय है उतना ही बड़ा ज्ञानका आकार हो जाता है। वास्तवमें ज्ञानगुणके अंशोमे न्यूनाधिकता नही है। जैसे कि आत्माके प्रदेशमें न्यूनाधिकता नही है किंतु वह क्षेत्रांश कारण पाकर कभी संकुचित हो जाता है कभी विस्तृत हो जाता है। वह है क्षेत्रदृष्टिसे बात और यहां ज्ञानमे कही जा रही है भावदृष्टिसे बात। ज्ञान भावके अंश अविभाग प्रतिच्छेद कभी विस्तृत व्यक्त होते हैं कभी कुछ कम हो जाते हैं उसका कारण ज्ञेयाकार धारण करना है। इस दृष्टातको और स्पष्ट करते हैं।

तदिदं यथा हि संविद्घटं परिच्छिन्ददिहैव घटमात्रम् ।
यदि वा सर्वं लोकं स्वयमवगच्छच्च लोकमात्रं स्यात् ॥ १९० ॥

गुणांशोंके अवगाहनका उदाहरण दृष्टांत इस प्रकार है कि जिस समय ज्ञान घटको जान रहा है उस समय वह ज्ञान घटमात्र है याने ज्ञानका वहां इतना स्वरूप है सो ज्ञान तो जाननमात्र है और जानन होता है ज्ञेयाकार धारणरूप, तो वह जानन जैसा जानन हो रहा है, ज्ञेयाकारका धारण हो रहा है उतने मात्र है। यहां आकार धारणसे मतलब पदार्थकाजो तिकोना चौकोना आकार है उसके धारणसे नहीं है किंतु

जाननसे है। अर्थ विकल्पको आकार कहते हैं। पदार्थके सम्बन्धमें जो जानन चल रहा है वह आकार कहलाता है। तो ज्ञेयाकार धारण करना यह जानन कहलाता है। तो जिस समय ज्ञान घटको जान रहा उस समय वह ज्ञान घटमात्र है अर्थात् घटका जानन मात्र है। वहाँ क्या बात है? जैसा घट है जितना घट है उस प्रकार उतना जानन है और जब सम्पूर्ण लोकको जान रहा है वह ज्ञान उस समय वह ज्ञान लोकमात्र है। केवल ज्ञान अवस्थामें ज्ञान समस्त लोकको जानता है। वह ज्ञान लोकमात्र हो गया। हम आपका ज्ञान यहाँ किसी पदार्थको जानता है तो उस समयमें पदार्थ मात्र है। यहा यह बात तो स्पष्ट होती है कि यहा हम आपके ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद कम व्यक्त हैं और केवल ज्ञानमें अविभाग प्रतिच्छेद अधिक व्यक्त है। समस्त व्यक्त होकर भी अगुरुलघुत्व गुणके कारण उन अशोंमें अविभाग प्रतिच्छेद षट्गुण हानिवृद्धिरूपमें कम-बढ़ बढ़ा भी होता है तो जैसे द्रव्य और द्रव्य प्रदेशमें जीवके सम्बन्धमें बात कही गई थी कि जीवके प्रदेश सकुचित होकर जीवमें समा जाते हैं और कभी विस्तृत हो जाते हैं तो प्रदेश अधिक नही हो गए। जीवमें प्रदेश उतने ही जुदे कारण पाकर विस्तृत हो गए। इस प्रकार प्रत्येक गुणोंमें अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। जितने भी अनुजीवी गुण हैं, उन गुणोंमें अविभाग प्रतिच्छेद हैं। उनके अश हैं। जैसे गर्मीका अविभाग प्रतिच्छेद है तब उसका नाम होता है कि अब १०० अश गर्मी है, अब उससे कम गर्मी है, अब उससे अधिक गर्मी है। तो जैसे गर्मीकी डिग्रियां हैं इसी प्रकार प्रत्येक गुणोंमें अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। और वे अविभाग प्रतिच्छेद घट बढ रूप से आते रहते हैं। तो यहा छद्मस्थ जीवके ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद कम व्यक्त हैं और ज्ञान गुणके अविभाग प्रतिच्छेद अधिक व्यक्त हैं। इतना सब कुछ होनेपर भी ज्ञान गुण घटता बढता नही है, इसी बातको अब बताते हैं।

न घटाकारेऽपि चितः शेषांशानां निरन्वयो नाशः।
लोकाकारेऽपि चितः नियतांशानां न चाऽसदुत्पत्तिः ॥ १६१ ॥

गुणांशोंकी न्यूनाधिक व्यक्तिमें भी निरन्वय नाशका व असदुत्पादका अभाव—घटाकार होनेपर ज्ञानके शेष अशोंका निरन्वय नष्ट नही होता, और ज्ञान लोकाकार भी हो गया तब भी ज्ञानमें नवीन अशोंकी कही उत्पत्ति न होगी। ज्ञान गुणमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं वे सब नियत हैं और अनादिसे अनन्तकाल तक हैं क्योंकि उन्हीं अविभागोंका प्रतिच्छेदका समुदाय तो ज्ञान गुण है अथवा ज्ञान गुण तो एक गुण है, वह किसी भी समय कितने अविभाग प्रतिच्छेदमें व्यक्त हो सकता है? इस आधारको लेकर इस सम्भावनाके बलपर उनमें यह अदाज किया जा सकता है कि ज्ञानगुणमें ऐसे अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। इतनी कुछ सम्भावना आनेपर भी

और भी-ऐसे अविभाग प्रतिच्छेद माने जा सकेंगे कि जिसका व्यक्तरूप भी न हो लेकिन स्वरूप प्रतिष्ठाके लिए अगुरुलघुत्व गुण द्वारा हानि वृद्धिका माध्यम बनाये रखे। इसी बातको और भी स्पष्ट करते हैं।

किन्त्वस्ति च कोपि गुणोऽनिर्वचनीयः स्वतः सिद्धः।
नाम्ना चाऽगुरुलघुरिति गुरुलक्ष्यः स्वानुभूतिलक्ष्यो वा।१६२।

अगुरुलघुत्व गुण द्वारा शक्तिके सदा रहनेकी व्यवस्था द्रव्यके गुणोमे एक अगुरुलघुत्व नामक गुण है जो कि वचनो द्वारा अगम्य है स्वतः सिद्ध है, गुरुजनो और सर्वज्ञ आचार्यदेवकी उपदेश परम्परासे विदित हुआ है अथवा स्वानुभूत प्रत्यक्षसे ही वह लक्ष्यमे आता है। इस अगुरुलघुत्व गुणके निमित्तसे किसी भी शक्तिका कभी नाश नहीं होता। जो शक्ति जिस स्वरूपको लिए हुए है वह सदा उसी स्वरूपमें रहता है, इस कारण ज्ञान गुणमे तरतमता होनेपर भी ज्ञान गुणके अंशोका विनाश नही होता अगुरुलघुत्व गुण उसे कहते है जिस गुणके निमित्तसे उन शक्तियोमेसे किसी भी शक्तिका न तो नाश होता और न किसी नवीन शक्तिका उत्पाद होता। यह अर्थ अगुरुलघुत्व शब्दके अर्थसे ज्ञात होता है। अ मायने नही गुरु मायने बडा लघु मायने छोटा न हो उसे अगुरुलघुत्व कहते हैं। तो बडा न बना पदार्थ इसका भाव क्या है कि पदार्थोमे कोई असत् नवीन शक्तियाँ नहीं आयी। पदार्थ लघु नही बना इसका अर्थ क्या है कि पदार्थमे जो शक्तियाँ है उन शक्तियोमेसे किसीका नाश नही होता। यदि शक्तियोका नाश हो जायगा तो पदार्थ लघु हो जायगा। अथवा नवीन शक्तियाँ आ जायेगी तो पदार्थ गुरु बन जायगा, वजनदार हो जायगा, क्योकि शक्तियोके पिण्डका ही नाम पदार्थ है। शक्तियाँ कम बढ हो तो पदार्थमे गुरुत्व लघुत्व बन बैठेगा। तो अगुरुलघुत्व गुणके निमित्तसे यह व्यवस्था है कि किसी नवीन शक्तिका उत्पाद नही होता। यह बात भी केवल इतने मात्रसे उन शक्तियोमे सद्गुण हानि वृद्धि चलती रहती है। और उस बलपर फिर यह व्यवस्था बनी हुई है कि नवीन शक्तियोका उत्पाद नही होता और सद्भूत शक्तियोका विनाश नही होता।

अगुरुलघुत्व गुण द्वारा वस्तुमे उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी व्यवस्था— प्रसग यहाँ यह चल रहा है कि वस्तुमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीन तत्त्व चलते ही रहते हैं। इस बातको क्षेत्र दृष्टिसे भी घटाये और भाव दृष्टिसे भी घटायें। क्षेत्र दृष्टिमे बताये गये थे द्रव्यके प्रदेश व्यक्तरूपमे कम बढ भी होता रहे जैसे कि आत्माके प्रदेश जिस शरीरका निमित्त पाते हैं उस प्रमाण वे प्रदेश फैल जाते हैं अथवा संकुचित हो जाते हैं, इतनेपर भी प्रदेश उतने ही रहते हैं जितने कि जीवमे अनादि अनन्त है। तो इस ही प्रकार भावदृष्टिमे इस उत्पाद व्ययको यो बता रहे है कि गुणके अश कभी अधिक

व्यक्त होते है कभी कम व्यक्त होते हैं। तो जिस समय जितने अविभाग प्रतिच्छेदकी व्यक्ति है वह तो है गुणोमें उत्पाद अंश और पूर्व समयमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद की व्यक्ति थी अब वे नही रहे क्योंकि उत्तर व्यक्ति हो गई तो वह पूर्व समयकी स्थिति का हो गया व्यय। इतनेपर भी गुणमे अंश उतने हैं जितने कि अनादि अनन्त हैं, उनमें न कोई कम हो न बढ़े। इस दृष्टिसे वहां रह गया ध्रौव्य तो गुणोमे इस प्रकारका उत्पादव्यय ध्रौव्य जो हो रहा हैं उसमें निमित्त खास करके है अगुरुलघुत्व गुण द्रव्योमें साधारण गुण है किन्तु अर्थ क्रिया वस्तुके असाधारण गुणोंसे हुआ करती है। तो भले ही असाधारण गुणोसे वस्तुने अर्थक्रिया हो, लेकिन उस अर्थक्रिया होनेके लिए व्यवस्थित परिणमन शक्ति चाहिए। तो उसका मूल अगुरुलघुत्व नामक साधारण गुणके कारण होता है। तो यो अगुरुलघुत्व गुणके निमित्तसे गुणांशमें बढती व्यक्त हुई फिर वे वे गुणांश उतने ही हैं जितने कि गुणोमें अनादि अनन्त हुआ करते हैं। यो गुणांशोमे उत्पादव्यय ध्रौव्यकी बात समझना यो पदार्थमे गुणकी अपेक्षा क्षेत्र व्यक्तिकी अपेक्षा उत्पादव्यय ध्रौव्य ये तीन पदार्थ हैं। यो पदार्थ तृतीयात्मक है।

ननु चैवं सत्यर्थादुत्पादादित्रयं न सम्भवति।
अपि नोपादानं किल करणं न फल तदनन्यात्॥ १९३॥

अपि च गुणः स्वांशानामपकर्षे दुर्बलः कथं न स्यात्।
उत्कर्षे बलवानिति दोषोऽयं दुर्जयो महानिति चेत्॥ १९४॥

शक्तिका उत्पादव्यय माने बिना उत्पादव्ययध्रौव्यकी कारणकी व फलकी सिद्धि न हो सकनेका शङ्काकारका कथन यहा शङ्काकार शङ्का करता है कि जो यह कहा है कि किसी शक्तिका कोई नाश नही होता और किसी नवीन शक्तिकी उत्पत्ति नहीं होती। सो ऐसा माननेपर यहाँ दो दोष आते हैं—पहिला दोष तो यह है कि फिर गुणोका उत्पादव्यय और ध्रौव्य घटित नहीं हो सकता और न किसीका कारण बन सकता, न फल ही कुछ हो सकता। जब उत्पादव्यय ध्रौव्य न घटेगा तो कारण कार्यभाव कहांसे आया ? और जब कारणकार्यभाव नहीं बना, उत्पादव्ययध्रौव्य न रहा, परिणमन ही कुछ नही है तो यो अर्थक्रिया न होनेपर फल भी कहांसे होगा ? तो गुणोंको इस तरह नित्य माननेसे कि न नये गुण आते हैं और न गुणोंका कभी नाश होता है, ऐसा नित्य माना जानेपर उत्पादव्ययध्रौव्य सम्भव नहीं है। पहिला दोष तो यह है। और दूसरा दोष यह है कि यह प्रतीत हो रहा है कि प्रत्येक गुणोंके अंशोंमे कभी न्यूनता हो जाती है और कभी अधिकता हो जाती है। जैसे ज्ञान जब केवल घटको जान रहा है तो वहां ज्ञान घटमात्र है, इससे पहिले पर्यंत

को जान रहा था, तो पर्वतका जानना छोडकर जब घटाकार ही जाननेमे आया तो बडेसे छोटे ज्ञानमे ज्ञानांशमे न्यूनता ही तो चाहिए। तो यो अंशोकी कमीसे न्यूनता होनेके कारण उस स्थितिसे गुण दुर्बल हो जायेंगे, क्योकि वह सूक्ष्म बन गया पतला हो गया सकुचित हो गया। तो यो गुण दुर्बल हो गया और कभी गुणकी अधिकता भी आती है जैसे कोई घडेको जान रहा था अब जान रहा है समुद्रको तो घट ज्ञानमे ज्ञान अव्यक्त था। उस घटाकार ज्ञानका परिमाण छोटा था और समुद्र परिमाण जो ज्ञान हुआ उसका समुद्राकार बडा रहा तो देखो कभी ज्ञानमे अधिकता भी प्रतीत होने लगती है। तो ऐसी अवस्थामे वह गुण बलवान शक्ति वाला बन जायगा। तो दूसरा दोष यह आता है। तो शक्तिको नित्य माननेपर अर्थात् जो है शक्ति वह सदा रहती ही है उसका कभी नाश नहीं होता। और नवीनका उत्पाद नही होता। दोनों बातो मे नित्यता स्वीकार करलें तो यो शक्तिको नित्य माननेपर ये दोष दोनो अनिवार्य हैं। इस कारण यह कहना अयुक्त है कि किसी शक्तिका कभी नाश नही होता और किसी नवीन शक्तिका उत्पाद नहीं है। अब इस शङ्काके समाधानमे कहते हैं।

तन्न यतः परिणामि द्रव्यं पूर्वं निरूपितं सम्यक्।
उत्पादादित्रयमपि सुघटं नित्येऽथ नात्यनित्येऽर्थे॥ १९५॥

द्रव्यकी परिणमनशीलताके कारण उत्पादादिककी सिद्धि करते हुए शङ्काकारकी उक्त शङ्काका समाधान—ऊपर जो शङ्का उठाई गई है कि शक्ति को नित्य माननेपर दो दोष आते हैं वह शङ्का युक्त नही है, क्योकि पहिले जो बताया गया था कि द्रव्य परिणमनशील है, तो इस ही सिद्धान्तमे सब समाधान आ आते हैं। जब द्रव्य परिणमनशील है तो द्रव्य तो रहा ही था और वह है परिणमनशील, निरन्तर परिणमता रहता है। तो जो परिणमता रहना है वह तो सदा ही रहा ना कुछ परिणमता रहता है। यह परिणमन बदलनेकी अवस्थायें किसकी बन जाती हैं? वह तो स्थायी तत्त्व रहा ना! तो द्रव्य परिणमनशील है, इस सिद्धान्तसे ही यह बात सिद्ध होती है। नित्य पदार्थमे ही उत्पादव्यय सम्भव है अनित्यमे नही। तो जो सदा रहता है वही तो नानारूपोमें परिणमता हुआ चला जाता है। जो अनित्य है, पहिले समयमे है दूसरे समयमे उसका लगार भी नही है तो परिणमन अब किसका बनेगा? सो समाधान यही है कि द्रव्य परिणमनशील है, सर्वत्र परिणमता रहता है। जो परिणमता रहता है वह तो है ध्रुव और परिणत रहनेमे जो जो परिणमन आता रहता है वह है अध्रुव! तो यो पदार्थ नित्यानित्यात्मक है, इसलिए उत्पादव्यय होता है। यह तभी तो सम्भव है जबकि वह पदार्थ चिरकाल तक रहता हो। तो उत्पाद-व्ययध्रौव्य नित्य पदार्थमे ही सम्भव है, अनित्य पदार्थमे सम्भव नही है। इसी बातको स्पष्ट करनेके लिए एक दृष्टान्त देते हैं।

जम्बूनदे यथा सति जायन्ते कुण्डलादयो भावाः ।
अथसत्सु तेषु नियमादुत्पादादित्रयं भवत्येव ॥ १९६ ॥

दृष्टान्तपूर्वक उत्पादादिकमें द्रव्यकी परिणमनशीलताकी कारणरूपता का समर्थन—जैसे स्वर्णके होनेपर ही यदि कुण्डल आदिक अवस्थायें उत्पन्न होती हैं जब यह बात स्पष्ट विदित है तो यह सिद्ध हुआ कि उन कुण्डल आदिक भावोके होने पर उसमे उत्पाद आदिक घटित ही हैं। जब सोनेको ठोकपीटकर कुण्डलाकार बन जाता है उस समय सोना अब पहिली परिणतिमे न रहा पहिले वह सोना था पाँसी-रूप। अब उसे कलाकार ठोक पीटकर कुण्डलके आकार बनादे तो पाँसारूप जो पर्याय थी उसका हो गया विनाश और कुण्डलरूप पर्यायका हो गया उत्पाद। सोनेको देखो तो वह दोनो अवस्थाओमें है। जब वह पाँसेरूपमे था तब भी और जब कुण्डलरूपमे आया तब भी। तो उत्पाद व्ययकी भी बात समझमे आ सकी। तो सोनेमे ये तीन बातें घटित हो हुई कि कुण्डल पर्याय बनी और पाँसापर्यायका विनाश हुआ। और सोना दोनो अवस्थाओमें रहा। हुआ क्या कि सोनेके प्रदेशमे किसी प्रदेशका नाश नही हुआ। सोना जितना था वही है, केवल एक क्षेत्रका क्षेत्रातर हो गया। पहिले वह पाँसेरूपमें था अब वह कुण्डलाकाररूपमे आया। यह तो परिवर्तन हुआ प्रत्येक सोनेके प्रदेशमें किसी प्रकारकी नवीन उत्पत्ति हुई हो अथवा नाश हुआ हो, यह बात संगत नही हुई। इससे सिद्ध है कि सोनेको यदि अनित्य ही मान लिया जाता तो उसमें उत्पादव्यय आगे सम्भव न थे। कल्पना करो कि सोना अनित्य ही होता तो जो अनित्य है उसका तो समूल नाश हो गया। अगर समूल नाश न हो तो अनित्य नही कहा जा सकता। अनित्य माननेका अर्थ है कि अगले समयमे भी कुछ न रहा। तो जब कुछ भी न रहा, पाँसेके नाश होनेपर कुछ भी चीज न रही तो कुण्डल अब किसका बन गया? कुण्डल जिसका बना है वह तो नित्य मानना ही होगा। तो सोने को यदि अनित्य ही मान लिया जाय तो पाँसे पर्यायका विनाश होनेपर उसके साथ सोना भी नष्ट हो गया। अब वह कुण्डल किसका बने? तो सर्वथा अनित्यमे उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी बात सम्भव नही होती। और, जो नित्य होता है वह है सदैव अनादि, और अनन्तकाल तक, किन्तु उसका स्वभाव परिणमनका है। प्रत्येक पदार्थ परिण-मनशील हुए बिना उनकी सत्ता नही रह सकती। तो द्रव्य है और वह परिणमनशील है, इस सिद्धान्तमे ही उत्पादव्यय ध्रौव्य घटित होता है। इस सिद्धान्तके विरुद्ध याने सर्वथा नित्य अथवा अनित्य माननेपर उत्पादव्ययध्रौव्य सम्भव नही होते। जैसे सर्वथा अनित्य होनेपर उत्पादव्यय बन ही नहीं सकता, क्योकि सर्वथा अनित्य जब मूलसे ही नष्ट हो गया तो अब पर्याय किसकी बने? तो ऐसे ही सर्वथा नित्य माननेपर भी उत्पादव्यय नही बनता। सर्वथा नित्यका अर्थ है कि उसमे किसी प्रकारका परिणमन न हो। परिणमन न हो यह बात सिद्ध करनेके लिए मानना होगा कि परिणामी

अथवा परिणमनशील नही है। तो जब वस्तुमे परिणमनकी कला ही नही मानी गई तो परिणमन कैसा ? और परिणमन बिना वस्तुका सत्त्व कैसे विदित हो ? इस कारण मानना होगा कि वस्तु परिणमनशील है, शाश्वत है, और इसी कारण वस्तुमे उत्पादव्ययध्रौव्य तीनों होते चले आते हैं।

होकर होते रहनेमे नित्यत्वकी झलक—शङ्काकारकी यह कहना कि शक्तिको नित्य माननेपर उत्पादव्यय ध्रौव्य घटन नही होते यह बात उनकी युक्तिसंगत नही है, बल्कि नित्य माननेपर उत्पादव्यय ध्रौव्य सम्भव है। नित्यका अर्थ परिणामी नही। जो वस्तु है वह सदा परिणामी हुआ करती है। उसकी नित्यताको समझना चाहिए और नित्यका अर्थ ही यह है कि मात्र नित्यध्वनि बनी रहे। नित्यध्वनि बनी रहे इसे सूत्रजी मे यो कहा है तद्भावाव्ययं नित्यः अर्थात् वस्तुका जो होना है, वस्तुके परिणमनकी बातका कभी व्यय न हो उसे नित्य कहते है। तो इस प्रकारके नित्य समस्त पदार्थ है। जो भी सत् है उनके परिणमनका कभी व्यय नही होता, याने कभी ऐसा समय न आयगा कि कोई वस्तु परिणमन न करे। परिणमन किए बिना ही रहे यह तो सत्त्वका स्वभाव नही है। जो सत् है वह निरन्तर किसी न किसी रूपमे परिणमता रहेगा। बस जो परिणमन है वह उत्पादव्ययरूप है। और वह परिणमन जिसका होता है वह तत्त्व ध्रुव है। यो शक्तिमे परिणमन होता है इस कारण उत्पादव्यय ध्रौव्य तीनो घटित हो जाते हैं।

अनया प्रक्रियया किल बोद्धव्यं कारणं फलं चैव।
यस्मादेवास्य सतस्तद्द्वयमपि भवत्येतत् ॥ १९७ ॥

शक्तिको कथञ्चित् नित्य माननेपर ही कारण व फलकी उपपत्ति—शङ्काकारने अपनी शङ्कामे यह भी कहा था कि किसी शक्तिका कभी नाश नही होता और न किसी नवीन शक्तिकी उत्पत्ति होती है। ऐसा माननेपर कोई किसीका भी कारण नहीं हो सकता और न दूसरोका फल ही हो सकता। इस सम्बन्धमे यह बता रहे हैं कि पदार्थको कथचित् नित्य माने बिना कारण और फल घटित न हो सकेंगे। कारण और फल कथचित् नित्य पदार्थमे ही घटित हो सकते है। कारण भी सत् पदार्थमे ही घटित हो सकते है कारण भी सत् पदार्थमे ही हो सकेगा और फल भी सत् पदार्थमे ही हो सकेगा। जो अनित्य है अर्थात् होते ही नष्ट हो गया वह किसीका कारण कैसे हो सकेगा ? जो अनित्य है, होते ही नष्ट हो गया उसका फल क्या कहा जायगा ? क्षणिक पदार्थ तो स्वरूपलाभका ही एक समयमे कर सका, उससे कारण और फलकी बात न चल सकेगी। तो जब पदार्थका ध्रुव माना जाय, कथञ्चित् नित्य माना जाय तो जैसे उत्पादव्यय ध्रौव्य नित्य पदार्थमे ही सम्भव है इसी प्रकार कारण

ग्रौरफल घटित होना भी नित्य पदार्थमे ही सम्भव है। लोकव्यवहारमें भी कारणपने की खोज नित्य पदार्थोंमें ही की जा सकती है। जो सर्वथा क्षणिक है उसका तो विकल्प भी नही, उसका व्यवहार भी नहीं, उसमें कार्य कारण विधान कैसे होगा कारण कार्यपना भी परमार्थत एक ही पदार्थमें होता है। एक ही पदार्थकी पूर्व अवस्था कारण बनती है और उत्तर अवस्था कार्य होती है। उत्तर पूर्व अवस्था आये बिना उत्तर अवस्थाकी प्राप्ति किए जानेका अवसर न होगा। जब पूर्व अवस्था आये तो प्रत्येक अवस्था चूंकि एक एक समयकी होती है सो स्वभावत वह पूर्व अवस्था उत्पन्न होकर विलीन होगी। बस वही समय उत्तर अवस्था के उत्पादका है। तो जब कोई पदार्थ सत् हो, सदा रहे तब ही तो उसमें कार्य कारणपना बन सकता है ? यही बात फलके सम्बन्धमे है। फल है उसका परिणाम तो फल भी एक परिणति है, किन्तु वाञ्छाके अनुसार परिणतिको फल कहा जाता है। जो परिणति इष्ट हो जिस परिणतिमे हित हो उस परिणतिको फल कहा करते हैं। फल भी कोई अलग चीज नही है, अपने भाव पदार्थका परिणमन ही फलरूपसे कहा जाता है। तो जब पदार्थ नित्य हो तो उसमे उपाय और फलकी बात बन सकती है। सर्वथा क्षणिकमें उत्पादव्यय ध्रौव्य भी नही बनता। कारण कार्यकी विधि भी नहीं बनती और फलकी प्रक्रिया भी नही बनती, इस कारण जो अभी कहा गया है कि सत्में उत्पादव्यय ध्रौव्य होता है और वह नित्य है। उसमे अवस्थाओंका होते रहना जारी है। पदार्थ परिणमनशील है और उसी पदार्थको जब भेद दृष्टिसे देखते हैं तो शक्तयांशोंके रूपमें ज्ञात होता है। तो जैसे पदार्थ कथंचित् नित्य हैं, परिणामी है जब उसमे उत्पाद आदिक घटित होते हैं ऐसे ही भेद दृष्टिमे निरखे गए यह शक्ति भी नित्य है और परिणामी है। तभी इसमें उत्पादव्यय ध्रौव्य घटित होते हैं और कारण कार्य एव फलका विधान भी घटित होता है।

आस्तामसदुत्पादः सतो विनाशस्तदन्वयादेशात् ।
स्थूलत्वं च कृशत्वं न गुणस्य च निजप्रमाणत्वात् ॥१९८॥

अन्वयदृष्टिसे गुणमे स्थूलत्व व कृशत्वकी अनुपपत्ति—अब शङ्काकार की अन्तिम शङ्का थी कि नवीन नवीन शक्तियोका उत्पाद न माननेपर शक्तिको नित्य माननेपर शक्ति दुर्बल और बलवान होती जाया करेगी अर्थात् जब शक्तिके अश कुछ कम प्रकट होते हैं और कभी शक्त्यश अधिक व्यक्त होते हैं तो ऐसी अवस्थामे जब व्यक्ति अधिक हो तो शक्ति बलवान हो जायगी। यो शक्तिमे दुर्बलता और बलवत्ता अथवा सूक्ष्मता और स्थूलता आ जायगी। इस शङ्काके समाधानमे कहा जारहा है कि कमती और अधिक व्यक्तिका अर्थ है क्या सो समझिये ! जैसे ज्ञान कभी घटाकार होता है तो उस समय कहा गया कि ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद यहाँ कम व्यक्त

हैं। जब ज्ञान लोकाकार होता है, लोकप्रमाण समस्त तत्त्वका जाननहार होता है तो वहां बताया गया कि ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद अधिक व्यक्त हो गए। तो इन स्थितियोमे केवल आकारभेद है। ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदमे न्यूनता और वृद्धि जो यहाँ बताई गई है उससे यह अर्थ न लेना कि ज्ञानके अंशोका नाश हुआ है अथवा ज्ञानके नवीन अशोकी उत्पत्ति हुई है। ये सब तो ज्ञानावरण कर्मके निमित्तसे ज्ञानके अशोंमे व्यक्तता और अव्यक्तता होनेकी बात कही गई है। अधिक अशोके दबनेसे ज्ञान दुर्बल कहा गया है और अधिक अशोके प्रकट होनेसे ज्ञानको सबल कहा गया है। इसके सिवाय सबलता और दुर्बलताका कोई अन्य अर्थ नही है। अविच्छिन्नता संततिसे देखनेसे गुणोका रहस्य विदित होता है। अविच्छिन्नता संततिके देखे जानेपर न तो असत्की उत्पत्ति सिद्ध होती है न सत्का विनाश सिद्ध होता है। इसके साथ ही साथ जो शक्तिकी प्रमाणतामे स्थूलता और कृशता भी सिद्ध नही होती। शक्ति गुण जैसा जो है वह अनादि अनन्त है। शक्तिके अविभाग प्रतिच्छेद कम और अधिक व्यक्त होने पर भी शक्ति उतने ही अविभाग प्रतिच्छेदरूप है, उसमे न्यूनता और वृद्धि नही होती।

तत्त्वस्वरूपकी स्वतःसिद्धता व स्वसहायता— इस अध्यायमे तत्त्वका लक्षण बताया जा रहा है। तत्त्व सत्ता लक्षण वाला है। जब हम सत्त्वको लक्ष्यमे लेना चाहते हैं तो हमे वहाँ लक्षण सत्त्व विदित होता है। जो सत् हो वह तत्त्व है। लेकिन सत् लक्षण हो तत्व लक्ष्य हो, ऐसी कुछ पदार्थमे पृथक पृथक बात नही जुडी हुई है। तत्त्वका और सत्त्वका पार्थक्य नही है और न आधार आधेय भाव है। पदार्थ वही है, उसको भेद दृष्टिसे निरखनेका एक उपाय बताया गया है। इस कारण व्यवहारसे यह कथन कि तत्त्व सत्ता लक्षण वाला है परमार्थतः तत्त्व सन्मात्र है। जो सत् है वही यह तत्त्व है, ऐसा वह तत्त्व स्वतः सिद्ध है। जो है वह अपने आप है। किसी के द्वारा कुछ बताया गया नही है। कभी कोई पर्याय किसी निमित्तको पाकर व्यक्त होता है तो उस व्यक्त विभावकी स्थितिमे भी निमित्तसे उस परिणतिकी निष्पन्नता नही है। वह परिणति तो पदार्थमे अपने स्वभावतः प्रकट हुई है। और, फिर जो उत्पाद आदिकमय सत् है वह सत् किसीसे उत्पन्न होता ही नही है। यो तत्त्व स्वतः सिद्ध है। तत्त्व स्वतः सिद्ध है और है वह उत्पादव्ययध्रौव्यरूप। तो वहाँ यह भी निरखना है कि सत्त्वोंमे जो अवस्थाओंका उत्पाद है वह भी स्वतः सिद्ध है। पदार्थोंमे पर्यायोका उत्पाद किसी परद्रव्यसे नहीं हुआ करता है। तो उत्पाद भी स्वतः सिद्ध है इसी प्रकार उत्पाद होना पूर्वपर्यायके व्ययका अविनाभावी है। सो पूर्वपर्यायका व्यय भी स्वतः सिद्ध है। सत्त्वमे सत्त्वके कारण यह उत्पादव्ययकी परम्परा अनादि निधन है। सो जैसे उत्पादव्यय स्वतः सिद्ध चलता रहता है। ऐसे ही पदार्थोंमे जो ध्रुवता है वह भी स्वतः सिद्ध है। जो तत्त्व सन्मात्र है और यह स्वतः सिद्ध है इसका अर्थ यह भी हुआ कि पदार्थ परिणामी है और उसका परिणाम भी स्वतः सिद्ध होता

है। ये सब प्रक्रियायें पदार्थमे अपने सहायपर हो रही हैं। जैसे सत्त्व किसी अन्यके बलपर नही है इसी तरह पदार्थमे उत्पादव्ययध्रौव्य क्षेत्र होना भी किसी अन्य पदार्थके बलपर नहीं है।

वस्तु स्वातन्त्र्यके अवगमकी मोहप्रक्षयमें साधकतमता –प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र है, अपने अपने स्वरूप चतुष्टयको लिए हुए है, अपने आपमें अपना परिणमन निरन्तर करता रहता है। किसी भी पदार्थका किसी अन्य पदार्थसे सम्बन्ध नहीं है। ऐसे तत्त्वका परिज्ञान होना इस जीवनमे अपनी भलाईके लिए कितना उपयोगी है? यदि तथ्यकी बात कही जाय तो कर्तव्यमात्र श्रेष्ठमन वाले जीवका (मानवका) यही है कि पदार्थकी स्वतत्रताका परिज्ञान करले। जितना भी क्लेश है वह सब मोहका है। और, मोहका अर्थ है किसी पदार्थसे अपना सम्बन्ध है नहीं और सम्बन्ध समझा जाय तो वहाँ अनेक परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि निरन्तर क्लेश सहना ही पडता है। जहाँ यह बोध हो कि मै आत्मतत्त्व - समस्त पदार्थोंसे निराला स्वतत्र हू जैसे कि अन्य सभी पदार्थ निराले और स्वतत्र हैं। तो ऐसी स्वतत्रताका भान होनेपर मोह रहनेका अवसर नहीं रहता। मोहका विनाश हुआ कि जीवका कल्याण हस्तगत हो गया। मोहके विनाशका उपाय पदार्थोंकी स्वतत्रताका परिज्ञान करना है। इस उपाय को छोडकर अन्य किसी उपायमे कोई जीव चले तो उसे सफलता नहीं प्राप्त होती। जो प्रभाव जिस विधिसे बनता है वह प्रभाव उस विधिसे ही हो सकेगा। तो क्लेशको दूर करनेका हम आप सबका उद्देश्य है। क्लेश दूर होगा मोहके क्षयसे और मोहका क्षय होगा पदार्थकी स्वतत्रताके ज्ञानसे। इस कारण पदार्थोंका सत्य स्वरूप समझना चाहिए जो कि स्वभावतः स्वतत्र हैं। पदार्थोंका सत्य स्वरूप जाननेसे मोह सकट दूर होगा और इससे ही शाश्वत आनन्द प्राप्त होगा।

इति पर्यायाणामिह लक्षणमुक्तं यथास्थितं चाथ।
उत्पादादित्रयमपि प्रत्येकं लक्ष्यते यथाशक्ति ॥ १९९ ॥

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका स्वरूप कहनेका सकल्प--अब तक पर्यायोंका लक्षण बताया गया है। पर्यायोंके बतानेसे उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनो धर्मोंकी सिद्धि होती है। वस्तुमें परिणमन हो तब उत्पादव्ययकी बात समझी जा सकती है। और, जब उत्पादव्यय होता है तो आखिर किस तत्त्वमे होता है। उसके उत्तरमे ध्रुव तत्त्व का निखार होता है। तो वस्तुके लक्षणमें गुण और पर्याय दोनोका बताना आवश्यक है। इसीलिए द्रव्यका लक्षण कहा गया है "गुणपर्ययवद् द्रव्य"। जो गुण और पर्याय वान हो उसे द्रव्य कहते हैं। जहाँ लक्षण बतानेकी बात कही जावे वहा भेददृष्टि हो ही जाती है। चाहे आत्मभूत लक्षण भी कहा जा रहा हो तब भी लक्ष्यसे किस रूपमे

तत्त्व नजर आयगा और लक्षण से किस रूपमे तत्त्व विदित होगा ? एक धर्मी और एक धर्म बन ही जायगा। लक्ष्य धर्मी और लक्षण धर्म हो जाता है। तो यद्यपि पदार्थ गुण पर्यायोसे जुदा नही है फिर भी पदार्थका लक्षण बतानेके लिए गुणपर्यायवत्ताका जो कथन है सो द्रव्य लक्ष्यधर्मी हो गया और गुणपर्यायवत्ता लक्षण अथवा धर्म हो जाता है। तो गुण और पर्याय दोनोका कथन अब तक हुआ। गुण ही सब मिलकर द्रव्य कहे जाते हैं। अथवा द्रव्यको ही भेददृष्टिसे निरखनेपर गुण कहा जाता है। सो जैसे द्रव्य नित्यानित्यात्मक है वैसे ही गुण भी नित्यानित्यात्मक है। अब इसके बाद द्रव्य नित्यानित्यात्मक है तो उसमें नित्यत्व जो अंश है, जिस दृष्टिमे अनित्यत्व दिखता है उस दृष्टिमे अनित्यत्व नही है। अतएव नित्यत्व और अनित्यत्व ये दो धर्म हुए। इसी प्रकार गुणमे भी नित्यत्व और अनित्यत्व ये दो धर्म हुए। किंतु स्पष्ट समझनेके लिए नित्यत्व धर्मसे गुणको मुख्य कहना और अनित्यत्व धर्मसे गुणकी अवस्थाको मुख्य करना इस प्रकार अनित्यपना पर्यायमे रहा और नित्यपना गुणमे रहा। यो गुण पर्यायवान द्रव्य है यह लक्षण घटित किया गया। अब उत्पादव्ययध्रौव्यका भिन्न-भिन्न स्वरूप वर्णन किया जायगा। वस्तुमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों ही पर्याय दृष्टिसे निरखे जाते हैं। सो पर्यायार्थिकनयकी प्रधानता रखकर उत्पादव्यय ध्रौव्यका वर्णन किया जाता है।

उत्पादस्थितिभङ्गाः पर्यायाणां भवन्ति किल न सतः।
ते पर्याया द्रव्यं तस्माद् द्रव्य हि तत् त्रियतम् ॥ २०० ॥

पर्यायोंके उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यकी उपपत्ति- उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीनो पर्यायके होते हैं, पदार्थके नही होते अर्थात् पदार्थका उत्पाद होना, पदार्थकी स्थिति रहना पदार्थका भङ्ग होना ये एकान्ततः पदार्थमे घटित नही होते। उत्पाद स्थिति और व्यय ये तीनो पर्यायमे होते हैं और वे सब पर्यायें ही मिलकर द्रव्य कहलाती है। इस कथनमे यह बात सिद्ध की गई कि पदार्थ तृतीयात्मक होता है। उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप सत् होता है। न तो किसी पदार्थका एकान्ततः नाश है और न किसी पदार्थकी एकान्ततः उत्पत्ति है। इसलिए ये तीनो ही पदार्थकी अवस्थाओके भेद हैं। इसी कारण ये तीनो अवस्थाये मिलकर ही द्रव्य कहलाती है। इन तीनोका समुदाय ही द्रव्यका पूर्ण स्वरूप है।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके प्रभावसे उदाहरण—तत्त्व तृतीयात्मक होना है। इसकी अभिव्यक्तिके लिए दो उदाहरण देते है - एक तो दूध दही और गोरस। गाय का दूध और दही जामने मिलकर बनता है दही और ये दोनो कहलाते है गोरस। तो दूध कहकर जो तत्त्व ज्ञात होता है वह दधि और गोरस कहकर नही। और, दधि

कहकर दूध ज्ञात होता है वह दुग्ध और गोरस कहकर नहीं। और, गोरस कहनेसे जो तत्त्व विदित होता है वह दूध और दही कहनेसे नहीं। इसका प्रमाण यह है कि जिसने दूधका त्याग किया है ऐसा पुरुष दही खा लेता है और उसके व्रतका भङ्ग नहीं है। जिसने दधिका त्याग किया है वह दूध ले लेगा और उसके व्रतका भङ्ग न होगा, किन्तु जिसने गोरसका त्याग किया है वह दूध और दही दोनो ही ग्रहण न कर सकेगा। तो इससे मालूम होता है कि ये तीनो बातें अपना अपना प्रथक प्रथक स्वरूप लिए हुए हैं। यही बात उत्पादव्ययध्रौव्यके सम्बन्धमें है और, इस उदाहरणसे उत्पादव्ययध्रौव्यका प्रभाव प्रथक है, यह अंदाजमें आता है। दूसरा उदाहरण लें कि कोई पुरुष तो सोनेकी छोटी कलशियोका इच्छुक था सो प्रभुमूर्तिका अभिषेक करने की इच्छासे यह पुरुष बाजार गया। दूसरे नगरका कोई पुरुश मुकुट लेनेकी इच्छासे बाजार गया, तीसरे नगरका कोई पुरुष स्वर्ण खरीदनेकी इच्छासे बाजार गया। सुयोग वश वे तीनो ही एक दूकानपर पहुचते हैं, जिस दूकानपर कलशिया तोडकर मुकुट बनाये जा रहे थे। उस स्वर्णकारने सोचा था कि ये स्वर्णकी कलशियां बहुत दिनोसे रखी हैं, इनकी बिक्री नही हुई, सो वह यह सोचकर मुकुट बनवाने लगा कि इनकी बिक्री हो जायगी। तो कलशियां तोडकर मुकुट बनाये जा रहे थे। इस घटना को देखकर उन तीनो व्यक्तियोपर जुदा जुदा प्रभाव पडा। जिसे कलशियां चाहिये थी वह तो विषाद करने लगा। वह सोचने लगा कि यदि मैं १०–५ मिनट पहिले आ गया होता तो हमें बनी बनाई कलशिया मिल जातीं। न हमें समयका विलम्ब होता और न उनकी अलगसे बनवायी देनी पडती। दूसरा व्यक्ति—मुकुट खरीदने वाला खुश होने लगा—सोचा वाह, अभी १०–५ मिनटमे ही हमें इष्ट भूषण मिला जारहा है। और तीसरा व्यक्ति—सोना खरीदने वाला न तो खुश होता है और न विषाद करता है क्योकि उसे तो सोना लेनेसे मतलब! तो इससे विदित होता है कि ये तीनों ही तत्त्व अपना जुदा स्वरूप रखते हैं।

पर्यायोके उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूपकी उत्पत्ति उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीन रूप पर्यायके हैं। यदि ये पदार्थके मान लिए जायें तो उत्पाद हुआ। इसका अर्थ होगा कि नवीन पदार्थ उत्पन्न हुआ अथवा व्यय हुआ। यह कहनेपर यह मान लिया जायगा कि पदार्थका नाश हो गया। पर पदार्थका न नाश है न नवीनकी उत्पत्ति है। ये तो पदार्थकी अवस्थाओंके भेद हैं। और ध्रौव्यकी पर्यायोकी दृष्टिमे ही विदित होता है अर्थात् उत्पाद व्यय हो होकर पर्यायोंका बनता चले जाना यह ध्रौव्य है। यह उत्पादव्ययका प्रक्रम अनन्त काल तक चलता रहेगा। इस निश्चयमे जो तत्त्व विदित हुआ उसका नाम है ध्रौव्य। अब उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेंसे उत्पादका स्वरूप कहते हैं।

तत्रोत्पादोऽवस्था प्रत्यग्रं परिणतस्य तस्य च।
सदसद्भावनिबद्धं तदतद्भावत्वनयादेशात् ॥ २०१ ॥

उत्पादका स्वरूप -- परिणमनशील द्रव्यकी नवीन अवस्थाका नाम उत्पाद है। पदार्थ जैसे स्वतःसिद्ध है उसी प्रकार स्वतः परिणामी भी है। पदार्थका स्वरूप किसने उत्पन्न किया ? जो है वह स्वयं है। तो इसी प्रकार पदार्थ निरन्तर परिणमता ही रहे, एक समयका परिणमन बिलकुल न रहेगा। इस स्वभावको, शीलको किसने बनाया ? पदार्थ सत् है। इसी कारण उसमे परिणामशीलता भी है तो प्रत्येक द्रव्य परिणामशील है तब वह निरन्तर परिणमता रहता है। उन परिणमनोंमें जो नवीन अवस्था है उसे तो उत्पाद कहते हैं और जो पूर्व अवस्था विलीन हुई उसे व्यय कहा गया। तो नवीन अवस्था होनेका नाम उत्पाद है और यह उत्पाद द्रव्यार्थिक नय की दृष्टिमें सद्भावरूप है और पर्यायार्थिक दृष्टिमे असद्भावरूप है अर्थात् वह पर्याय हुई तो कुछ नवीन बात नही हुई। वही द्रव्य है इस प्रकारसे हुआ। तो द्रव्यमे ये सब पर्यायें हैं और एक दृष्टिमे द्रव्य माना गया है अनन्त पर्यायोका समूह। अतीतमे जितनी पर्यायें हुई भविष्यमे जितनी पर्यायें होगी उन सबका समूह द्रव्य है। तब द्रव्यके इस लक्षणकी दृष्टिमे समस्त पर्यायें द्रव्यमे सद्भावरूप हैं वे ही अब व्यक्त हुई हैं। तो द्रव्यार्थिक नयकी दृष्टिमे पर्यायें सद्भावनिबद्ध हैं और पर्यायार्थिक नयकी दृष्टि मे अवस्थायें असद्भाव निबद्ध हैं जो न था वह हुआ। नवीन अवस्थाके होनेका नाम ही तो यह है कि वह अवस्था न थी अब नवीन हुई है। तो यो द्रव्यार्थिक नयकी दृष्टिमे ये अवस्थायें असद्भाव निबद्ध हैं। सद्भावके सम्बन्धमे एकान्तवादियोने बताया है कि प्रत्येक पर्यायें द्रव्यमे सदा हैं उनमे क्रमशः व्यक्ति चलती रहती है। लेकिन द्रव्यमे सदा समस्त पर्यायें हैं, यह बात सङ्गत नही बैठती। किंतु द्रव्य अनादिसे अनन्त काल तक रहता है और किसी न किसी पर्यायमें सदैव रहेगा, इस कारण गुणपर्यायों का पुञ्ज द्रव्य है, ऐसा मानकर संकल्पसे यह समझा गया कि द्रव्यमें अनन्त पर्यायें हैं और वह सद्भावनिबद्ध हैं। जब पर्यायार्थिक दृष्टि करते हैं तो नवीन-नवीन पर्यायें विदित होती हैं, और इस परिज्ञानमे पर्यायें असत् अर्थात् जो न थी वह हुई हैं। यो पर्यायें असद्भाव निबद्ध हैं। इसका समर्थन तद्भाव और असद्भावकी जानकारीसे होता है। द्रव्यार्थिक नयमे तद्भाव है और पर्यायार्थिक नयमे असद्भाव है। जो न था वह यहाँ हुआ है। यो उत्पाद द्रव्यार्थिक नयसे कुछ नवीन नही किंतु पर्यायार्थिक दृष्टिसे नवीन ही हुआ।

अपि च व्ययोपि न सतो व्ययोप्यवस्थाव्ययः सतस्तस्य।
प्रध्वंसाभावः स च परिणामित्वात् सतोप्यवश्य स्यात् ॥२०२॥

व्ययका स्वरूप -- इस गाथामें व्ययका स्वरूप बताया गया है। व्यय सत्का नही होता अर्थात् सत्त्व नष्ट हो जाय, इसका नाम व्यय नही है, किंतु परिणमनशील उस सत्की अवस्थाका व्यय होनेका नाम व्यय है। इस ही को प्रध्वंसाभाव कहते हैं।

प्रध्वंसाभावका परिणमनशील द्रव्यमें हुआ करता है। व्यय कोई तुच्छाभाव रूप नहीं है याने समूल नाश होनेका नाम व्यय नहीं है। व्ययमें उत्तर पर्यायका उत्पाद है अतः उत्तरपर्यायके सद्भावका नाम पूर्वपर्यायका अभाव है। इसीको प्रध्वंसाभाव कहते हैं। इसीका नाम व्यय है। तो सद्भूत पदार्थमे निरन्तर परिणमन होता है और उन परिणमनोंकी दृष्टिसे नवीन परिणमनका उत्पाद बताया गया था। अब इस गाथामे पूर्व परिणमनका व्यय बताया गया है। पदार्थ वही है, शाश्वत् है उसकी अवस्थामे उत्पाद व्यय होता रहता है। ऐसा उत्पाद व्यय होते रहनेकी बात प्रत्यक्ष सिद्ध है। हम जो कुछ आंखो देखते हैं वहां भी यह विदित हो रहा है कि यह वस्तु अनेक वर्षों से है किंतु पहिले वर्षसे इस वर्षमे परिणमन हुआ है। कोई भी वस्तु पुरानी होकर जीर्ण-शीर्ण हो जाती है तो अवस्थामे परिवर्तन होना, नवीनता आना यह बात देखी जा रही है और वस्तु वही है जिसमे ये अवस्थायें बदलती रहती हैं। तो लौकिक दृष्टान्तसे भी यह बात सिद्ध है कि वस्तु वही है और उसमे परिणमन होते रहते हैं। नवीन परिणमनको उत्पाद कहते हैं और नवीन परिणमन होनेपर जो पूर्व परिणमन न रहा उसको व्यय कहते हैं। सत् पदार्थ वहीका वही है। तो व्ययके स्वरूपमें यह जानना चाहिये कि सत् पदार्थका व्यय नहीं होता किंतु सत् पदार्थकी अवस्थाका व्यय होता है। सत् परिणामी है, परिरमणशील है, उसके परिणमन होते रहते हैं, उन्हीं परिरमणोंमें प्रागभाव प्रध्वंसाभावकी व्यवस्था है। यों व्यय प्रध्वंसाभाव रूप है जो कि अन्यके सद्भावरूप पडता है, किंतु पदार्थके समूल नाश होनेका नाम व्यय नहीं है।

ध्रौव्यं सतः कथंचित् पर्यायार्थाच्च केवलं न सतः।
उत्पादव्ययवदिदं तच्चैकांशं न सर्वदेशं स्यात् ॥ २०३ ॥

ध्रौव्यका स्वरूप—ध्रौव्य भी कथञ्चित् पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे होता है। पर्यायार्थिक दृष्टिको छोडकर केवल सतका ध्रौव्य नहीं होता। किन्तु जैसे पर्यायकी दृष्टि मे उत्पादव्यय है और वह वस्तुका अंश है सर्वांश रूप उत्पादव्यय है इसी प्रकार यह ध्रौव्य भी पर्यायार्थिकदृष्टिसे विदित होता है और पदार्थका अंश स्वरूप है वह भी सर्वांशरूप नहीं है। इस प्रसंगमे कुछ लगता ऐसा है कि ध्रौव्य द्रव्यदृष्टिसे होना चहिए क्योंकि द्रव्य पदार्थ सदा रहता है और सदा रहनेकी बातका ही नाम ध्रौव्य है। तो उत्पादव्यय पर्यायार्थिक दृष्टिसे रहे और ध्रौव्यकी बात द्रव्यदृष्टिसे रहे ऐसा कुछ लगता है, किन्तु विचार करने पर सिद्ध होगा कि ध्रौव्य भी पदार्थका अंश है और जितने भी अंशविज्ञात हुआ करते है वे पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे ज्ञात होते है उत्पाद-व्ययतो पर्यायार्थिक दृष्टिसे है इससे किसीका विवाद नहीं है किन्तु ध्रौव्य यदि द्रव्य दृष्टिसे रहे तो इसके मायने यह होगा कि पदार्थ अपरिणामी नित्य हो जायगा किन्तु ध्रौव्यमे अपरिणामिता विवक्षित नहीं है। ध्रौव्यका अर्थ यह है कि उत्पादव्ययकी

परम्परा कभी नष्ट न हो यह निरन्तर चलती रहे इस आधारको सूचित करता है ध्रौव्य शब्द । दूसरी बात यह है कि पदार्थ तो परमार्थतः अवक्तव्य है और वह है परिमा । दृष्टिसे ज्ञात करनेपर नित्यानित्य स्वरूप पदार्थ मात्र नित्य नही और पदार्थमात्र अनित्य नही । केवल सर्वथा नित्य हो तो वह सत् नही रह सकता । इसी प्रकार कोई पदार्थ केवल अनित्य हो तो वह भी सत् नही रह सकता । तो जैसे पदार्थकी अवस्थाओका उत्पादव्यय भेद दृष्टिसे पर्याय दृष्टिसे विदित होता है इसी प्रकार ध्रौव्य अश भी भेददृष्टिसे विदित होता है । द्रव्यार्थिक नयका आधार है अभेद और पर्यायार्थिक नयका आधार है भेद । और इस मध्यमसे पदार्थमे अनेक गुणोकी सिद्धि भी पर्यायार्थिक दृष्टिसे कही जायगी । द्रव्यार्थिक दृष्टिसे नही । कुछ भी भेद किया जाय, अशोमें कुछ भी अंश बताये जायें तो उन अंशोका प्रतिपादन पर्यायार्थिक दृष्टिसे होता है । वस्तु है, जो है सो है । उसमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीन अश बताना और तीन अशोका समुदाय है इस प्रकारका प्रतिपादन करना पर्यायार्थिक दृष्टिसे सम्भव है । अतएव जैसे उत्पादव्यय पदार्थके अश हैं उसी प्रकार ध्रौव्य भी पदार्थका अंश है ।

तद्भाव व्ययमिति वा ध्रौव्यं तथापि सम्यगयमर्थः ।
यः पूर्वं परिणामो भवति स पश्चात् स एव परिणामः ॥२०४॥

ध्रौव्यका द्वितीय प्रकारसे स्वरूप—ध्रौव्यका लक्षण यह भी बताया गया है कि तद्भावाव्यय नित्य अर्थात् पदार्थके भावका व्यय न होना सो ध्रौव्य है इसका भाव है कि वस्तुके भावका नाश नही होता । वस्तुमे जो स्वभाव है उसका नाश नही होता और वस्तुमे जो होना होता है, होता रहता है, उस होने रहनेका भी विनाश नही होता । ऐसी स्थितिमे वस्तुमें यह निरखा जा सकता है कि जो परिणाम पहिले था वही परिणाम पीछे भी है । भले ही भावकी अवस्थायें बदलती जायें पर भाव नही बदलता । भाव वहीका वहीं रहता है । तो वस्तुके भावका अथवा वस्तुत्वका स्वरूपका स्वभावका व्यय न होना इसका नाम है ध्रौव्य । वस्तुके स्वभावका व्यय न हो यह बात तब ही सम्भव है कि जब वस्तु परिणमती रहे । परिणमती रहे बिना कोई अस्तित्व ही नही रह सकता है । वस्तु स्वभाव शक्ति ये सब भिन्न चीजें नही हैं तब जैसे वस्तुको परिणमनशील कहते है किन्तु यह परिणमन अपनी जातिका उल्लघन न करके ही होता है । कही जातिसे विजातीयरूप नही हो सकता । तब वस्तुके भावका व्यय न होना इसका नाम ध्रौव्य है और उससे यह बात ज्ञात होती है कि वस्तुका स्वभाव वस्तुमे शक्ति वहीकी वही सदा रहती है उसकी अवस्थाओमे बदल होती रहती है । तो यो वस्तुमे उत्पादव्यय और ध्रौव्य ये तीनो एक साथ रहते है । उत्पादके समय ही व्यय और ध्रौव्य हैं, व्ययके समय ही उत्पाद और ध्रौव्य हैं और ध्रौव्यके समय ही उत्पाद एव व्यय है । नवीन अवस्थाका उत्पन्न होना ही पुरानी अवस्थाका

व्यय कहलाता है। पुरानी अवस्थाका व्यय होना ही नवीन अवस्थाका उत्पाद कहलाता है और यह धारा एक सत्‌मे चलती ही रहती है। तो ध्रौव्यका लक्षण वस्तुके भावका व्यय न होना युक्तिसगत है।

पुष्पस्य यथा गन्धः परिणामः परिणमश्च गन्धगुणः।
नापरिणामी गन्धो न च निर्गन्धाद्धि गन्धवत्पुष्पम् ॥ २०५ ॥

ध्रौव्यस्वरूपके सुगम अवगमके लिये एक दृष्टान्त—ध्रौव्यका स्वरूप बतानेके लिए एक दृष्टात दिया जा रहा है कि जिस प्रकार फूलका गंध परिणमन है और गंध गुण परिणमता रहता है, गंधशक्ति परिणामी है, तो इस परिणमनशीलता के कारण इस गंध शक्तिमे नाना प्रकारके व्यक्त गंधोका विकास होता रहता है। तो नाना गधोका विकास होनेपर भी गंध सदैव रहता है। गधशक्तिका ही तो वह सब परिणमन है, जितना कि विभिन्न गध विकसित हुआ है, ऐसा नही है कि पहिले पुष्प गधरहित हों और पीछे गधसहित हुए हो। गधगुण परिणमनशील है तिसपर भी गुणगंध सदा पाया जाता है। उसका फूलमे कभी अभाव नहीं है। तो गंधगुणका कभी भी अभाव नही होता इसका नाम ध्रौव्य है और इसी बलपर कहा जाता है कि पुष्पमें जो गंधपरिणमन पहिले था वही पीछे भी रहता है। गंधगुणकी तरह सभी गुणोंकी बात समझना। जैसे आम्रफलमें पहिले हरा रूप था अब पीला रूप हो गया तो हरी अवस्थाका व्यय होकर पीली अवस्थाका उत्पाद हुआ है तो वहाँ हरेका समूल नाश हुआ हो और पीलेका, किसी नवीनका उत्पाद हुआ हो, ऐसा नहीं है, किन्तु वही आधारभूत रूप गुण पहिले हरेरूपमें विकसित था अब पीले रूपमें विकसित हुआ है। रूप शक्तिका कभी अभाव न था। तो जो रूप शक्तिका कभी अभाव न रहा इसका नाम है ध्रौव्य और उस रूप शक्तिके जो विकास बने तो नवीन विकासका नाम है उत्पाद और पहिले विकासके व्ययका नाम है व्यय। तो अवस्थायें किसकी हैं? इसके उत्तरमें जो उसमें ध्रौव्यकी सिद्धि हुई है, इसीप्रकार चैतन्यपदार्थमे भी जैसे ज्ञानगुणके नाना परिणमन हैं अभी घटको जान रहे थे अब पटको जान रहे हैं तो जाननेके विकास में तो भेद हो गया। पहिले और रूप जानन था अब और रूप जानन है पर एक जाननका व्यय समूल व्यय नही है। एक जाननका उत्पाद कुछ नवीन जाननका उत्पाद नही है, किन्तु आधारभूत ज्ञानशक्ति है इस ही ज्ञानशक्तिका पहिले घट जाननरूप परिणमन था उस ही ज्ञानशक्तिका अब पट जाननरूप परिणमन हो गया तो अवस्थायें तो हो गयी भिन्न भिन्न किन्तु उन अवस्थाओंमें अन्वयरूपसे जो गुण रहा वहगुण ध्रुव ही कहा जायगा। तो यो जैसे पदार्थमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटित होता है इसी प्रकार शक्तियोंमें भी उत्पादव्ययध्रौव्य घटित होता है।

तत्रानित्यनिदानं ध्वंसोत्पादद्वयं एतस्तस्य ।
नित्यनिदानं ध्रुवमिति तत्त्रयमप्यंशभेदः स्यात् ॥ २०६ ॥

पदार्थमें नित्यत्व व अनित्यत्वका विचार—उत्पाद व्यय ध्रौव्य जो तीन अंश सत्त्वके बनाये गए हैं उन अंशोमे इस प्रकार विभाग किए जा सकते हैं कि ध्वंस और उत्पाद ये दो तो वस्तुकी अनित्यताके निदानभूत हैं और ध्रौव्य यह वस्तुकी नित्यताका निदान है। तो वस्तुमे उत्पाद व्यय हो रहे हैं यह बात वस्तुके अनित्यत्व धर्मके कारण है अथवा उत्पादव्यय वस्तुकी अनित्यताका कारणभूत है। वस्तु कथञ्चित् अनित्य है अथवा यो भी कह सकते है कि चूंकि वस्तुमे प्रतिसमय नवीन उत्पाद और पूर्व व्यय होता रहता है। उससे यह सिद्ध है कि वस्तु अनित्य है। तो अनित्यतासे सम्बन्धित है उत्पाद और व्यय तथा ध्रौव्यसे सम्बन्धित है नित्यपना। वस्तु वहीका वही है। न किसी असत्का उत्पाद होता है न किसी सत्का विनाश होता है। अतएव वस्तु वहीका वही अनादि अनन्त शाश्वत् रहता है। यो वस्तु नित्य है। तो इस नित्यताका समर्थन ध्रौव्य अंश करता है। सो नित्यताके कारण ध्रौव्य है यह बात सिद्ध होती है। तो वस्तुमे निरखा जाय तो उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीनों ही एक एक अंश रूपमे भिन्न-भिन्न हैं। कारण यह है कि वस्तु अंशी है अर्थात् पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यमय है। पदार्थ न केवल उत्पाद स्वरूप है, न केवल व्यय स्वरूप है, न केवल ध्रौव्य स्वरूप है क्योकि वस्तु सत् है और प्रत्येक सत् परिणामी होता है। परिणामके बिना सत् नही ठहर सकता। अतएव वस्तुको न सर्वथा नित्य कह सकते हैं न सर्वथा अनित्य कह सकते है। तो जैसे नित्यत्व और अनित्यत्व ये दो वस्तुके धर्म हैं इसी प्रकार उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीनों परस्पर भिन्न भिन्न हैं अर्थात् इनका स्वरूप न्यारा न्यारा है। यद्यपि ये ऐसे भिन्न नही हैं कि उत्पाद किन्ही प्रदेशोमे हो व्यय किन्हीं प्रदेशोमे हो और ध्रौव्य किन्ही अन्य प्रदेशोमे हो। वहीका वही वस्तु उत्पादरूप है और उस ही समयमे वही वस्तु व्ययरूप ध्रौव्य रूप भी है। इसी प्रकार व्यय ध्रौव्य, उत्पाद इन तीनोका परस्परमे अविनाभाव है और एक ही समयमे वस्तु रहता है किंतु इसका जो निजी स्वरूप है उस स्वरूपकी दृष्टिसे देखा जाय तो ये तीनो परस्पर स्वरूपापेक्षया भिन्न हैं और वस्तुके अंश हैं। इनमें उत्पादव्यय अनित्यताका कारण है और ध्रौव्य नित्यताका कारण है। यो नित्यत्व और अनित्व धर्म कह लीजिये अथवा उत्पादव्ययध्रौव्य धर्म कह लीजिये, पदार्थमे ये तीन अंश हैं और इस कारण वस्तु त्रितयात्मक है।

न च सर्वथा हि नित्यं किञ्चित्सत्त्वं गुणो न कश्चिदिति ।
तस्मादतिरिक्तौ द्वौ परिणतिमात्रौ व्ययोत्पादौ ॥ २०७ ॥

शंकाकारकी शंकामें सत्त्व और उत्पादव्ययको भिन्न भिन्न मानकर नित्यत्व व अनित्यत्वकी पृथक् पृथक व्यवस्था — यहाँ कोई शङ्काकार शङ्का करता है कि यो मानना चाहिए कि द्रव्यमें सत्त्व तो सर्वथा नित्य है। किसी पदार्थका अस्तित्व सदा रहता है इस कारणसे सत्त्वको तो नित्य मान लीजिए पर अन्य किसी गुणको नित्य नहीं कहा, क्योकि अन्य गुणोंमें विकार विनाश परिणमन कभी कोई गुण रहता कभी नही रहता, आदिक बातें देखी जाती हैं। इस कारण पदार्थका सत्त्व तो नित्य है और बाकी गुण कोई नित्य नही हैं इसी कारण परिणति स्वरूप जो उत्पादव्यय है वह उस सत्त्वसे अतिरिक्त है, भिन्न है और ऐसा माननेसे ये दो बातें सिद्ध हो जाती हैं कि वस्तु नित्य है और अनित्य हैं। जब वस्तुका सत्त्व देखते हैं तब तो वस्तु नित्य हो जायगा और जब वस्तुका उत्पाद व्यय देखते हैं तो अनित्य हो जायगा। इसमे इतनी दृष्टि जरूर करना चाहिए कि उत्पादव्यय ये तो अनित्य है और सत्त्व नित्य है। इस तरह द्रव्यमे नित्यत्व और अनित्यत्वकी व्यवस्था बनाना चाहिए और अनित्यत्वकी व्याप्ति उत्पादव्ययके साथ और नित्यत्वकी व्याप्ति सत्त्वके साथ रखना चाहिए। शङ्काकारकी इस शङ्कामे यह आशय भरा हुआ है कि द्रव्यमें तो सत्त्व है और वही द्रव्यका स्वरूप है। सो द्रव्य नित्य है और उससे भिन्न है उत्पाद व्यय परिणति क्योकि यह द्रव्य की सत्ता नही रहती। तो अनित्य तो उत्पादव्यय ही रही, परिणति ही अनित्य रही। यो इस शङ्कामे परिणतिको और सत्त्वको भिन्न भिन्न सोचकर शङ्का उठाई गई है अब इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं।

सर्वं विप्रतिपन्नं भवति तथा सति गुणो न परिणामः ।
नापि द्रव्यं न सदिति पृथक्त्वदेशानुषङ्गत्वात् ॥ २०८ ॥

उक्त शङ्काके समाधानमे सत्त्वसे उत्पादव्ययको भिन्न माननेपर सत्, द्रव्य, गुण पर्याय सबकी असिद्धिका प्रसङ्ग — उक्त शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि शङ्काकारकी शङ्कामे यह भाव आया है कि सत्त्व तो भिन्न चीज है और उत्पाद व्यय भिन्न चीज है। यो प्रदेशभेदकी कल्पना आयी किन्तु इस प्रकारका प्रदेश भेद मानने से तो न गुण ही सिद्ध होंगे और न पर्याय ही सिद्ध होगी। न द्रव्य ही सिद्ध होगा, और न सत् ही सिद्ध होगा, क्योकि जब सभी चीजें भिन्न-भिन्न स्वीकार करली गई हैं, सत्त्व भिन्न है, पर्याय भिन्न है, गुण भिन्न है, पर्याय भिन्न है, गुण भी यहाँ केवल सत्त्वका माना गया है। तो इस तरह ये सारी बातें भिन्न भिन्न माननेका अर्थ हुआ कि इनका आधारभूत प्रदेश जुदा है, सत्त्व अपनी जगह है, उत्पादव्यय अपनी जगहमें हैं, तो यो प्रदेशभेद जब मान लिया तो उत्पादव्यय किसका कौन परिणमा ? उत्पाद व्यय तो निराधार रहा, उत्पादमें उत्पाद है। अब किसका उत्पाद, किस ढगसे उत्पाद यह न बन सकेगा। और, जहाँ उत्पादव्यय दोनो ही नही है वहाँ वस्तु ही क्या है ?

अपरिणामी कोई तत्त्व नही होता, द्रव्य भी कुछ न ठहरेगा और असत् ही क्या रहा? वस्तु क्या ? जिसका कोई व्यक्तरूप नही, जिसका उत्पादव्यय नही, परिणमन नही, उसका अस्तित्त्व क्या ? यो इन सबको भिन्न भिन्न स्वीकार करनेसे न तो द्रव्यकी सिद्धि है न सत्की सिद्धि है न गुणकी सिद्धि है और न पर्यायकी सिद्धि है। तब कुछ तत्त्व ही न रहा ? चिन्तन, विचार चर्चा किस बातकी ? यों उत्पादव्यय और सत्त्व को जुदा जुदा समझनेपर और सत्त्वकी नित्यताके साथ व्याप्ति और उत्पादव्ययकी अनित्यताके साथ व्याप्ति यो स्वतन्त्रतया माननेपर समस्त तत्त्वोका लोप हो जायगा। प्रदेशभेद मानकर द्रव्यसे भिन्न और पर्यायसे भिन्न मानते हुए नित्य और अनित्यकी कल्पनामे दूसरा भी एक दोष है, जिसका विवरण अब करते हैं।

अपि चैतद्दूषणमिह यन्नित्यं तद्धि नित्यमेव तथा।
यदनित्यं तदनित्यं नैकस्यानेक धर्मत्वम् ॥ २०६ ॥

उत्पादव्ययको सत्त्वसे सर्वथा भिन्न व पर्यायमात्र माननेमे अनिष्टापत्तिका दिग्दर्शन —उत्पादव्ययसे सर्वथा भिन्न पर्यायमात्र मानना और द्रव्यको उससे भिन्न सर्वथा नित्य मानना शङ्काकारके इस मतव्यमे यह दूषण आता है कि फिर तो जब कि द्रव्य जुदे हैं, पर्याय जुदे हैं और द्रव्यको माना नित्य, पर्यायको माना अनित्य तो अर्थ यह होगा कि जो नित्य है वह सदा नित्य ही रहेगा, जो सदा अनित्य है वह सदा अनित्य ही रहेगा, क्योकि अब बिलकुल भिन्न भिन्न ही दो तत्त्व मान लिए, द्रव्य भिन्न हैं, पर्याय भिन्न है तो अब पर्यायको अनित्य मानें तो वह अनित्य ही अनित्य ठहरेगा उसमे नित्यत्वकी कोई गुंजाइस नही है। और जब द्रव्यको नित्य माना तो वह नित्य ही नित्य ठहरा उसमे कोई दृष्टि ऐसी नही लगायी जा सकती कि कथंचित् द्रव्य अनित्य हो जाय, तो इसके मायने यह होगा कि जो नित्यत्व है वह सदा ही नित्य रहेगा और जो अनित्य है वह सदा ही अनित्य रहेगा। एक वस्तुमे अब अनेक धर्म नही हो सकते, क्योकि द्रव्य पर्याय भिन्न भिन्न मान लिया। पदार्थ ही एक होता और वह गुण पर्यायात्मक माना जाता तो वहाँ एकमें अनेक धर्म लगाये जा सकते थे। किन्तु जब द्रव्य पर्याय स्वतंत्र स्वतंत्र भिन्न भिन्न, एक एक, अलग अलग हैं तो वहाँ एकके अनेक धर्म न हो सकेंगे। द्रव्यको जब अनेक धर्मात्मक माना जाता तो वहाँ कथचित् नित्यपनेकी और कथंचित् अनित्यपनेकी व्यवस्था बन जाती, लेकिन अवस्था जब भिन्न मान ली गई, द्रव्यको और पर्यायकी तो अब वस्तुको एक एक धर्मरूप स्वीकार किया। तो सारी व्यवस्था यहाँ खतम हो जाती है। कोई वस्तु न रहेगा, कोई तत्त्व ही न रहेगा। यो तो सर्वथा शून्य ही हो जायगा। तो द्रव्य पर्यायको या उत्पादव्यय और सत्त्वको भिन्न भिन्य माननेपर अव्यवस्थाका दोष होता है और सकल शून्यताकी आपत्ति आती है। अब प्रदेश भेद माननेपर एक अन्तिम दोष और

बतला रहे हैं ।

अपि चैकमिदं द्रव्यं गुणोयमेवेति पर्ययोऽयं स्यात् ।
इति काल्पनिको भेदो न स्याद् द्रव्यान्तरत्वनियमात् ॥२१०॥

उत्पाद व्ययको सत्त्वसे सर्वथा भिन्न माननेपर द्रव्य गुण पर्यायके भेद व्यवहारके लोपका प्रसङ्ग एवं शून्यताकी आपत्ति—सत्को और उत्पादव्ययको भिन्न भिन्न माननेमें द्रव्य गुण पर्यायकी कल्पना निर्मूल हो जाती है क्योंकि जब भिन्न भिन्न हो गए तो जैसे जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश आदिक द्रव्य भिन्न भिन्न हैं तो उनमें यह कल्पना तो नहीं की जा सकती कि जीव द्रव्य है, पुद्गल गुण है आकाश पर्याय है आदिक रूपसे । क्योंकि वे तो स्वतन्त्र स्वतन्त्र पदार्थ हैं । तो जो स्वतंत्र सत् हैं, भिन्न भिन्न हैं, उनसे द्रव्य, गुण, पर्यायकी परस्पर व्यवस्था नही बन सकती । तो ऐसे ही सत्त्व जुदा हो और उत्पाद व्यय जुदा मान लिया गया तो इसमें द्रव्य गुण पर्यायकी कल्पना न हुई तो ये जुदे जुदे पदार्थ मान लिए गए । सो केवल कल्पनामें कुछ भी मान लो, ये पदार्थ रह नहीं सकते । जैसे कि कुछ दार्शनिकोंने द्रव्य गुण पर्याय सामान्य विशेष आदिकको भिन्न भिन्न माना है, स्वतंत्र स्वतंत्र पदार्थ माना है, और ऐसा माननेपर जब उनकी व्यवस्था न बन सकी तो एक समवाय नामका पदार्थ मानना पडा । तो जो वस्तुका यथार्थ स्वरूप है उसके विरुद्ध मान्यता होनेपर अनेक प्रकारसे मिथ्या धारणा बनाकर चलना पडता है । तो जब सत्त्व और उत्पाद व्यय भिन्न भिन्न मान लिए गए तो उसमें द्रव्य गुण पर्यायकी व्यवस्था नहीं बन सकती और इस व्यवस्थाके हुए बिना पदार्थका सत्त्व नहीं ठहर सकता, इस कारण शङ्काकार की यह शङ्का निर्मूल है । जो शङ्काकार ने माना था कि द्रव्यमे सत्त्व तो सर्वथा नित्य है और उस सत्त्वसे भिन्न परिणति मात्र उत्पादव्यय निराला है । उत्पादव्यय, अनित्य है और सत्त्व नित्य है । इस प्रकारकी शङ्का बिल्कुल ही संगत नहीं बैठती ।

ननु भवतु वस्तु नित्यं गुणाश्च नित्या भवन्तु वार्धिरिव ।
भावाः कल्लोलादिवदुत्पन्नध्वंसिनो भवन्त्विति चेत् ॥२११॥

समुद्र और तरङ्गोका दृष्टान्त देकर द्रव्य व गुणोंको नित्य तथा पर्यायोंको ही अनित्य सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास—शङ्काकार यहाँ शङ्का करता है कि द्रव्य गुण तथा पर्यायोको इस तरह समझ लेना चाहिए कि द्रव्य और गुण तो समुद्रकी तरह नित्य और पर्यायें तरंगोकी तरह उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं, याने उत्पादव्ययध्रौव्य जो तीन अंश कहे गए हैं सो उत्पादव्यय तो पर्यायोका होगा और ध्रौव्य द्रव्यका तथा गुणका होगा । सो जैसे समुद्रमे समुद्रकी दृष्टिसे वह

नित्य है और तरंगोकी दृष्टिसे अनित्य है तो वहाँ अनित्य तरगें ही तो हुई, समुद्र अनित्य नही है। और समुद्र नित्य हुआ। वह अनित्य नही है, इसी प्रकार द्रव्य और गुण ये तो नित्य होगे। इससे तो ध्रौव्य घटित होगा और पर्यायें अनित्य होगी। पर्यायोमे उत्पादव्ययध्रौव्य घटित होगा। ऐसा मान लेनेमें तो कोई दोष न होगा। फिर जो सुगम बात है जैसा कि लोगोको स्पष्ट दिखता है ऐसा क्यो नही माना जाता? अब इस शकाके समाधानमे कहते हैं।

तन्न यतो दृष्टान्तः प्रकृतार्थस्यैव बाधको भवति।
अपि तदनुक्तस्यास्य प्रकृतविपक्षस्य साधकत्वाच्च ॥ २१२ ॥

शकाकारके दिये हुए दृष्टान्तसे ही शकाकारके मन्तव्यका खण्डन और सिद्धान्तका मण्डन—शङ्काकारकी उक्त शङ्का यों ठीक नही है कि शकाकारके कथनसे ही सिद्धान्तकी पुष्टि होती है और शंकाकार जो सिद्ध करना चाहता था उससे ही विरुद्ध बात सिद्ध होती है। शकाकारका दृष्टान्त समुद्र और तरगोका था तो समुद्र और तरंगोके दृष्टान्तसे तो शकाकारके माने गए अर्थमे बाधा आती है। उस हीके अभिप्रायसे विपक्ष अर्थकी सिद्धि होती है। तो यह दृष्टान्त शंकाकारके लिए स्वयं कुठाराघात करने वाला है। इससे तो सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। जो वचन स्वय साध्यका बाधक हो अर्थात् उसके विपक्षको सिद्ध करने वाला हो वह दृष्टान्त उसके लिए असगत है अथवा उस हीका बाधक है, खुद ही अपने दिए गए दृष्टान्तसे अपने ही मतव्यका विरोध देखा जाता है। इस शंकाकारके द्वारा दिया गया उक्त दृष्टान्त ठीक नही हैं। किस प्रकारसे वह दृष्टान्त शकाकारके विरुद्ध पडता है इस बातको अब नीचेकी गाथामे कहते हैं।

अर्थान्तरं हि न सतः परिणामेभ्यो गुणस्य कस्यापि।
एकत्वाज्जलधेरिव कलितस्य तरङ्गमालाभ्यः ॥ २१३ ॥

समुद्रसे तरङ्गोंकी अनर्थान्तरताकी भांति सत्मे पर्यायोकी अनर्थान्तरता—जैसे समुद्रकी तरगे और समुद्र ये भिन्न भिन्न नही हैं, एक ही चीज हैं तो दृष्टान्तमे जो तरंग और समुद्र बताया गया है उस दृष्टान्तसे तो यह सिद्ध होता है कि सत् और उत्पादव्ययध्रौव्य ये भिन्न भिन्न नही हैं। अथवा द्रव्य गुण पर्यायें ये भिन्न भिन्न नही है। गुण पर्याय द्रव्यसे अलग रहती हो ऐसा नही है, किन्तु यह समुद्र ही तरंगोंसे डोलायमान हो रहा है। तो तरङ्ग मालाओंसे डोलायमान होने वाला समुद्र तरङ्गोसे जुदा नही है अथवा समुद्रसे तरगे जुदी नही हैं, इसी प्रकार नवीन नवीन अवस्थाओसे उत्पन्न होने वाला और पूर्व पूर्व अवस्थाओके रूपमे व्यय होने वाला

पदार्थ उन पर्यायोंसे भिन्न नहीं है। अथवा पदार्थमें वे पर्यायें भिन्न नहीं हैं। वही समुद्र जैसे उन तरङ्गों रूप है इसी प्रकार वही पदार्थ उस समयमें उन पर्यायोंरूप है। तो द्रव्यसे पर्यायें भिन्न नहीं हैं। इस बातको सिद्धकर देने वाला शंकाकारका दृष्टान्त है। तो शङ्काकार चाहता तो यह था कि यह सिद्ध किया जाय कि पदार्थमें जो द्रव्य है सो ही नित्य है पर्याय अनित्य हैं और यो पर्याय भिन्न चीज हैं, द्रव्य भिन्न चीज हैं, तो एक ही सत्त्वके उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीन अंश नहीं हो सकते, किन्तु पर्यायोंका धर्म उत्पादव्यय होगा और द्रव्यका धर्म ध्रौव्य होगा। यो भिन्नताके आधारपर जुदी जुदी बात सिद्ध करनेका शङ्काकारका मंतव्य था लेकिन शंकाकारके दिये गए दृष्टान्त द्वारा ही यह बात सिद्ध हो जाती है कि जैसे तरगें समुद्रसे भिन्न नहीं हैं इसी प्रकार पर्यायें द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं। इसी बातको और स्पष्ट रूपसे बताते हैं।

किंतु य एव समुद्रस्तरङ्गमाला भवन्ति ता एव।
यस्मात्स्वयं स जलधिस्तरङ्गरूपेण परिणमति॥ २१४ ॥

तरङ्गमालाओंकी समुद्ररूपताकी तरह पर्यायमालाओंकी द्रव्यरूपता—वे तरङ्गमालायें लहर परम्परायें समुद्रसे भिन्न नहीं हैं किंतु जो समुद्र है वह ही तरग मालायें हैं क्योकि स्वय ही वह समुद्र तरङ्गरूप परिणामको धारण कर रहा है। यहाँ प्रसङ्गमें आ सकने योग्य एक रहस्य और भी समझिये। वायुका जोर होनेपर समुद्रमें लहरें उठती हैं तो देखनेमे यो आता है कि वायुके चलनेके निमित्तसे समुद्रमें लहरें हुईं और यह बात ठीक भी है समुद्र लहरोंरूप हो रहा है। वायुके सञ्चरणका निमित्त पाकर और जब वायुका संचरण समाप्त हो जाता है तब समुद्रकी तरंगें भी समाप्त हो जाती हैं। तो समुद्र निस्तरङ्ग हो जाता है। इस स्थितिमे दो बातोंपर ध्यान देना है। प्रथम तो यह कि यद्यपि वायुके सचरणके निमित्तसे समुद्र लहरोंरूप हुआ है, तिसपर भी वायुके परिणमनसे समुद्र लहरोंरूप नहीं हुआ, किंतु समुद्र अपने आपमे अपने ही परिणमनसे लहरोरूप हुआ है। दूसरी बात यह समझना चाहिए कि जो लहरोरूप समुद्र हुआ है वही समुद्र पश्चात् आदिक तरंग रहित हो जाता है। तो जो ही समुद्र पहिले तरङ्ग रूप परिणम रहा था वही समुद्र अब निस्तरङ्ग हो जाता है। यहाँ प्रकृत बात यह समझना है कि जब तरगरूप समुद्र हुआ उस समय वे तरंगें समुद्रसे भिन्न नहीं हैं, किंतु समुद्र ही उस रूपमें परिणम रहा था और जब वह निरंग हुआ तो कहीं वे तरगें भाग नहीं गईं, निकल नहीं गईं। किंतु जो तरगरूप परिणम रहा था वहीका वही अब निस्तरग हो गया। तो समुद्रकी ही तो वे अवस्थायें हैं, समुद्रसे भिन्न नहीं हैं। इसी प्रकार प्रत्येक सत् पदार्थमे प्रतिसमय नवीन नवीन परिणमन होता रहता है। उन परिणमनोंमें विभाव परिणमन अनेक निमित्त सन्निधान होनेपर हुआ करते हैं तिसपर भी विभाव रूप परिणमा वही पदार्थ।

निमित्तकी परिणतिसे विभाव परिणमन नहीं होता है। दूसरी बात यह समझना चाहिए कि विभाव रूप परिणमन रहा हुआ पुद्गल जब विभाव, विकार रहित, अविकार रूप होता है तो वही पदार्थ जो पहिले विकार रूप परिणमन रहा था अब अविकार रूप परिणमन रहा है। वहाँ कोई दो भिन्न-भिन्न पदार्थ नहीं हैं। तो समुद्र और तरंगोका जो दृष्टान्त है वह तो सिद्धान्तका ही पोषक बन गया अब उस दृष्टान्त से यही पुष्ट होता है कि जैसे तरंगे समुद्रमे भिन्न नहीं है इसी प्रकार पर्यायें भी द्रव्यसे पृथक् नहीं है। समुद्र ही उस समय तरंगोरूप परिणम रहा है। यो पदार्थ हो उस समय उस रूप परिणम रहा है। यो द्रव्य गुण पर्याय जैसे एक सत्रूप ही है यो ही उत्पादव्ययध्रौव्य एक सत् रूप ही है। यह प्रकृत बात स्पष्टतया सिद्ध होती है। इसी बातको अब और स्पष्ट करते हैं।

तस्मात्स्वयमुत्पादः सदिति ध्रौव्यं व्ययोपि वा सदिति।
न सतोतिरिक्त एव हि व्युत्पादो वा व्ययोपि वा ध्रौव्यम्।२१५।

सत्की स्वयं उत्पादरूपता, स्वय व्ययरूपता व स्वय ध्रौव्यरूपता तथा तीनोंकी सत्मे अनतिरिक्तता उक्त दृष्टान्तसे और दृष्टान्त जिसके लिये दिया गया है उस दृष्टान्तमे सिद्धान्त घटित करनेसे यह निष्कर्ष निकलता है कि सत् ही स्वयं उत्पाद है, सत् ही स्वयं व्यय है और सत् ही स्वय ध्रौव्य है। सत्से भिन्न न कोई उत्पाद है न व्यय है, न ध्रौव्य है। जैसे कि उस समुद्र और तरंगोके दृष्टान्तमे यह बात सिद्ध होती है कि तरगें क्या है? समुद्र ही तरगरूप है और जब निस्तरंग हुआ तो समुद्र ही निस्तरंग हुआ। जब समुद्रमे हल्की लहरें उठ रही है तो समुद्रही वह हल्की लहर है। जब बहुत लहरे होने लगती हैं तो समुद्र ही वह बड़ी लहर है और जब लहररहित हो जाता है तो समुद्र ही निस्तरग हुआ है। इसी प्रकार जब जो भी पर्याय बनती है, जो ही उत्पाद होता है वह उत्पाद स्वय सत् ही है। सत् न्यारा हो, उत्पाद न्यारा हो यह त्रिकाल भी सम्भव नही है। उत्पन्न किए हुए उत्पादमे क्या बात आई। वह क्या सत्से भिन्न है? क्या उत्पाद असत् रूप है? इसी प्रकार जो व्यय होता है, जो पर्याय विलीन होती है वह विलीनता, वह व्यय क्या सत्से निराला है? यदि तरगरहित हो गया है समुद्र तो तरंगरहितपना क्या समुद्रसे निराला है? वह समुद्र तो निस्तरंग है। इसी प्रकार ध्रौव्यकी बात तो और सुगमतया समझमे आयगी। जैसे समुद्र पहिले भी वही था, अब भी वही है, कितनी ही उसमे अवस्थाये गुजरें वहीका वही है। इसी प्रकार सत् भी वहीका वही है। वह कहीं दूसरा नहीं बन गया! तो यो उस ही सतको ध्रौव्य रूपमे निरखा जा रहा है यो सत् ही उत्पाद है, सत् ही स्वयं व्यय है, सत् ही ध्रौव्य है। सत्से भिन्न न उत्पाद है, न व्यय है, न ध्रौव्य है। यों ये उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों ही अंश समुदित होकर

सत् कहलाते हैं। प्रकृतमें यह सिद्धान्त होता है।

यदि वा शुद्धत्वनयान्नाप्युत्पादो व्ययोपि न ध्रौव्यम्।
गुणश्च पर्यय इति वा न स्याच्च केवलं सदिति ॥ २१६ ॥

शुद्धनयमें केवल सत्‌का अवगम तथा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण, पर्याय का अभाव—उत्पाद, व्यय ध्रौव्य गुण, पर्यायके रहस्यको यदि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे देखा जाय तो यहाँ भेद कुछ विदित ही नहीं होते। भेद विकल्प रहित शुद्ध नयसे न उत्पाद है, न व्यय है, न ध्रौव्य है न गुण है, न पर्याय है इस आशयमें तो केवल सन्मात्र ही वस्तु है। वस्तुका समग्र सहज स्वरूप जो है वह अद्वैत मात्र है। वह स्वयं कैसा है, इसको समझानेके लिए व्यवहारनयसे उसके भेद किए जाते हैं। यह भेदीकरण एक पद्धतिसे है और आर्य है फिर भी पदार्थमें ऐसे अंश पड़े हों खण्ड हों सो बात नहीं। वस्तुको समझाने के लिये यथानुरूप भेदव्यवहार किया गया है। पदार्थ तो परिपूर्ण अपने सत्त्वमात्र है। तो शुद्धनयकी दृष्टिमें उत्पाद आदिक अंश हैं ही नहीं तो वस्तु स्वरूपमें जो भेद हो नहीं पड़ा है उसको इतना बढ़ा देना कि उत्पाद व्यय स्वतंत्र हैं और सत्त्व स्वतंत्र है, सत्त्वसे भिन्न उत्पादव्यय है, सत्त्व नित्य है उत्पाद व्यय अनित्य है, इस प्रकारकी बातें करना तो बिल्कुल ही बेहूदी बातें हैं। हाँ थोड़ा भेद करके क्योंकि समझानेके क्षेत्रमें भेदीकरणके माध्यमसे ही पार पाया जा सकता है। तो प्रयोजनवश उस निर्विकल्प अखण्ड पदार्थमें भेद करनेके बाद भी यह कहना आवश्यक है कि यद्यपि भेद दृष्टिसे गुण पर्याय उत्पादव्ययध्रौव्य यह भेद किया गया है, तथापि यह सब वस्तुसे भिन्न नहीं है, इस हीका नाम वस्तु है। अभेद दृष्टिसे वस्तु नाम है भेद दृष्टिसे गुण पर्याय उत्पादव्ययध्रौव्य यह नाम हो जाता है। तो परमार्थतः उत्पादव्यय आदिक अंशोंकी वस्तुसे, सत्त्वसे पृथकता नहीं है, किंतु वे ही समस्त गुण पर्यायें ही, उत्पादव्ययध्रौव्य ही सत् कहलाता है।

अयमर्थो यदि भेदः स्यादुन्मज्जति तदा हि तत् त्रितयम्।
अपि तत्त्रितयं निमज्जति यदा निमज्जति स मूलतो भेदः ।२१७

भेदके उन्मज्जनमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका उत्थान—उपर्युक्त समस्त कथनका सारांश यह है कि यदि भेददृष्टि की जाती है, तब तो उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों ही सतके अंशरूपमें विदित होते हैं, किंतु मूलसे भेदपद्धतिको ही दूर कर दिया जाय तब ही ये तीनों ही सन्मात्र वस्तुमें लीन हो जाते हैं। यह उन्मज्जन निमज्जन अर्थात् उठना और डूबना, यह नय दृष्टिसे हो रहा है। जब भेद विकल्प सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे देखा जाता है तो प्रतीत होता है कि वही सत उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप

परिणमता है, क्योंकि द्रव्य तो वही है। अब उस द्रव्यको भेद कल्पना करके निरखा जा रहा है। तो भेददृष्टिसे निरखनेपर व्यक्तरूपमे पहिले तो पर्यायोका ज्ञान होता है, उन परिणमनोको निरखकर और परिणमनोमे बुद्धिकृत भेद डालकर फिर यह विदित होता है कि चूंकि इतना परिणमन है तो इतने प्रकारकी इस द्रव्यमें शक्तियाँ हैं। प्रत्येक शक्तिका एक एक परिणमन है। यो शक्तियोका अनुमान करके गुण विदित किए जाते हैं। यो भेद दृष्टिमे पर्याय और गुण ये नजर आये। पर्यायका स्वरूप है उत्पादव्यय। नवीन नवीन उत्पाद होना यही पूर्व पूर्वका व्यय कहलाता है। पदार्थोंमे यह धारा अनवरतरूपसे चलती जा रही है कि प्रतिसमय नवीन नवीन पर्याय उत्पन्न होती जाती है। तो जहाँ पर्यायको देखा वहाँ उत्पाद व्यय समझमे आया और जो शक्ति निरखी गई वह ध्रुव है। इस तरह विदित हुआ, यो उत्पादव्ययध्रौव्य यह भेद विकल्प सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयके आशयमे है।

भेदके निमज्जनमे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका निमज्जन—जब भेदविकल्प निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे निरखते हैं तो वह सत् केवल सन्मात्र विदित होता है। इसी दृष्टिमे इस ग्रन्थकी ८ वी गाथामे तत्त्वका स्वरूप कहा गया है। तत्त्व सन्मात्र है जो सन्मात्र है, सहजस्वरूप है वह अपने ही सहाय है और अभेदरूप है अतएव अनादि अनन्त है। उसमें किसी भी पर वस्तुकी अपेक्षा नही है। यों तत्त्वका स्वरूप है। उस ही शुद्ध नयसे कहे गए तत्त्व स्वरूपका विवरण करनेके लिए आगे बढते हैं तो ये सब भेद कल्पनायें करके ही आगे बढते हैं। तो भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध नयका उत्पाद व्ययध्रौव्य अश है। और हैं वे तीनो एक सत्स्वरूप पर निरपेक्ष शुद्धनयमे वस्तु सन्मात्र ही है। इस विवरणसे यह विदित कर लेना चाहिए कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनो अश सत्से भिन्न नही हैं किंतु ये तीनो ही एक सत कहलाते है। जब एक सत् शब्दसे कहा गया तो उसका भी अर्थ यही हुआ—उत्पादव्ययध्रौव्यमय। और जब उत्पादव्ययध्रौव्य नामसे कहा गया तो उसका भी अर्थ यही हुआ-उत्पादव्ययध्रौव्यमय और जब उत्पादव्ययध्रौव्य नामसे कहा गया तो उसका भी अर्थ यही हुआ - एक सन्मात्र। तो यो सत्त्वसे उत्पादव्ययध्रौव्य भिन्न नही है। समुद्र और तरंगोके दृष्टांतसे भी यही स्पष्ट होता है कि जैसे वे तरंगें समुद्रसे भिन्न नही है किंतु वे तरंगमालायें ही समुद्र है इसी प्रकार उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनो सत्से अलग नही है किंतु वे तीनो ही एक सत्रूप कहलाते हैं।

ननु चोत्पादध्वंसौ द्वावप्यंशात्मकौ भवेतां हि।
ध्रौव्यं त्रिकालविषयं तत्कथमंशात्मकं भवेदिति चेत् ॥ २१८ ॥

ध्रौव्यकी अंशात्मकताके विषयमें शंकाकारकी शका—शङ्काकार कहता

है कि उत्पादव्यय ये दोनों ही अंश कहाये द्रव्यके यह तो माना जा सकता है, क्योंकि ये सदा नहीं रहते। कभी उत्पाद है, कभी व्यय है कभी नवीन उत्पादव्यय है, तो यह त्रुटित हो जानेके कारण अंशरूप है, यह बात स्पष्ट समझमें आती है। लेकिन ध्रौव्य तो वस्तुमें सदा रहता है और जो तन्मयतासे निरन्तर रहा करे उसे अंश कहा जा सकता है। जैसे जीवमें चैतन्य स्वरूप सदा रहता है तो चैतन्यको जीवका अंश तो नहीं कहा जा सकता। चैतन्य स्वरूप है, जो जीव है सो चैतन्य है, जो चैतन्य है, सो चैतन्य है, जो चैतन्य है सो जीव है। तो जो सदा निरन्तर रहता है उसे अंश कहा जायगा। ध्रौव्य भी वस्तुमे सदा रहने वाला तत्त्व है। उसके ध्रौव्यको अंशरूप क्यों कह दिया गया? और, एकायक सीधा ऐसा लौकिकजनोंको भी विदित होता रहता है कि पदार्थमें देखो अमुक पर्याय उत्पन्न हुई, अब वह नष्ट हो गयी। उत्पादव्यय उन पर्यायोंमे चलता रहता है यह बात समस्त लौकिकजनोंसे भी विदित है। तो उनको अंशात्मक अंश कह दिया जाय वह तो युक्त होगा लेकिन ध्रौव्य तत्त्वको वस्तुका अंश नहीं कहा जा सकता। उसे कैसे अंश कह दिया गया? अब इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

नैवं यतस्त्रयांशाः स्वयं सदेवेति वस्तुतो न सतः।
नैवार्थान्तरवदिदं प्रत्येकमनेकमिह सदिति ॥ २१९ ॥

उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोंको स्वयं सत्स्वरूप समझ लेनेपर उक्त शंकाका त्वरित समाधान शङ्काकारकी शङ्का यह थी कि उत्पादव्ययध्रौव्यमेंसे उत्पादव्ययको तो अंश मान लीजिए किन्तु ध्रौव्यको वस्तु अंश न कहा जाना चाहिए, क्योंकि वस्तु ध्रौव्यमय है। ध्रौव्य वस्तुमें शाश्वत रहता है। शङ्काकारके इस आशयमें प्रथम मूल यह है कि यह समझ रखा शङ्काकारने कि उत्पादव्ययध्रौव्य ये सत्के अंश हैं किन्तु ये तीनों ही सत्के अंश नहीं हैं। स्वयं ही सत् एक प्रत्येक अंशरूप है। मूल मे यदि यह बात समझली गई होती तो इस शङ्काका अवसर न आता। सिद्धान्त यह है कि उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों ही अंश स्वयं सत् स्वरूप है। किसी एक सत् पदार्थके ये अंश हुए हो ऐसा नहीं है और न पदार्थान्तरकी तरह ही ये स्वतंत्र अंशरूप हैं। किंतु स्वयं ही सत् प्रत्येक अंशरूप है। जब इस सत्को उत्पाद परिणमनरूपमें देखा जाता है तो यह सत् स्वयं उत्पादरूप है। इसी सत्को जब व्ययरूपमें निरखा जाता है सो यही सत् स्वयं व्ययरूप है और यही सत् जब ध्रौव्यरूपमे निरखा जाता है तो यही स्वयं ध्रौव्यरूप है। उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों ही सत्के उस प्रकारसे अंश नहीं हैं, जिस प्रकार वृक्षके फल फूल आदिक कहे जाते हैं। वृक्ष तो उस पूरे बड़े समस्त पेड़का नाम है और फल उसके एक देशमे पड़ा हुआ है। तो फल वृक्षका अंश है, फूल वृक्षका अंश है, इस तरह सत् कोई एक विशाल तत्त्व हो अलग और उसमें थोड़े थोड़े किन्हीं

प्रदेशोंमे किन्हीं जगहोंमें कही कही उत्पादव्यय पडे हुए हो ऐसा नही है, किन्तु वह सब स्वय ही समग्र सत् है पर्यायार्थिक दृष्टिमे वही सत् उत्पादरूप है और व्ययरूप है तो वही समग्र पूर्ण सत् द्रव्यार्थिक दृष्टिमे ध्रौव्यरूप है। ये उत्पादव्ययध्रौव्यमे सत्के कोई अश एक थोडी थोडी जगहमें रहने वाले हो ऐसा नही है। स्वयं वह समग्र सत् ही उत्पादव्ययध्रौव्य रूप हैं।

उदाहरण पूर्वक सत्की उत्पादव्ययध्रौव्यमयताका समर्थन—जैसे किसी एक मनुष्यरूपमे देखा, वह पहिले पशुरूपमें था अब उस जीवको मनुष्यरूपमे तो जीवका कोई एक हिस्सा मनुष्यरूप हो, ऐसा नही है। जैसे कि वृक्षका फलरूप है फूल रूप है यो नही है, किन्तु वह समग्र जीव ही इस है और उस जीवमे जो पशु पर्यायका व्यय हुआ है वह भी पूर्णरूपमे है। इतना होनेपर भी जब हम उस जीवकी ध्रुवतापर दृष्टि देते हैं कि वही है ना, जो पहिले पशु पर्यायमे था, अब मनुष्य पर्यायमें है तो उस ही और जब हम दृष्टि देते हैं तो वह ध्रुवरूप विदित हुआ। तो समग्र ही जीव और ध्रौव्यरूप विदित होते हैं। जैसे समुद्रकी तरगें वे समुद्रके अंशरूप तो होती हैं किन्तु समुद्र फिर क्या रहा ? तो तरंग मालायें ही तो समुद्र हैं। यो द्रव्यमें कालकी अपेक्षासे भले ही अंश हों लेकिन परमार्थतः उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों ही सत् स्वरूप कहलाते हैं।

तत्रैतदुदाहरणं यदुत्पादेन लक्ष्यमाणं सत्।
उत्पादेन परिणतं केवलमुत्पादमात्रमिह वस्तु ॥ २२० ॥

उत्पादरूपसे लक्ष्यमाण सत्की उत्पादमात्रताका दर्शन—प्रसंग यह चल रहा है कि यह सिद्धान्त है, ना कि उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत् है तो इस सम्बन्धमे शकाकार यह कह रहा था कि यहां ऐसा प्रतीत होता है कि सत् तो ध्रुव है और उत्पादव्यय अनित्य है। तो सत् ही समग्र है ऐसा नही, किन्तु जो उसमें ध्रौव्य अंश है वह तो सत्त्व है और जो उत्पादव्यय है वह सत्त्वका अश है और अनित्य है, सत्त्वसे न्यारा है। इस शङ्काके उत्तरमे बताया था कि उत्पादव्यय सत्से न [illegible] है और अंश रूप है यह कथन तो दूर रहो, किन्तु उत्पादव्ययध्रौव्य तीनों [illegible] किन्तु सत् इन तीनोरूप हैं। इस सम्बन्धमे कुछ उदाहरण [illegible] लहरें हैं तो लहरें समुद्रसे पृथक हो, अश हो सो [illegible] का ही नाम समुद्र है। समुद्रसे वे पृथक नही हैं [illegible] है और ध्रौव्यरूप है। ये तीनो कहा तो वही [illegible] है। उत्पादव्ययध्रौव्य तीनोका ही नाम एक [illegible]

उत्पादव्ययके रूपसे लक्ष्यमें लिया जाता है तो वह सत् उत्पादरूप है, उस ही सत्को जब व्ययके रूपमें देखा जाता है तो वही सत् व्यय स्वरूप है। और, ध्रौव्यके रूपको देखनेपर वही सत् ध्रौव्यरूप है जब कभी मिट्टीके लोंदेमें घड़ा बना तो घडा बननेकी स्थितिमें घडेकी मुख्यतासे जब उस वस्तुको देखते हैं तो वह वस्तु घड़ारूप है। वहाँ यद्यपि किसी दृष्टिसे ऐसा कह सकते कि घडा तो पर्याय है और उसमें जो मिट्टी है वह सत् है और ध्रुव है, लेकिन जब हम उत्पाद दृष्टिसे देख रहे हैं तो वहाँ उस उत्पादसे निराला उस पर्यायसे निराला कोई सत् विदित नहीं होता, क्योंकि लक्ष्यमें लिया गया है उत्पाद। तो वही सत् उत्पादरूप परिणत होता है, तो कह सकेंगे कि वह केवल उत्पादमात्र है।

सत्की परिणामिता होनेके कारण वस्तुमें स्वयं सर्ग संहार स्थितिकी उपपत्ति—सत परिणामी होता है, यह एक सिद्धान्त है। यदि परिणामी न माना जाय तो सत नहीं रह सकता। कोई सत हो और परिणमन न किया करे, उसमें कुछ भी हानि-वृद्धि न हो, अवस्थासे अवस्थान्तर न हो उसका कोई व्यक्त रूप न हो तब वह सत रहा क्या? सतका लक्षण ही है—परिणामिता। उसका कोई व्यक्तरूप रहना। तो अनवस्था माने बिना सत नहीं रह सकता। यही कारण है कि जिन दार्शनिकोंने सत भी मान लिया किंतु अपरिणामी माना, तो उनकी सिद्धि न हो सकनेसे फिर अन्यका सहयोग मानना पडा। जैसे ब्रह्मकी सिद्धि करनेके लिये प्रकृतिको साथ लेना पडा और वस्तु भी स्वयं उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है, त्रिदेवतामय है। जिस सृष्टि संहारस्थितिको सिद्ध करनेके लिए कुछ लोगोंने ब्रह्मा, विष्णु, महेश ऐसे तीन देवताओंकी कल्पना की है। वस्तु है और वह नष्ट होती है, उसमें नई नई अवस्थायें बनती हैं। तो जब तीन काम निरखे जा रहे हैं नई सृष्टि बनती, पुरानी मिट जाती और चीजका बना रहना। तो वस्तुमें ही ऐसा स्वभाव है इसे न जानने वाले लोग हैरान हो रहे हैं कि आखिर यह कैसे हो रहा है। नई सृष्टि कैसे बन रही है? पुरानी सृष्टि कैसे मिट रही है? तो कुछ न दीखा तो देवताओंकी कल्पना की कि कोई ब्रह्मा देवता है जो सृष्टि बनाता है, कोई महेश देवता है जो संहार करता है और कोई विष्णु देवता है जो इन सभी चीजोंको बनाये रहता है। पर वस्तुमें ही अगर यह स्वभाव न हो तो मनुष्य अथवा देवता कोई भी यह बात कर न सकेगा। वस्तुको कोई परिणमा भी दे, भगवान होकर या सामान्य कोई पुरुष तो यह तो बताओ कि उस वस्तुमें उस रूप परिणमनेकी कला है या नहीं? यदि नहीं है वस्तुमें परिणमनेकी कला तो किसी भी प्रकार वह परिणमन न हो सकेगा। यदि वस्तुमें परिणमनकी कला है तो परिणमा वह पदार्थ ही। परिणमनेमें वह स्वतन्त्र रहा। दूसरा कोई निमित्त-मात्र मान लो। यह विषय फिर दूसरा हो जायगा। तो वस्तुमें ही स्वयं उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी कला पड़ी हुई है। तो वही पदार्थ जब उत्पादरूपसे देखा जाता

है तो यह उत्पादमय है। वही पदार्थ जब व्ययरूपसे निरखा जायगा तो व्ययमय है। यह कोई भिन्न तत्त्व नहीं है जिससे कि यह व्यवस्था बनाई जाय कि जो सत्त्व है सो सत्त्व है सो तो ध्रौव्य है और उत्पाद व्यय है, जो पर्याय है वह उत्पाद व्ययरूप है। यों पर्याय निराला हो, सत निराला हो ऐसी बात नहीं है, वस्तु वही है। उसको नवीन अवस्थाके रूपमें देखा तो वह उत्पादव्यय प्रतीत हुआ। जब पुरानी अवस्थाके व्ययरूपमें देखा तो वह व्ययरूप प्रतीत हुआ। उत्पादव्यय सतसे निराला नहीं है।

यदि वा व्ययेन नियतं केवलमिह सदिति लक्ष्यमाणं स्यात्।
व्ययपरिणतं च सदिति व्ययमात्रं किल कथं हि तन्न स्यात्।२२१

व्ययरूपसे लक्ष्यमाण सत्की व्ययमात्रताका दर्शन जैसे कि उत्पादका लक्षण बनाया था तो सत केवल उत्पादमात्र दीखा था, इसी प्रकार जब सत केवल व्ययका लक्ष्य बनाया जाता है, व्ययके रूपसे निरखते हैं तो वहाँ सत केवल व्ययमात्र ही है दृष्टा हमेशा किसी एक धर्मको निरखता है। दृष्टामे इतनी सामर्थ्य होती है कि वह सर्व दर्शन किए हुए होता है, पर दृष्टि केवल एक तत्त्वको निरखनेवाली होती है, दृष्टा और दृष्टिमे यही भेद है। दृष्टा परिपूर्ण होता है, पर दृष्टि एक ही तत्त्वको निरखने वाली होती है। तो जब सतको केवल व्ययरूपसे देखा तो दीखा कि सत व्ययमात्र है और इनका प्रभाव भी अलग अलग होता है। जैसे तीन पुरुष सर्राफके यहाँ सोना खरीदने चले तो एकको लेना था मान लो अभिषेकके लिए स्वर्णकलश, एकको लेना था स्वर्णमुकुट और एकको लेना था स्वर्ण। सुनारके यहाँ कलशियाँ बहुत दिनोसे पड़ी हुई थी बिकती न थी। तो सोचा कि इनका मुकुट बना देंगे तो जल्दी बिक जायगा। सो कलशियाँ तोड़कर मुकुट बना रहा था। वहाँ ये तीनो पुरुष पहुंचे। सो जिसे कलश लेना था वह उस घटनाको देखकर दुखी तो हुआ किन्तु दृष्टि की बात बताते हैं कि उसे केवल कलश व्यय ही दिख रहा है। उस समय उसकी दृष्टि मुकुटपर नही है इसलिए उसे वहा स्वर्णमुकुट नही दिख रहा, किंतु कलशियोका व्यय रूप दिखता है, क्योंकि व्ययकी दृष्टि बनाया। तो इसी प्रकार कोई पुरुष जब व्ययका लक्ष्य बनाकर वस्तुको देखता है तो उसे व्ययमात्र वह पदार्थ नजर आता है। जैसे किसी पुरुषका कोई इष्ट गुजर गया जिससे अधिक प्रीति थी, तो इष्टके गुजर जानेपर उसे वह व्ययमात्र ही दीखता, सारा लोक शून्य शून्य सा नजर आता। अब कुछ सामने है, मगर जो सामने है वह उसकी निगाहमे नही। उसकी निगाहमे अभाव है, व्यय है, शून्य है। तो दृष्टि उसकी कमी ना ! इस तरह तो उसे सारा जगत शून्य दीखा। इसी प्रकार किसी पदार्थके व्ययकी दृष्टि हुई तो उसे उस पदार्थका व्ययरूप ही नजर आ रहा है। उत्पाद उसकी नजरमें नही है। इससे विदित होता है कि उत्पादव्यय सतसे निराला नही है, क्योंकि जैसे उत्पादकी दृष्टि कर रहे थे तो उसे

उ प द्व्यय सत दिख रहा, इसी प्रकार व्ययका लक्ष्य करके जो सतको निरख रहा है उसे सत व्ययमात्र दिखता है।

ध्रौव्येण परिणतं सद्यदि वा ध्रौव्येण लक्ष्यमाणं स्यात् ।
उत्पादव्ययवदिदं स्यादिति तद् ध्रौव्यमात्रं सत् ॥ २२२ ॥

ध्रौव्यरूपसे लक्ष्यमाण सत्को ध्रौव्यमात्रताका दर्शन जब सत् ध्रौव्य रूपसे देखा जा रहा हो तो सत् ध्रौव्य परिणामको धारण कर रहा है। इस द्रष्टा पुरुषने ध्रौव्यका लक्ष्य बनाया तो सत् वहाँ उत्पादव्ययकी तरह ध्रौव्यमात्र नजर आ रहा है। यह बात जब वस्तुके अन्त, स्वरूपपर दृष्टि देकर देखी जाय तो सुगमतया विदित होता, जैसे उस घडेमे घडा और पिण्डका व्यय इसपर दृष्टि न रखकर मात्र मिट्टीपर दृष्टि रख रहा है तो उसे सब कुछ मिट्टीरूप नजर आता है। सब ध्रुव नजर आता है। जैसे कि वह तीसरा पुरुष जो स्वर्ण खरीदने बाजार गया था तो कलशियाँ टूटकर मुकुट बन रहा था पर उसे हर्ष विषाद कुछ न था। कलशियाँ रहती तो खरीदता मुकुट बना तो खरीदता और उसे हर अवस्थाओमे केवल सोना ही दिख रहा है। कलशियाँ होती तो उसे कलशिया न दिखती सोना दिखता। उसको खरीदते समय न कलशियोकी बनवाई देता, बल्कि कलशियोमें जो सोनेका ही मैल लगा होता उसे काटकर बाकी दाम देने पडते। तो जैसे स्वर्ण चाहने वालेको उन सब अवस्थाओ मे स्वर्ण ही नजर आता है इसी प्रकार ध्रुवपर दृष्टि देने वालेको सर्व सत्मे केवल ध्रौव्य ही दृष्टिगत होता है। तो जब किसी द्रष्टाने इस सत्को ध्रौव्यरूपसे तका तो उसे सत् ध्रौव्यमात्र प्रतीत होता है। ये जो अभी उत्पादव्यय ध्रौव्यमयताके सम्बन्धमें श्लोक कहा उनमे यह निषेध किया गया है कि उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत्से भिन्न है इसका निषेध है, अर्थात् ये तीनों सत्से भिन्न नहीं हैं सत्के कोई एक एक भाग भी नही हैं। जैसे वृक्षके हिस्से फल फूल पत्ते आदिक हैं उन्हें वृक्षका एक एक अंग अथवा अश कह सकते हैं, क्योकि वृक्ष है समूचा और फल है जरा सी जगहमे। पत्ते, फल कही हैं कही नही हैं। सब वृक्ष फूलसे निराले हैं फलसे निराले हैं इस कारण फल फूलको वृक्षके अश कहा जा सकता है, किन्तु उत्पादव्ययध्रौव्य सत्के अंश नहीं कहे जा सकते। ऐसा अश नहीं है कि उस सत् पदार्थमें किन्हीं जगहोमें उत्पाद पडा हो, किन्हीमें व्यय और किन्हीं प्रदेशोमें ध्रौव्य। सारेका सारा ही सत् समस्त प्रदेश उत्पाद की दृष्टिमें उत्पादव्यय हैं, व्ययकी दृष्टिमें व्ययमय हैं, ध्रौव्यकी दृष्टिमें ध्रौव्यमय हैं।

उदाहरणपूर्वक समग्र सत्की सदा उत्पादव्ययध्रौव्यरूपताका दिग्दर्शन जैसे, कोई जीव पहिले मनुष्य था। अब मरकर देव बन गया। तो जब देव बन गया तो तीनो बातें वहाँ घटित होती हैं ना। देव हुआ, मनुष्य मिटा, जीव बराबर रहा तो उस जीवमें ये तीनो अश, देवका होना, मनुष्यका मिटना और जीवका बना रहना,

क्या उस जीवमें ये अलग-अलग पडे हुए हैं ? जिस समय देव हैं उस समय वह सारा ही जीव देव स्वरूप है। देव बना, मनुष्य मिटा तो वह सारा ही जीव मनुष्य मिटने रूप है। और जब पर्यायोंसे दृष्टि हटाकर केवल जीवत्वपर दृष्टि दे रहे हों तो उस समय वह सारा जीव जीवस्वरूप है, ध्रुव है, वहाँ ऐसा नहीं है कि देव हो जानेपर जीवके कुछ हिस्सेमे तो देव भरा हुआ हो और किन्ही हिस्सोमे मनुष्य भरा हो और किन्ही हिस्सोमें ध्रुव पड़ा हो। वह तो परिपूर्ण एक ही पदार्थ है एक ही उत्पादके रूपमे उत्पादरूप दिख रहा, व्ययकी दृष्टिमे व्ययरूप और ध्रौव्यकी दृष्टिमे व्ययरूप दिख रहा। तो सत् त्रियात्मक है। ये तीनो सत्के अंश नहीं हैं। जो सूत्रजीमे कहा है उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत् उस सत्का अर्थ धनयुक्त जैसा अर्थ न लेना क्योंकि धन जुदा है और धनी पुरुष जुदा है। यह तन्मयता युक्तपनेमे है सत् उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है, न कि उत्पादव्ययध्रौव्यसे सहित है। भिन्न चीज नही है किन्तु सतका स्वरूप ही इस रूप है कि वह उत्पादरूप हो व्ययरूप हो, ध्रौव्यरूप हो यही कारण है कि प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक समयमें त्रियात्मक रहता है। जैसे मिट्टीका घडा बनो तो वही समय घडेका उत्पादरूप है, उसी समय पिण्डका व्ययरूप है और उसी समय वह मिट्टीमय है तो उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीन स्वरूप ही सत है। सत वाला कहकर शङ्काकारने उसे नित्य कहा और उत्पाद व्यय वाला तककर उसे अनित्य कहा यह युक्तिसगत नहीं है।

संदृष्टिम् द्रव्यं सता घटेनेह लक्ष्यमाणं सत्।
केवलमिह घटमात्रमसता पिण्डेन पिण्डमात्रं स्यात् ॥ २२३ ॥

सत्की कथञ्चित् उत्पादमात्रता व व्ययमात्रता—उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोमय ही सत् है, इस बातको सिद्ध करनेके लिए अब लौकिक दृष्टान्त देते हैं। जैसे कि मिट्टी जब घटरूपसे लक्ष्यमाण होती है उस समय वह घटमात्र है। घटरूपसे निरखी गयी वह मृतिका घटमात्र ही नजर आती है और जिस समय पिण्डरूपसे जो कि असत् है, अब पिण्डरूप नही रहा जिसका कि व्यय हो गया ऐसे असत् स्वरूप पिण्डके लक्ष्यसे जब उस ही वस्तुको देखा जाता है तब वह वस्तु व्ययरूपमे पिण्डमात्र है। यों जिस तरह यहाँ लोकमे निरखा जारहा है जिसमें कि जरा भी असत्यताकी बात नही मालूम होती है। मिट्टी ही घट पर्यायसे लक्ष्यमान होती हुई घटमात्र नजर आ रही है, वहाँ अन्य कोई धर्म की कल्पना नहीं है और वही पिण्डका व्यय हो गया, तो जिसका व्यय हो गया उसरूपसे जब देखा जा रहा है अर्थात् पिण्ड व्ययरूपसे देखा जारहा तब वहाँ पिण्ड व्ययमात्र घट नजर आता है, इसी प्रकार प्रत्येक सत को जब उत्पादके रूपसे लक्ष्यमाण किया जाता है तब वह सत उत्पादमात्र है और जब उस ही सतको व्ययरूपसे लक्ष्यमाण किया जाता है तब वही सत व्ययमात्र है। उत्पादव्ययका

दृष्टान्त बताकर अब ध्रौव्यके लिए दृष्टान्त कहते हैं।

यदि वा तु लक्ष्यमाणं केवलमिह मृच्च मृत्तिकात्वेन।
एवं चैकस्य सतो व्युत्पादादित्रयश्च तत्रांशाः॥ २२४॥

सत्‌की ध्रौव्यमात्रताके दर्शनकी दृष्टि—जब वही मिट्टी केवल मिट्टी रूपसे निरखी जा रही है तो वह केवल मिट्टीमात्र है। जैसे कि जिस पुरुषको स्वर्ण दरकार थी वह बाजारमे गया तो चाहे वह स्वर्ण किसी पर्यायमे हो, उसकी पर्यायकी ओर दृष्टि नही है. क्योंकि उसे तो स्वर्ण ही स्वर्ण नजर आता है। इसी कारण जैसे आभूषणमे टांका लगा है उसे तजकर केवल स्वर्णको देखता है ऐसे ही पिण्ड था, अब घडा हुआ और घडेका व्यय होकर कपाल बन गया। सभी स्थितियोमे यदि कोई मिट्टीरूपसे ही निरख रहा है तो सर्वत्र उसे मिट्टी ही विदित होती है, इसी प्रकार प्रत्येक सतमें किसी भी सतमे कोई दृष्टा जब ध्रौव्यरूप ही देख रहा है जो त्रिकाल रहता है, एक रूप रहता है, अंत. सहज स्वभावमें है इस ढगसे जब निरख रहा है अर्थात ध्रौव्यसे लक्ष्यमाण जब सत हो रहा है तो उस समय उसकी दृष्टिमे सत ध्रौव्यमात्र है, इस तरह एक ही वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप है, ये तीन अंश हैं किन्तु ये तीनों अंश भिन्न भिन्न नही हैं। समुदायरूप नही हैं किन्तु वही सत समग्र उत्पादरूप से निरखा गया तो उत्पादमय है, व्ययरूपसे निरखा गया तो व्ययस्वरूप है, ध्रौव्यरूप से निरखा गया तो ध्रौव्यस्वरूप है। सो सत उत्पादव्ययध्रौव्यमय होता है।

न पुनः सतो हि सर्गः केनचिदंशैकभाशमात्रेण।
संहारो वा ध्रौव्यं वृक्षे फलपुष्पपत्रवन्न स्यात्॥ २२५॥

सत्‌के अंश एक भागमात्ररूपसे उत्पादव्ययध्रौव्यकी अमान्यता-शंकाकार की वह शका इस आधारपर हुई थी कि उसने यह मान रखा था कि जैसे वृक्षमे फल फूल पत्र हुआ करते हैं तो फल वृक्षके किसी हिस्सेमे हैं पत्र फूल आदिक किसी हिस्से में हैं, सारा ही वृक्ष फलमय नही है। पत्र फूलमय नही है। तो जैसे वृक्षके ये भाग बुद्धिमे पृथक मान लिए जाते हैं और तभी यह बात देखी जाती है कि कोई फल गिर गया तो वृक्ष तो नहीं गिर गया। तो इस तरह उसमे दो किस्मकी पद्धति देख ली जाती है। वृक्ष नित्य रहा फल फूल अनित्य रहे। यह गिरना बोला जाता है, ऐसी ही दृष्टि रखकर सत वस्तुको देखा था शङ्काकारने, वहाँ भी यह बात मान ली गई थी कि सत एक है और उसका अंश उत्पादव्ययध्रौव्य कहा जाता है। जैसे कि वृक्षके अंग फलफूल मात्र कहे जाते हैं, बस इस ही दृष्टिको लेकर शङ्काकारकी वह शङ्का थी कि वस्तुके उत्पादव्यय तो भाग हैं जो मिट जाते हैं, होते हैं, बदलते हैं, पर ध्रौव्य

कोई भाग नहीं है। सारी ही वस्तु ध्रौव्यात्मक है, उसे अंश क्यों कहा ? उसका उत्तर हो ही गया है कि तीन अंशात्मकरूपसे सत पाया जाता है। तो चूंकि वे तीन हैं और उनका स्वरूप परस्परमे जुदा जुदा है इसलिए वे अंश कहलाते हैं, लेकिन वे वृक्षमे फल फूल पत्रकी तरह अंशरूप नहीं हैं। किसी अंशके एक भागमे उत्पाद पडा हो, सत्के किसी अंशके एक भागमें संहार पडा हो और किसी एक भागमे ध्रौव्य पडा हो ऐसा नहीं है। वृक्ष फलमे तो यह बात पायी जाती है, पर सत्मे यह बात नहीं है।

सत्के सर्व प्रदेशोंमे उत्पादरूपता व्ययरूपता, व ध्रौव्यरूपता—सत् तो जितने प्रदेश वाला है उन सर्व प्रदेशोमे उत्पाद व्यय, ध्रौव्य है। कोई सत् असख्यात प्रदेशी है कोई अनन्त प्रदेशी है कोई एक प्रदेशी है। जैसे कि जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशी है। जितने लोकाकाशमे प्रदेश हैं उतने ही प्रदेश प्रत्येक जीवमे हैं। संकोच विस्तारके कारण उनमे व्यक्तिरूपकी घटा बढी हुई है लेकिन प्रदेश उतने ही हैं सबमे जितने कि किसी भी एक जीवमे हो सकते हैं। इस बातकी प्रसिद्धि स्पष्टतया तब हो जाती है जब कि लोकपूरणसमुद्घात होता है, समुद्घातोमे केवल एक लोकपूरण समुद्घातकी स्थिति है ऐसी कि जिस समयमे एक जीवके प्रदेश पूरे लोकाकाशमे फैल गए हो, और लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर उस जीवका एक एक प्रदेश आ गया हो, इसे कहते हैं समवर्गणाकी स्थिति। तो भले ही विस्तार बने तो इतना तक बने और सकोच बने तो अगुलिके असंख्यातवें भाग लोकाकाशके प्रदेशमात्रको घेरे, इतना संकोच हो जाय तो भले ही संकोच विस्तार हो, लेकिन जीवके प्रदेश उतने ही हैं जितने कि लोकाकाशके प्रदेश हैं। पुद्गल द्रव्यमे परमार्थत. एक ही प्रदेश हैं, क्योकि एक अणु ही परिपूर्ण द्रव्य है, एक परमाणुमे एक प्रदेशी होता है, किन्तु पुद्गलमे पुद्गलत्व है। गलन और पूरणका स्वभाव पडा हुआ है। वे अणु परस्परमे ऐसा बंध जाते हैं कि वहां व्यवहारमे एकत्व हो जाता है। तब स्कधकी अपेक्षासे उनमे बहु-प्रदेशत्व होता है। कोई स्कंध दो प्रदेश वाला है, कोई तीन चार प्रदेश वाला, कोई असख्यात प्रदेशी और कोई अनन्त प्रदेशी भी होता है। धर्मद्रव्य असंख्यात प्रदेशी है, अधर्मद्रव्य असंख्यात प्रदेशी है, आकाश द्रव्य अनन्त प्रदेशी है। यद्यपि आकाशके दो भेद कर दिए गए हैं लोकाकाश और अलोकाकाश लेकिन यह भेद उपचरित हैं। जितने आकाशमे शेष ५ द्रव्य भी पाये जायें उतनेको लोक कहते हैं और जहां केवल आकाश ही आकाश है, शेष ५ द्रव्य नहीं हैं जीव पुद्गल धर्म अधर्म और काल नहीं हैं उस भागको अलोकाकाश कहते हैं। लेकिन इस तरहका विभाग कर देनेसे कहीं आकाशके भेद नहीं हो जाते। आकाश एक ही है और वह अनन्त प्रदेशी है। आकाश अनन्त प्रदेशी है यह बात युक्तिसे समझी जा सकती है। कोई बताये कि किस जगहसे आकाशका अंत हो जायगा? कितना ही चला जाय, बुद्धि कितनी ही दूर तक आकाश में चली जाय, पर कहीं आकाशका अंत हो जायगा क्या ? यदि अन्त आयगा तो

उसके बाद क्या है? यह बताना होगा। कोई मोटी चीज हो या खाली जगह हो दोमें से कुछ तो होगा। खाली जगह है तो वह स्पष्ट आकाश ही तो है। कोई मोटी चीज है तो वह जहाँ रह रही है वहाँ भी आकाश ही तो है। तो आकाशका कहीं अन्त नहीं आ सकता। यो आकाश अनन्त प्रदेशी है काल द्रव्य एक प्रदेशी है लो आकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य स्थित है। यो असंख्यात कालद्रव्य हैं। जो पदार्थ जितने प्रदेशरूप है वह उतना अखण्ड एक एक है। वहाँ जो उत्पाद होगा सो सर्व प्रदेशोमे वस्तुका उत्पाद है अर्थात् अवस्था बनती रहती है। व्यय है तो सर्व प्रदेशोंमें उस अवस्थाका व्यय है; ध्रौव्य है तो वह भी सर्व प्रदेशोमे है। वस्तुके किसी भागमें उत्पाद रहे व्यय रहे, ध्रौव्य रहे, यह बात सम्भव नहीं है। तो इस तरह यह सत् उत्पाद आदिक तीनो ही अशरूप है।

ननु चोत्पादादित्रयमंशानामथ किमंशिनो वा स्यात् ।
अपि किं सदंशमात्रं किमथांशमसदस्ति पृथगिति चेत् ॥२२६॥

उत्पादव्ययध्रौव्य धर्मके सम्बन्धमे शकाकारके चार प्रश्न विकल्प— अब शङ्काकार इस विषयमे चार विकल्प रख रहा है कि क्या उत्पादव्यय आदिक तीनो ही अंशोके होते हैं अथवा अशीके होते हैं। याने उत्पादव्य ध्रौव्य ये क्या अंशोके प्रकार हैं अथवा ये तीनो किसी एक अशीके हुआ करते हैं? तीसरी बात कि क्या वे उत्पाद आदिक तीनो सत्के अशमात्र हैं जैसे कोई वृक्ष है और उसका अश है फल फूल पत्रादिक क्या इस प्रकार उस सत्के एक अशमात्र ही है? अथवा चौथी बात यह पूछी जा रही है कि असत् अश रूप भिन्न भिन्न हैं अर्थात् सत्त्व कोई अलग चीज है और उससे अलग है उत्पादव्ययध्रौव्य, तो जो सत्से अलग हो वह तो असत् कहलायेगा तो यो उत्पादव्ययध्रौव्य ये क्या असत् अशरूप हैं? सत् अंशरूप हैं ऐसा पूछा जानेपर यह बात तो अपने आप समझ ली गई कि है भिन्न भिन्न हैं। सत् है कोई एक वस्तु और उससे भिन्न है उत्पादव्ययध्रौव्य। तो जो सत्से भिन्न है वह असत् ही तो है। तो यों उत्पादव्ययध्रौव्य असत् अशरूप है और भिन्न भिन्न है। क्या यह चौथी बात सत्य है? इस प्रकार शङ्काकारने सत्के सम्बन्धमें और उत्पादव्ययकी सहिततामें ये चार विकल्प किए हैं। अब इन चारो विकल्पोका उत्तर कहेंगे।

तन्न यतोऽनेकान्तो बलवानिह खलु न सर्वथैकान्तः ।
सर्वं स्यादविरुद्धं तत्पूर्वं तद्विना विरुद्धं स्यात् ॥ २२७ ॥

अनेकान्त दृष्टिमे विचारोकी अविरुद्धता बताकर शकाकारकी शंका के समाधानका उपक्रम —शङ्काकारने जो चार विकल्प उठाकर प्रश्न किये हैं कि

क्या उत्पादादिक तीनो ही ये अशोकी चीजें हैं, अथवा ये अंशीकी चीजें है, या सत्के अशमात्र हैं, अथवा पृथक पृथक असत् अंशरूप है ? यों चारो प्रकारके प्रश्न यदि अनेकान्तकी दृष्टि होती तो न उठते । वस्तु स्वरूपके निर्णयमे अनेकान्तका ही महत्व है । और यथार्थ निर्णयके उपायोमे अनेकान्त ही बलवान है सर्वथा एकांत बलिष्ट नही होता । सो ये सबके सब प्रश्न यदि अनेकान्त दृष्टिसे किए गए हैं तो सभीकी सभी बातें अविरुद्ध हो जाती है । विवक्षाके अनुरूप कुछ भी कहा जाय उसमें विरोध नही आता, लेकिन अनेकान्तको छोडकर केवल एकान्तरूपसे ही उपर्युक्त प्रश्न किये गये हो तो वे परस्परमे एक दूसरेके विरोधी हैं । भगवत् शासन प्रम णनय त्मक है । किसी भी पदार्थका विवेचन किया जाय तो वह नयसे सबका सब विवेचन सगत है । यदि नय दृष्टिको छोड दिया जाय तो वह विवेचन असंगत होता है ।

स्याद्वादकी यथार्थ निर्णयकता—स्याद्वादमे यद्यपि व्यक्तरूप ऐसा है कि कभी वस्तुको किसीरूप कहा गया, कभी किसी रूप कहा गया तो यो न समझना चाहिए कि जैन शासनमे किसी बातका निर्णय ही नही है । कारण यह है कि जैन दर्शन नय विवेचनासे निर्णयमे पहुचाता है । अतएव उस अपेक्षामे जिस अपेक्षासे कथन किया गया है, वस्तुमे रंच भी संशय नही है । जैसे किसी पुरुषका परिचय किया जाय कि यह देवदत्त अमुकका पिता है अमुकका पुत्र है, तो वहाँ नाम लेकर, जैसे कि देवदत्त मैत्रका पिता है तो वहाँ यह कहा जायगा कि यह मैत्रका पिता ही है । निर्णय पूरा बसा हुआ है । वहाँ संशयका क्या साधन और जब कहा जाय कि देवदत्त मैत्रका पुत्र है तो वहाँ निर्णय है कि यह मैत्रका पुत्र ही है । इसमे संशयकी क्या गुजाइस ? लेकिन सभी लोग समझते हैं कि यह निर्णयरूप चीज है । और, उस पुरुषमे पितापन, पुत्रपन आदिक अनेक धर्मभी पाये जाते है तो कभी वह देवदत्त पितारूप है कभी पुत्र-रूप है, इतनेपर भी वहाँ संशयका स्थान नही है । इसी प्रकार जब पदार्थके सम्बन्धमे कहा जाता है कि यह द्रव्य दृष्टिसे नित्य है, तो वहा यह निर्णय पडा है कि पदार्थ द्रव्य दृष्टिसे नित्य ही है, वहाँ अनित्यकी गु जाइस नही । जब कहा कि पदार्थ पर्याय दृष्टिसे अनित्य है तो वहाँ यह निर्णय पड़ा हुआ है कि पदार्थ पर्याय दृष्टिसे अनित्य ही है । संशयका वहा स्थान नही है । तो स्याद्वादमे संशयका स्थान नही है, क्योकि वस्तु एक धर्मात्मात्मक नहीं, अनेक धर्मात्मक है, इस कारण वह अनेक रूपसे ही कहा जाता है । उसको एक रूपसे कहे तो उसका स्वरूप बिगाडना होगा । जैसे देवदत्तके बारेमे कहा कि यह तो पिता ही है, सबकी अपेक्षासे पिता है, सर्वथा एकान्त हठ करले तो बात विरुद्ध हो जायगी और कहने वालेकी विडम्बना बन जायगी । लोग उसे पीट भी देंगे कि लो यह हमारा भी पिता कहता । सारी दुनियाका पिता बताता । तो अपेक्षा दृष्टि लगाकर जो निर्णय होता है उसमे निश्चय ही पडा हुआ है, और अपेक्षा दृष्टि न लगाकर फिर उस धर्मका एकान्त किया जाय तो वहाँ विडम्बना हो जाती है,

तो यो यद्यपि पदार्थ अनेक धर्मात्मक है यह बात प्रमाणसे स्वीकार की है । तो वह प्रमाणसे स्वीकार किये गये ग्रहण किये गये पदार्थमें जब किसी एक धर्मकी मुख्यतासे निरखते हैं तो उस दृष्टिमे पदार्थ उस ही धर्मरूप है ।

अनेकान्तके आश्रय विना चर्चाओंकी विरुद्धरूपता—अनेकान्तका सहारा लिए बिना कोई लौकिक बात भी सिद्ध नहीं हो सकती । सभी जन जिस चीजको जिस नामसे कहते हैं बिना विवादके वे समझते हैं उनको किसी प्रकारका संशय नहीं होता है । किसीने कहा कि यह चौकी है, तो यह चौकी है इतने कहने वालेके हृदयमे सुनने वालेके चित्तमें यह निर्णय पडा हुआ है कि यह चौकी ही है, अन्य कुछ नहीं हैं। सैद्धान्तिक भाषामे कहा जाय तो यह चौकी अपने चतुष्टयसे है पर चतुष्टयसे नहीं है । तो यहाँ कोई प्रश्न करता कि यह चौकी चौकी ही क्यो है ? और कुछ क्यो नही हो गई ? तो निर्णय पडा हुआ है कि चूंकि इस चौकीमे किसी भी पर वस्तुका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नहीं है; इस कारण यह चौकी ही है, अन्य कुछ नहीं है । तो चौकी अपने स्वरूपसे है पर स्वरूपसे नहीं है, यह बात निर्णय रूपसे है । यदि चौकी अपने स्वरूपसे भी न रहे, जैसे कि पर स्वरूपसे नही रहती तो चौकीका सत्त्व ही कुछ न रहेगा । यदि चौकी पर स्वरूपसे भी हो जाय, जैसा कि अपने स्वरूपसे होना कहा जाता है तो पर स्वरूपसे हो जानेसे वह चौकी ही क्या रही ? वह तो विश्वरूप होगई अब वहाँ चौकी है यह बात विविक्ततासे कही ही नहीं जा सकती है । तो पदार्थ यों अपने चतुष्टयसे सद्भावरूपसे है और पर चतुष्टयसे अभावरूप है । यो स्याद्वादसे ही वास्तविक निर्णय सम्भव है ।

स्याद्वादमे संशयका अनवकाश—स्याद्वादको संशयात्मक वह ही कह सकेगा जिसने न संशयका स्वरूप समझा है और न स्याद्वादका स्वरूप ही समझा है । स्याद्वाद का अर्थ है अपेक्षा लेकर धर्मको निश्चयपूर्वक कहना और संशयका अर्थ है कि विरुद्ध दो अथवा अनेक कोटियोमे तुलते रहना । किसी भी निर्णयमे न पहुचे । सो स्याद्वादके निर्णयमें संशयका स्वरूप नहीं आता, क्योकि वहा उस दृष्टिमे उस निर्णयपर पहुचता है यह जीव । और स्याद्वादका स्वरूप निर्णयात्मक ही है । वहा अनिर्णयकी बात ही नही पडी है । जिन दार्शनिकोके चित्तमें यह शल्य है कि एक वस्तुमे अनेक धर्म नहीं रह सकते हैं तो वह वस्तुके स्वरूपके यथार्थ बोधसे परे है. अन्यथा वे ही बतायें कि चौकीको चौकी कहते हैं तो चौकी ही क्यो कहते ? पुस्तक, दवात, भीट आदिक क्यो नही कहने लगते ? इसका उत्तर साफ यह है कि चौकीमें चौकी स्वरूप ही रह रहा है । इसलिए चौकी चौकी ही कही जाती है. उसमे भीटका धर्म नहीं अन्य पदार्थोंका धर्म नहीं । प्रत्येक पदार्थमें अपना ही स्वरूप रहता है, किसी अन्य पदार्थका स्वरूप नहीं रहता । तो स्याद्वादसे ही वस्तुका निर्णय होता है । यहाँ यदि स्याद्वादका आश्रय

लेकर विकल्पोको घटित किया जाये तो वहाँ समाधान सही हो जाया करता है। वह किस तरह ? सो आगेकी गाथामे कहते हैं।

केवलमंशानामिह नाप्युत्पादो व्ययोपि न ध्रौव्यम्।
नाप्यंशिनस्त्रयं स्यात् किमुतांशेनांऽशिनो हि तत्त्रितयम्।२२८।

शङ्काकारके विकल्पोका समाधान——केवल अंशोका ही उत्पादव्यय ध्रौव्य नही होता और न वे दोनो केवल अंशीके होते है और वे तो अंशीके अंशरूप से है। पृथकसे अंश होनेका चौथा विकल्प तो एकदम असङ्गत है। उत्पादव्ययध्रौव्य ये स्वयं वस्तुके स्वरूपसे हैं और वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है। तो ये अंशोके नही हुआ करते, वह पदार्थ ही इन तीनो रूप है। और ऐसा भी नही कह सकते कि पदार्थ तो बन जाय अंशी, और ये बन गए अंश। जैसे कि वृक्षके फल फूल आदिक। उस तरहसे भी इसमे विभाग नही हैं। किंतु अंशीके अंशरूपमे ये उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीन धर्म होते हैं। अब यहाँ प्रथम विकल्प जो किया था कि उत्पादादिक तीन अंश अंशीके होते हैं तो ये तीनो अंशरूप है एक दृष्टिमे, क्योकि समग्र पदार्थ तृतीयात्मक हैं, तब उनमे से एक बात कहना यह तो वस्तुका एक भाग हो गया ना ? और भागका ही नाम अंश है तो इस दृष्टिसे उसे कह सकते हैं कि यह अंश अंशरूप है और चूंकि वह तीन रूप होता है एक सत्। वह सत् हुआ अंशी और उस अंशीके ये अंश हुए धर्म। तो एक दृष्टिसे यह भी कह सकते हैं कि ये अंशीके होते हैं और ये सत्के अंश मात्र हैं क्या ? ऐसा प्रश्न किया था। तो भेद दृष्टिमे यह भी प्रतीत हो जाता है और चौथे विकल्पमे पूछा गया था क्या यह असत् अंश रूप कोई पृथक पृथक चीज है ? यदि ये अंश प्रथक हो तो वास्तवमे असत् हैं। इस ढगसे देखा जाय तो प्रथक प्रथक, अंशरूप यह है ही नही। वस्तुसे प्रथक उत्पादव्ययध्रौव्य धर्म नही होता है। तो इस तथ्यको नयदृष्टिसेसुलझाया जाय तो ये सभीकी सभी बातें अनेकान्तके आश्रयमे विरोध रहित प्रतीत होती है किन्तु अनेकान्तका सहारा छोडकर केवल एकान्त आग्रको देखा जाय तो ये चारोकी चारो बातें परस्पर विरुद्ध हैं और ये घटित नही हो सकती हैं।

ननु चोत्पादध्वंसौ स्यातामन्वर्थतोऽथ वाङ्मात्रात्।
दृष्टविरुद्धत्वादिह ध्रुवमपि चैकस्य कथमिति चेत्॥ २२९ ॥

उत्पादव्ययवाले पदार्थमे ध्रौव्य धर्मकी असंभवताकी आरेका—शंकाकार यहाँ शका करता है कि एक पदार्थके उत्पाद और व्यय ये दोनो बातें हो तो भले ही हो किन्तु उसी पदार्थ का ध्रौव्य मानना यह तो कथनमात्र है, और इसमे प्रत्यक्षसे बाधा है कि जो उत्पन्न होता है वह ध्रुव कैसे ? जो नष्ट होता है वह ध्रुव कैसे

एक ही पदार्थमें उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीनो किस प्रकारसे सम्भव हो सकते हैं क्योंकि उत्पादका नाम उत्पन्न होना जो उत्पन्न होना है उसका नाम ध्रुव होना कैसे कहा जा सकता है ? तो एक पदार्थमे दो अंश तो सम्भव हो नही सकते । उत्पादव्यय यदि माने जाते हैं तो ध्रौव्य व्यय उनमे किस प्रकार माने जा सकते हैं ? अब इस शंकाका उत्तर देते हैं।

सत्यं भवति विरुद्धं क्षणभेदो यदि भवेत्त्रयाणां हि ।
अथवा स्वयं सदेव हि नश्यत्युत्पद्यते स्वयं सदिदि ॥ २३०॥

उत्पादव्यय वाले पदार्थमे ध्रौव्य धर्मकी अविरुद्धताका प्रतिपादन -- शंकाकारका यह कहना तब सत्य होता जबकि उत्पादव्यय ध्रौव्यके क्षणभेद माने गए हो ? शंकाकार अपनी यह शंका उपस्थित कर रहा है कि यदि उत्पादव्यय ध्रौव्य ये तीनो अंश एक अंश पदार्थमे सम्भव नहीं होते तो यह बात मानी जाती जबकि उनमें क्षणभेद होता । उत्पादके समय व्यय न होता, उत्पादव्ययके समय ध्रौव्य नही होता, ऐसी बात यदि होती तो उत्पादव्यय अपने किसी समयमे हुआ करता होता । जिस समय कि व्यय और ध्रौव्य नहीं होते अथवा व्ययध्रौव्य अपने अपने समयमे होते, जब कि अन्य दो न होते तो ऐसी स्थितिमे तीनोको माननेकी बात विरुद्ध कही जा सकती थी कि एक ही पदार्थमें जो कि एक ही तो है उसमे तीनो धर्म कैसे रह सकते हैं ? लेकिन उत्पादव्यय ध्रौव्यमें क्षणभेद नहीं है । इस बातको कुछ विस्तारपूर्वक आगे बतावेंगे । संक्षेपमें उत्तर यह समझना चाहिए कि उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों एक ही समयमे रह सकते हैं और इनका एक पदार्थमें कोई विरोध नहीं है अथवा यदि ऐसा माना गया होता कि स्वयं सत् ही नष्ट होता है और सत ही उत्पन्न होता है तब तो इन तीनोंमें विरोध हो सकता था, लेकिन ऐसा तो नहीं माना गया है । जो सत् है उसे उत्पन्न होनेकी क्या जरूरत ? जो सत् है वह नष्ट कैसे होगा ? इस कारण सत् तो सत है ही, उसकी किसी अवस्थाको उत्पादव्यय कहते हैं और सब अवस्थाओ के होते रहनेपर भी सत् स्वयं अबाधित गतिसे सर्वत्र रहता है । इसे स्पष्ट करते हैं ।

क्वापि कुतश्चित् किञ्चित् कस्यापि कथञ्चनापि तन्न स्यात् ।
तत्साधकप्रमाणाभावादिह सोप्यदृष्टान्तरात् ॥ २३१ ॥

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका क्षणभेद न होनेसे पदार्थकी त्रयात्मकताकी सङ्गतता—उत्पादव्ययध्रौव्यमें क्षणभेद होता हो, अथवा सत् ही नष्ट होता है, सत् ही उत्पन्न होता हो यह बात किसी कारणसे कभी रंचमात्र भी नही होती । उत्पाद भिन्न समयमे होता हो और व्यय भिन्न समयमे होता हो, यो इन तीनोमे क्षणभेद होते

इस बातको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। और न इस बातकी सिद्धिमें कोई दृष्टान्त मिल सकता है। जितने भी पदार्थ इस लोकमे दृष्टगत हो रहे हैं उनमे स्पष्टतया यह विदित हो रहा है कि वे पदार्थ बहुत समय तक रहते हैं और उनकी विशिष्ट अवस्थायें बदलती रहती हैं। जैसे जल गर्म हो गया, ठढा हो गया, जम गया, कैंडा हो गया आदिक अनेक अवस्थायें उसमे बनती हैं पर बननेपर भी मैटर तो वहीका वही है जिसकी अवस्थायें बन जाती है। अब उन अवस्थाओकी दृष्टिमे देखते हैं तो वे अवस्थायें बनती हैं और बिगडती हैं। तो यो एक ही पदार्थमे, उत्पादव्ययध्रौव्य एक साथ सम्भव हो रहे हैं। ये भिन्न समयमे होते हो, इनको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है, पर दृष्टान्त भी जितने अधिक किसी पदार्थके ही तो दिए जायेंगे पर उनमें उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनो एक साथ होते हैं यह बात स्पष्ट समझमे आती जायगी। अतः शङ्काकारका यह कहना कि किसी पदार्थमे उत्पादव्यय भले हो रह जायें किन्तु जिनमे उत्पादव्यय हुआ वे ध्रुव होते, यह बात केवल कहने मात्रको होगी सिद्ध नही हो सकती। यह शङ्का खण्डित हो जाती है। अब शङ्काकार अपनी शङ्का के समर्थनमे कहता है।

ननु च स्वावसरे किल सर्गः सर्गैकलक्षणत्वात् स्यात्।
संहारः स्वावसरे स्यादिति संहारलक्षणत्वाद्वा ॥ २३२ ॥

ध्रौव्यं चात्मावसरे भवति ध्रौव्यैकलक्षणात्तस्य।
एवं लक्षणभेदः स्याद्बीजांकुरपादपत्त्ववन्त्विति चेत् ॥ २३३ ॥

'उत्पाद व्यय, ध्रौव्यमे लक्षणभेद होनेमे समयभेदकी सम्भवताकी आरेका—शङ्काकार कह रहा है कि देखिये पदार्थमे जो उत्पाद होता है वह अपने ही समयमें होता है, क्योकि उत्पादका लक्षण है नवीद अवस्थाका होना। और जब उत्पादका लक्षण उत्पादमे ही है, व्यय और ध्रौव्यमे नही है तो व्यय ध्रौव्यके कालमे नही है व्यय अपने ही अवसरमें है। इस प्रकार पदार्थमें जो संहार (विनाश) होना है वह अपने ही अवसरमे होता है क्योकि संहार का लक्षण व्यय होना, विलीन होना, अभाव होना है। तो भला अभाव होनेकी पर्याय अभाव होनेके समयमे कैसे रहेगी? तो संहार भी अपने अवसरमें ही होता है, क्योकि उसका लक्षण उत्पाद और व्ययसे जुदा है। इसी प्रकार ध्रौव्य भी अपने ही अवसरमें होता है, क्योकि ध्रौव्यका वह लक्षण उत्पाद व्ययसे जुदा है। ध्रौव्यका अर्थ है निरन्तर बना रहना। तो उत्पन्न हुआ है निरन्तर बना रहना। तो उत्पन्न हुआ है वह निरन्तर बना रहता तो नहीं है। जो नष्ट हुआ है उसे निरन्तर बना रहना तो नही कह सकते। इनका लक्षण जुदा है

अतएव ध्रौव्य भी अपने ही अवसरमे होता है । जब इनमे लक्षणभेद है तो इनका अवसर भी जुदा जुदा है । जैसे कि बीज अंकुर और वृक्ष । इनका लक्षण न्यारा न्यारा है बीज तो एक छोटा सूखा दाना है और अंकुर जमीनमे प्रारम्भमे जो कोमल पत्र बनता है वह अंकुर है और अब वह बढकर खडा हो जाता है तो उसका नाम वृक्ष है । तो बीज अंकुर और वृक्ष इनका जुदा जुदा लक्षण है । तो ये एक समयमें तो नही हैं । बीजके समयमे बीज है, अंकुरके समयमे अंकुर है और वृक्षके समयमे वृक्ष है । जो बीज जमीनमें बोया जायगा वह बीज बीज ही है उसे अंकुर और वृक्ष नहीं कहते । अब अंकुर उत्पन्न होता है तब वहाँ बीज नही रहा । अंकुर बीजका काम तो नही कर सकता और जब वृक्ष हो जाता है तो उसे बीज और अंकुर नही कहते । तो बीज वृक्ष और अंकुर जैसे ये भिन्न भिन्न लक्षण वाले हैं तो इनका भिन्न भिन्न समय है । तो यो ही उत्पादव्ययध्रौव्य भी भिन्न भिन्न लक्षण वाले हैं इस कारण इन तीनोका भी भिन्न भिन्न समय है । और जब क्षणभेद हो गया तब यह शङ्का ज्योकी त्यों बनी रही कि किसी भी पदार्थमे उत्पादव्यय होते हो तो हों किन्तु जिसमें उत्पाद व्यय हो रहे उसमे ध्रौव्य सम्भव नही हो सकता । अब इस शङ्का और शङ्काके समर्थनका खण्डन करते हैं ।

तन्न यतः क्षणभेदो न स्यादेकसमयमात्रं तत् ।
उत्पादादित्रयमपि हेतोः संदृष्टितोपि सिद्धत्वात् ॥ २३४ ॥

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यमे क्षणभेदका अभाव समर्थित करके उक्त आरेका का समाधान—शङ्काकारकी उक्त शङ्का यो ठीक नहीं है कि उत्पादव्ययध्रौव्यमें समयभेद मानना उचित हो ही नही सकता । इन तीनोमें समयभेद नही है । ये तीनो एक ही समयमें होते हैं यह बात युक्तिसे दृष्टातसे और प्रत्यक्षसे भली भांति सिद्ध हो जाती है । जो वृक्ष, बीज, अंकुरका दृष्टान्त दिया है तो वहा सब सद्भाव और अव स्थाओका दृष्टात दिया है और इतनेपर भी विचार करके देखा जाय तो वहाँ भी एक दृष्टिमे तीन बातें सम्भव हो सकती हैं, पर किसी भी पदार्थको निरखकर आप यह पायेंगे कि उसमे अवस्था नवीन हुई है और पुरानी अवस्था विलीन हुई है इतनेपर भी पदार्थ वहीका वही है । और ये तीनो बातें प्रत्येक समयमें पाई जाती हैं । क्योंकि प्रतिसमयमें ही नवीन नवीन पर्यायें होती चली जाती हैं । तो उसके साथ ही पूर्व पूर्व पर्यायें विलीन होती रहती हैं । और इतना होनेपर भी वस्तु सदैव है जिसके आधार मे उत्पाद और व्यय चलता रहता है । तो उत्पादव्ययध्रौव्यमे क्षणभेद नही है । इस कारणसे इन तीनोका किसी भी पदार्थमें विरोध नहीं आ सकता । इन तीनोंमें क्षण भेद नहीं है । यह बात स्पष्टतया बतला रहे हैं ।

अथ यद्यथ हि बीजं बीजावसरे सदेव नासदिति ।
तत्र व्ययो न सत्त्वाद् व्ययश्च तस्मात्सदंकुरावसरे ॥ २३५ ॥

शङ्काकारके कथित दृष्टान्तमे ही उत्पादव्ययध्रौव्यकी एकसमयताका व शङ्काकारकी भूलका प्रतिपादन — उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनो ही एक समयमे है इस बातको शङ्काकारके द्वारा दिए गए दृष्टान्तमे ही घटित कर रहे हैं। देखो बीज अपनी पर्यायके समयमे है, उस समयमे बीज पर्यायका अभाव नही कहा जा सकता। तो इतनी बात तो वहाँ कह सकते हैं कि जिस समयमे जो पर्याय हैं उस समय उस पर्यायका अभाव नही है। तो एक ही पर्यायमे सद्भाव और अभावका विरोध तो कहा जा सकता है पर शङ्काकार पर्यायके उत्पाद समयमे बीज पर्यायका व्यय न कहा जाय, यह बात सम्भव नही है। ये धर्म बताये जा रहे हैं उत्पादव्ययध्रौव्यके और शङ्काकार दृष्टान्त दे रहा है केवल उत्पाद उत्पादका। बीज है वह भी उत्पादरूप, सद्भावरूप, अकुर है वह भी उत्पादरूप, वृक्ष है वह भी उत्पादरूप। वहाँ उत्पादव्ययध्रौव्यकी तुलना करके दृष्टान्त दिया जाता तो यो दिया जाता कि जैसे अंकुर हुआ तो उत्पाद अंकुरका हुआ, व्यय बीजका हुआ और ध्रुवता रही वृक्षकी। यदि वृक्ष सबका ही नाम माना जाय, फल, फूल पत्ता आदिक चाहें कुछ भी हो, इस तरह जो उस सर्व परिणतियोमे रहता है उसका नाम वृक्ष मानना चाहिए। तो देखिये ! एक ही समयमे तीन बातें हो गयी ना ? तो बीजके समयमे बीज है और बीजके समयमे बीजका अभाव नही कहा जा सकता, वृक्षका व्यय भी नही कहा जा सकता, किंतु जब अकुर पर्याय उत्पन्न हो गयी तो उस समयमे बीज पर्यायका व्यय तो कहा जा सकता है। यहाँ प्रसङ्गमे उत्पादव्ययध्रौव्यकी बात कही जा रही है। केवल उत्पाद उत्पादकी बात नही कही जा रही है। तो उत्पादव्ययध्रौव्यके लिए दृष्टान्त जो भी दिया जायगा उसमे भी तीनो बातें एक ही समयमें घटित हो सकेगी वहाँ उनका क्षणभेद नही हो सकता। और जब क्षणभेद न हुआ उत्पादव्ययध्रौव्य तीनो एक साथ रह गए तब फिर एक पदार्थमे उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोको विरुद्ध कैसे कहा जा सकता है ? अविरुद्ध रूपसे तीनो रहते हैं तो इन तीनोका जो रहना है इन तीनोमय ही वह सत् कहलाता है। सत् केवल उत्पादरूप नही है सत् केवल व्ययरूप नही है और सत् केवल ध्रौव्य रूप भी नहीं है, ऐसा भी कोई सत् नही है जो अपरिणामी ध्रुव हो। ऐसा भी कोई सत् नही जो नष्ट हो जाता हो और ऐसा भी सत् नही कि जो उत्पन्न होता हो याने पहिले कुछ न हो और अब कुछ उत्पन्न हो गया तो तीनो ही एक सत्त्व कहलाते हैं। और उनका एक सत् पदार्थमे किसी भी प्रकार विरोध नहीं हो सकता।

बीजावस्थायामपि न स्यादंकुर भवोऽस्ति वाऽसदिति ।
तस्मादुत्पादः स्यात्स्वावसरे चांकुरस्य नान्यत्र ॥ २३६ ॥

एक पदार्थमे एक समय अनेक अवस्थाओके सद्भावका विरोध होनेपर भी उत्पादव्ययका अविरोध– बीज पर्यायकी अवस्थामे भी अकुरकी उत्पत्ति नही कही जा सकती। बीजके समय अकुरके उत्पादका अभाव है, इसलिए अंकुरका उत्पाद भी अपने समयमे होगा अन्य समयमे नही यह बात ठीक है किन्तु अकुरके उत्पादका ही नाम तो बीज पर्यायका विनाश है। तब व्यय और उत्पादका एक ही समय कैसे न होगा ? यहाँ यह ध्यानमे रखना होगा कि नवीन अवस्थाके होनेका नाम उत्पाद है और पुरानी अवस्थाके नाश होनेका नाम व्यय है, तब जिसका ही नाम उत्पाद है उसका ही नाम व्यय है। उत्पाद है उत्तर अवस्थाकी अपेक्षा और व्यय है पूर्व अवस्था की अपेक्षा। इस कारण जो समय उत्पादका है वही समय व्ययका है। और जो समय व्ययका है वही समय उत्पादका है, तब उत्पाद और व्यय एक साथ पदार्थमे रहें इसमे किसी भी प्रकारका विरोध नही है।

यदि वाबीजांकुरयोरविशेषात् पादपत्वमिति वाच्यम्।
नष्टोत्पन्नं न तदिति नष्टोत्पन्नं च पर्ययाभ्यां हि ॥ २३७ ॥

उत्पादव्यय होते रहनेपर भी ध्रौव्य धर्मका शाश्वत अविरोध—बीज और अकुर इन दोनोका यदि सामान्यरूपसे वृक्ष कहा जाय, वृक्ष मायने सब कुछ, बीज भी वृक्ष है अकुर भी वृक्ष हैं और जब बडा हो गया, खडा हो गया तब भी वह वृक्ष है, तो वृक्ष नाम यदि समस्त अवस्थाओमे कहा जाय तो यह सिद्ध होता है कि वृक्ष न तो उत्पन्न होता और न नष्ट होता। बीज अकुर आदिक अवस्थायें जैसे एकमे चल रही हैं उसकी दृष्टिसे तो वह वही है उसका न उत्पाद है, न विनाश है। बीज पर्याय का ही तो नाश हुआ और अकुर पर्यायका ही तो उत्पाद हुआ। इस सम्बन्धमे अनेक दृष्टान्त ले सकते हैं। जैसे मिट्टीके पिण्डसे घडा बनाया गया तो वहाँ तीन बातें निरखना है पिण्डका व्यय घडेका उत्पाद और मिट्टीका ध्रौव्य, ये तीनो ही बातें एक समयमे पायी जा रही है। जब घडा हुआ तो घडा बननेका जो समय है वही समय पिण्डके विनाशका है और उत्पाद विनाश होनेपर भी मिट्टी ध्रुव ही है। जब पिण्ड था तब भी वही मिट्टी थी, घडा बना तब भी वही मिट्टी है। तो वहाँ उत्पादव्यय ध्रौव्य तीनो एक साथ हो गए इस उत्पादव्ययका विरोध तो तब है कि जिस ही अवस्थाका उत्पाद है उस ही समय उस ही अवस्थाका व्यय माना जाय जिस समय जिस अवस्थाका व्यय माना उसी समय उसी अवस्थाका उत्पाद माना जाय तो विरोध आता है। पर उत्पाद है उत्तर अवस्थाका, व्यय है, पूर्व अवस्थाका, तो वहाँ विरोध नही है, और आधारभूत पदार्थ जिसका कि परिणमन चला करता है वह निरन्तर इस कारण उसमे ध्रौव्य पाया गया। इस कथनका साराश यह है।

आयातं न्यायबलादेतद्य त्रितयमेककालं स्यात् ।
उत्पन्नमंकुरेण च नष्टं बीजेन पादपत्वं तत् ॥ २३८ ॥

दृष्टान्त पूर्वक उत्पादव्ययध्रौव्यकी एक कालताका सयुक्तिक वर्णन— उक्त कथनमे यह बात सिद्ध हो चुकी कि उत्पादव्ययध्रौव्य तीनोका एक ही समय है। जैसे दूध पर्यायके बाद दही पर्याय बनती है तो दही पर्यायका उत्पाद हुआ, और दुग्ध पर्यायका व्यय हुआ किन्तु गोरस तो दोनो जगह रहा। जो दूध दहीका आधारभूत मैटर है जो गायसे निश्चित है वह सब अवस्थाओ रहा। तो गोरसपनेका ध्रौव्य रहा, ऐसा माने बिना पदार्थका सत्त्व ही नही ठहर सकता। प्रकृत दृष्टान्तमे निरख लीजिये कि जो बीज पर्यायके सद्भावका समय है वही समय बीज पर्यायके व्ययका नही है। क्योकि उस ही पदार्थका सद्भाव और उसीका अभाव, ये दोनो एक समयमे होते नही है। तब यो देखिये कि उस अकुरके उत्पन्न होनेका जो समय है वही समय बीजपर्याय के नष्ट होनेका है। वहाँ अन्तर नही पडता कि पहिले बीज पर्याय नष्ट हो ले तब बादमे अकुर पर्याय उत्पन्न होगी। बीज पर्याय और अकुरका उत्पाद इन दोनोके बीच मे पर्यायका विनाश पडा हो, ऐसा नही है। याने पर्याय दो सद्भावरूप मान ली जाय बीज और अकुर। तो बीजके समयमे बीज है, अकुरके समयमे अकुर है, बीजका नाश कब हुआ ? बीजके बाद और अकुरमे पहिले तो यो नाशका समय बीचमे माननेपर यह आपत्ति आयगी कि द्रव्य पर्याय रहित हो जायगा। एक समयमे तो वह बीज पर्यायमे थी दूसरे समयमे बीज पर्यायका नाश हुआ तीसरे समयमे अङ्कुरका उत्पाद हुआ। तो यह बतलाओ कि दूसरे समयमे रहा क्या ? कोई विधिरूप चीज न रही। तो यो द्रव्यका ही अभाव हो जायगा क्योकि उस मतव्यमे यह स्थिति मान ली गई है कि बीजका तो दूसरे समयमे नाश हो गया और दूसरे समयमे अकुर उत्पन्न नही हुआ तो अब बतलाओ कि उस बीजके समयमे कौन सी पर्याय मानी जाय ? कोई नही ! तो पर्याय जब न रही तो पर्यायी भी न रहेगी। तो पर्याय भी असिद्ध हो गई और द्रव्य भी असिद्ध हो गया। इस कारण यह मानना चाहिए कि जिस समय अकुरका उत्पाद है उस ही समय बीज पर्यायका नाश है। इसको यो भी कह सकते कि जो बीज पर्यायका नाश है वही अंकुरका उत्पाद है। हुआ क्या ? मान लो जैसे दो क्षण हैं—पहिले क्षणम बीज पर्याय है, दूसरे क्षणमे अकुर पर्याय हो गई तो बीजमे अब कोई क्षण न रहा। क्षण वे दोनो है। और दोनो क्षणोमे एक पर्याय वर्तमान है। अब पूर्व क्षणमे पूर्व पर्याय वर्तमान है उत्तर क्षणमे तो पर्याय वर्तमान है। बस, इस एक दृष्टिसे यह देखा जा सकता है कि पर्यायें होती चली जाती हैं, दूसरी पर्याय होने का नाम पूर्व पर्यायका विनाश है, इसका यह भी अर्थ न लेना। तब तो फिर नाश और उत्पादका अर्थ एक हो गया। उत्पादका अर्थ उत्पन्न होना है और नाशका अर्थ

नाश होता है। सो उत्पाद और व्यय एक चीज भी नही है किन्तु प्रतिसमय पदार्थमे एक ही पर्याय रहती है। तो जो पर्याय जिस समय है उस समय उस पर्यायका तो उत्पाद कहना चाहिए और उससे पूर्व पर्यायका व्यय कहना चाहिए और दोनों ही स्थितियोमे ध्रुव रहने वाला तत्त्व है ही। यो उत्पाद व्यय, ध्रौव्य तीनों एक ही समय हैं एक ही अवस्थामे ये तीनो बातें घटित हो जाती हैं। तब शङ्काकारका विकल्प उठाना व्यर्थ हैं। जब अनेकान्तका आश्रय लेते हैं तब वहा कोई विरोध नही होता। अनेकान्तका आश्रय तजकर जब एकान्तका आश्रय करते है तो वहाँ विरोध ही है।

अपि चांकुरसृष्टेरिह य एव समयः स बीजनाशस्य।
उभयोरप्यात्मत्वात् स एव कालश्च पादपत्वस्य ॥ २३९ ॥

अङ्कुरोत्पाद, बीजव्यय व पादपध्रौव्यकी एक समयता—उक्त कथन का स्पष्ट भाव यह है कि जो अंकुरकी सृष्टिका समय है वही समय बीजके नाशका है और बीजका नाश अंकुरका उत्पाद ये दो हैं क्या? यही वृक्षस्वरूप ही तो है। इसी कारण जो समय बीजके नाश और अंकुरके उत्पादका है वही समय वृक्षके ध्रौव्यका है। एक अन्य उदाहरण लीजिए! कोई बालक बचपनसे बढ कर जवान हो गया तो उस जवान होनेका ही नाम बचपनका नाश है और मनुष्य वही रहा इस कारण मनुष्य ध्रौव्य है वहा यह न होगा कि कोई दिन ऐसा मुकर्रर हो कि जिस दिन बचपनका नाश हो फिर उसके बाद दूसरा दिन आयगा तब जवानीका उत्पाद होगा, ऐसा नही है। अथवा देखिये! एक ही अंगुली जिस समय सीधी है दूसरे क्षणमे कुछ टेढी कर दी गई तो यह बतलाओ कि क्षण तो लगातार वे दोनो हैं। पहिले क्षण में अंगुली सीधी थी दूसरे क्षणमे अंगुली कुछ टेढी हुई तो सीधी अंगुलीका नाश किधर हुआ? पहिले समयमे कहोगे तो वह सङ्गत नहीं। पहिले समयमें तो अंगुली सीधी है उसका नाश कहां है? दूसरे समयमे देखा गया तो अंगुली टेढी है और उस टेढी हुईका ही नाम सीधीका नाश है। सीधी अंगुलीका नाश होना कोई अलगसे अन्य कुछ चीज है क्या? उत्तर पर्यायकी पर्यायके होनेका ही नाम पूर्वपर्यायका व्यय है। अनेक उदाहरण है ऐसे जिनसे यह सिद्ध होता है कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनो का समय एक ही है।

तस्मादनवद्यमिदं प्रकृतं तत्त्वस्य चैकसमये स्यात्।
उत्पादादित्रयमपि पर्यायार्थान्न सर्वथापि सत् ॥ २४० ॥

तत्त्वकी एक समयमे उत्पादव्ययध्रौव्यरूपता व तीनोकी पर्यायार्थादेशताका निर्णय—इस कारण यह बात निर्दोष सिद्ध हो जाती है कि तत्त्वके एक

समयमे भी उत्पाद आदिक तीन चीजें है। तत्त्वका यह लक्षण बताया है कि तत्त्व सत्ता लक्षण वाला है और सत्ताका लक्षण बताया है कि जो उत्पादव्यय ध्रौव्यसे अनुस्यूत हो, तन्मय हो वह सत्ता कहलाती है। तो सत् तत्त्वमे उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों हैं और वे तीनो स्वरूप कब कहलाते जब पदार्थमे प्रतिक्षण ये तीनो तत्त्व हो। सो ये तीनोकी ही तीनो चीजें पदार्थकी सत्तामे पायी जाती हैं। जो कोई लोग तीन देवताओ की कल्पना करते हैं ब्रह्मा विष्णु महेश और उन देवताओका प्रयोजन यह बताते है कि लोककी याने समस्त पदार्थोकी सृष्टि संहार और रक्षा करना है। तो जब विश्लेषण किया जाय कि यह बतलाओ कि सबसे पहिले उन तीनो देवताओमे कौन हुआ ? तो एकदम ही किसी घटनावश कथानकवश कोई लोग यह बात कह भी देते है कि पहिले यह हुए, बादमे यह हुए मगर अनेक घटनाओमे यह भी कह दिया जाता है कि अमुक पहिले हुआ अमुक बादमे हुआ, और कभी ऐसा लगता है कि उसका निर्णय ही नही हो पाता कि पहिले कौन हुआ, पीछे कौन हुआ ? सभी पहिले थे सभी एक समय थे, इस इस तरहके अनुमान बनते है, ये अनुमान क्यो बनाये गए ? इन देवताओ की कल्पना वस्तु स्वरूपके उत्पादव्यय ध्रौव्यके प्रतीकरूपमे बनाये गए और उत्पाद व्यय ध्रौव्य प्रति समय है। सदैव पदार्थमे उत्पादव्ययध्रौव्य मिलेगा। जब यहाँ उत्पाद की दृष्टि करते है तो उत्पादका महत्त्व दिख रहा है, जब व्ययकी दृष्टि रखते है तो व्ययका महत्त्व दिखता है। जब ध्रौव्यकी दृष्टि करते है तो ध्रौव्यका महत्त्व दिखता है और इस दृष्टिमे ऐसा होता है कि उत्पाद ही ज्येष्ट तत्त्व है, अथवा ध्रौव्य ही महान तत्त्व है या ध्रौव्य ही तत्त्व है। इस प्रकार इस स्वरूपके प्रतीकरूप देवताओके सम्बन्ध मे भी लौकिक महिमा यह बन जाती है कि सबमे बडा देव तो ब्रह्मा है कभी यह समझते कि विष्णु हैं यह सबके रक्षक हैं। कभी यह चर्चा हो जाती कि संहार करने वाले महेश ही इनमे श्रेष्ठ देव हैं। ये सब बातें भी क्यो बनती हैं कल्पनामे ? जिस समय जो दृष्टिमे है उस समय उसका ही महत्त्व विदित होता है। इस आधारपर जब जो कार्य दृष्टिमे लिया उस कार्यके प्रतीकका महत्त्व बना। यदि वस्तुमे ही यह स्वरूप मान लिया जाता कि सत्का सत्ताके कारण उत्पादव्ययध्रौव्य होना स्वरूप ही है तब फिर ये बाते कोई असगत, काल्पनिक नही आ जाती। तो उक्त कथनमे यह बात सिद्ध है कि जो है वह उत्पादव्ययध्रौव्यमय ही है, उसमे निरन्तर परिणमन होता है। बस निरन्तर परिणमन होता रहता है इस आधारपर ये तीनो तत्त्व सिद्ध हो जाते हैं। जो हुआ वह उत्पाद, जो न रहा सो व्यय और दोनो ही स्थितियोमे आधारभूत तत्त्व बराबर ही बना रहा। यो उत्पादव्ययध्रौव्य एक समयमे प्रत्येक पदार्थमे हैं उनमे किसी प्रकारका विरोध नही है।

भवति विरुद्ध हि तदा यदा सतः केवलस्य तत्त्रितयम्।
पर्ययनिरपेक्षत्वात् क्षणभेदेऽपि च तदिदं सम्भवति ॥ २४१ ॥

पर्यायनिरपेक्ष केवल द्रव्यमे उत्पादादि न होनेसे तीनोके विरोधका अनवसर एवं क्षणभेदकी संभावनाका अभाव—उत्पादव्यय और ध्रौव्यमे किसी भी प्रकारसे विरोध नही है न तो एक पदार्थमें विरोध है और न एक पदार्थमें एक समयमे विरोध है। इसमे विरोधकी सम्भावना तब हो सकती थी जब कि पर्याय निरपेक्ष केवल पदार्थमे ही उत्पादव्ययध्रौव्य माना जाता। तब तो इन तीनोका एक साथ विरोध हो सकता था। याने जब पर्याय नही मानी जाती, केवल एक परिणामी ही कोई माना जाता तो अपरिणामी अद्वैत पदार्थके उत्पादव्यय और ध्रौव्यमे विरोध हो सकता है तो ऐसा है ही नही कि कोई भी सत् बिना पर्यायके होता हो। प्रत्येक पदार्थ परिणामी ही होता है, तो विरोधकी सम्भावना तब थी जब कि पर्यायनिरपेक्ष केवल द्रव्यमे ही ये तीनो धर्म घटाये गए होते। और, उसी समय उनमें समय भेदकी कल्पना भी की जा सकती थी। यदि किसी अपरिणामी तत्त्वमे उत्पादव्ययध्रौव्य माने जाते तो एक समयमे तीनो नहीं हो सकते थे लेकिन ऐसा भी नही है जब सत् परिणामी ही, उसका उत्पादव्ययध्रौव्य चलता ही है तो वे एक समयमे ही तीनो हैं।

यदि वा भवति विरुद्धं तदा यदाप्येकपर्ययस्य पुनः।
अस्त्युत्पादो यस्य व्ययोपि तस्यैव तत्य वै ध्रौव्यम् ॥ २४२ ॥

किसी विवक्षित एक पर्यायका ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य न होनेसे तीनो मे विरोधकी असंभावना—अथवा उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे तब विरोध होता जब कि ऐसा माना गया होता कि जिस एक पर्यायका उत्पाद है उस ही पर्यायका व्यय हो और उस ही पर्यायका ध्रौव्य हो। किसी विवक्षित एक ही पर्यायके उत्पादव्ययध्रौव्यको एक समयमे माननेमे विरोध आ सकता था, किन्तु ऐसा भी सिद्धान्त नही है। किसी विवक्षित पर्यायकी उत्पत्ति है तो उससे पूर्व पर्यायका विनाश है और दोनो पर्यायोमे अनुगत तत्त्वका ध्रौव्य है। सो जब किसी एक पर्यायका उत्पाद अथवा व्यय, ध्रौव्य नही माना गया है तो वहाँ विरोधकी कोई सम्भावना नही रहती।

प्रकृतं सतो विनाशः केनचिदन्येन पर्ययेण पुनः।
केनचिदन्येन पुनः स्यादुत्पादो ध्रुवं तदन्येन ॥ २४३ ॥

एक सत्मे अपेक्षासे उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी सिद्धि—प्रकृत सिद्धान्त तो यह है कि किसी पर्यायसे सत्का विनाश है तो किसी अन्य पर्यायसे सत्का उत्पाद है और किसी अन्य पर्यायसे दृष्टिसे उसका ध्रौव्य होता है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यके सबंधमे सिद्धान्त यह है अथवा सत्ताका जो स्वरूप कहा गया है उस स्वरूपमे स्पष्ट बात यह है कि किसी भी पदार्थका नवीन अवस्थाके रूपसे उत्पाद होता है। मूलभूत पदार्थका

उत्पाद नही है किंतु उस पदार्थमे जो अवस्था व्यक्त हो रही है उस अवस्थाको उत्पाद है। इसी प्रकार मूलभूत पदार्थका विनाश नही है किन्तु अब यह पदार्थ जिस पर्यायमे न रहा उस पर्यायरूपसे विनाश है। इसी प्रकार जब यह दृष्टि जगती है कि समस्त पर्यायोमें कोई तत्त्व बना रहता है जो कि पर्यायोरूपसे निरन्तर परिणमता रहता है। तो यो जब भेद दृष्टिसे निरखते है तब वहा ध्रौव्य तत्त्व ज्ञात होता है, तो सत्का विनाश नही, असत्का उत्पाद नही और उत्पादव्यय होत रहनेका जो आधार है वह सदा रहता है, इन्ही तीनो अशो ो उत्पादव्यय ध्रौव्य शब्दसे कहा गया है, अथवा यो कह लीजिए कि सत् बनता है, बिगडता है और बना रहता है। बनने बिगडने और बने रहनेमे ही सत्त्व सम्भव है। यदि कोई पदार्थ बना ही रहता है, बनता बिगडता नही हैं तो बना रहना नही बन सकता इसीप्रकार कोई पदार्थ बिगडता ही है बनता और बना रहता नही है तो उसका बिगडना भी सिद्ध नही हो सकता इसी प्रकार कोइ पदार्थ यदि बनता ही है, बिगडना और बना रहना नही हो रहा तो बनना भी नही बन सकता। तो पदार्थमे किसी अवस्थाके रूपसे उत्पाद है तो उस ही समयमे उस ही अवस्थाको लक्ष्यमे रखकर जब पूर्व पर्यायके रूपमे देखा जाता है तो वहाँ व्यय स्वरूप है और चूकि वह है ही तो, कुछ वहाँ पहिले भी वस्तु थी। अब भी है आगे भी रहेगी। जिस वस्तुका परिणमन होता है उस वस्तुकी दृष्टिसे उसमे ध्रौव्य है।

संदृष्टिः पादपवत् स्वयमुत्पन्नः सदङ्कुरेण यथा।
नष्टो बीजेन पुनर्ध्रुवमित्युभेयत्र पादपत्वेन ॥ २४४ ॥

एक सत्मे एक ही समयमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य होनेका एक दृष्टान्त— उत्पाद आदिक परस्परमे अविरुद्ध हैं अर्थात् एक पदार्थमे उस एक ही समयमे रह सकता है। इस सिद्धान्तको घटित करनेके लिए दृष्टान्त दे रहे हैं जैसे वृक्ष सत्रूप अकुरसे स्वय उत्पन्न होता है और बीज रूपसे स्वय नष्ट होता है और वृक्षपनेकी दृष्टि से अकुर अवस्था और बीज व्ययमे दोनो जगह ध्रुव है। यहाँ वृक्ष माना है उस पदार्थ को कि जिसने परिणमन बीज अकुर आदिरूप होते रहते हैं। तो ऐसा वृक्ष उन सब पर्यायोमे है और जब अंकुर रूप बन रहा है। वहाँ किसी असत्का उत्पाद नही है। सद्भूत वह वृक्ष ही इस समय अकुर रूपसे व्यक्त हो रहा है। इसी प्रकार जब बीज रूपसे व्यय हुआ तो हुआ क्या वहाँ कि वही वृक्ष अब बीजरूप पर्यायसे विलीन हो गया है। तो यो उस एक वृक्षमे अंकुर अवस्थाका उत्पाद, बीज अवस्थाका व्यय और वृक्षपनेका ध्रौव्य है। इसी प्रकार समस्त पदार्थ जो भी सत् है वे वर्तमान अवस्थाका उत्पादरूप हैं, पूर्व अवस्थाका व्ययरूप हैं और यह उत्पाद व्ययकी परम्परा जैसे चलती है वह तो एक ही कुछ है। उस दृष्टिसे वहाँपर ध्रौव्य है।

न हि बीजेन विनष्टः स्यादुत्पन्नश्च तेन बीजेन ।
ध्रौव्यं बीजेन पुनः स्यादित्यध्यक्षपक्षबाध्यत्वात् ॥ २४५ ॥

एक सत्में नियत एक पर्यायरूपमे उत्पाद व्यय ध्रौव्यका अभाव— उक्त दृष्टान्तमे ऐसा भी न समझना चाहिए कि वृक्ष बीजरूपसे ही तो नष्ट होता हो और उसी बीजरूपसे उत्पन्न होता हो एवं उस ही बीज रूपसे ध्रुव रहता हो, क्योंकि ऐसी मान्यता प्रत्यक्ष विरुद्ध है । देखते ही हैं सामने, अथवा मिट्टी घड़ेका दृष्टान्त ले लो । जब घड़ा बना तो उस समयमे मृत पिण्डका व्यय हो गया वहाँ यह बात तो नहीं है कि वह मृतपिण्डरूपसे ही चीज नष्ट हुई है तो पिण्डरूपसे उसी समय उत्पन्न हुई हो और पिण्डरूपसे उसी समय उसका ध्रौव्य माना जा रहा हो, ऐसा वहाँ नहीं है, ऐसा भी नही है कि जिस समय घड़ा बना तो घड़े रूपसे उत्पाद हुआ हो और उस समय घड़ारूपसे ही व्यय हुआ हो, और ध्रौव्य भी घड़ारूपसे ही हुआ यह बात सम्भव नही है । इसी कारण उत्पादव्ययध्रौव्यमे विरोध नही है । पदार्थ किसी अन्य पर्यायके रूपसे उत्पन्न होता है और अन्य पर्यायके रूपसे विलीन होता है और मूलभूत पदार्थ जिसमे उत्पादव्ययकी सजावट चलती रहती है वह ध्रुव ही रहता है ।

उत्पादव्यययोरपि भवति यदात्मा स्वयं सदेवेति ।
तस्मादेतद्द्वयमपि वस्तु सदेवेति नान्यदस्ति सत् ॥ २४६ ॥

सत्की उत्पादव्ययस्वरूपता—उत्पाद व्यय दोनोकी ही आत्मा अर्थात् प्राणभूत स्वयं सत् ही है, अर्थात् सत् ही उत्पाद व्यय स्वरूप है । उत्पाद व्यय दोनों ही सद्वस्तु स्वरूप हैं । सत्से भिन्न उत्पाद और व्यय कोई स्वतत्र पदार्थ नही है । सत् ही किस व्यक्तिमे आया है, किस अवस्थारूपमे प्रकट हो रहा है इसका निरखना ही तो उत्पाद है और जब किसी अवस्थारूपमे व्यक्त हुआ है तो वह पहिली अवस्था रूपमे विलीन है । इसका दिखना ही व्ययका स्वरूप सिद्ध करता है । तो उत्पाद और व्यय ये दोनो सत् स्वरूप हैं, कोई नवीन पृथक वस्तु नहीं हैं । इसी कारण एक सत्में उत्पादका विरोध नही है और उसके साथ ही साथ ध्रौव्य धर्मका भी विरोध नहीं है । चीज है और नई अवस्थामें आयी है, पुरानीअवस्था अब उसमे रही नहीं, ऐसा ही इन समस्त दृष्टगत् पदार्थोंमे विदित हो रहा है और युक्तिसे यह निर्णय होता है कि समस्त पदार्थ इसी रूपमे हैं अन्यथा उनका सत्त्व हो ही नहीं सकता ।

पर्यायादेशत्वादस्त्युत्पादो व्ययोस्ति च ध्रौव्यम् ।
द्रव्यार्थादेशत्वान्नाप्युत्पादो व्ययोपि न ध्रौव्यम् ॥ २४७ ॥

व्यय होता है, फिर भी काल द्रव्य समस्त द्रव्योके परिणमनका साधारणतया निमित्त भूत है तब यह कहा जा सकेगा कि काल द्रव्यके समय पर्यायका निमित्त पाकर आकाश द्रव्यमे परिणमन चल रहा है। वह परिणमन वस्तुमे रहने वाले अगुरुलघुत्व नामके निमित्तसे षड्गुण हानि वृद्धिरूप स्वयं चलता है जिससे कि अर्थ पर्यायकी व्यवस्था बनती है। परिणमनमे यह पडा ही हुआ है कि हानि-वृद्धि हुए बिना परिणमन नही कहलाता। और हानि वृद्धि क्रमसे भी और एक साथ भी सम्भव होती है। जो तरगें होती हैं उन तरगोमे प्रकाशकी तरगोमे हानि वृद्धि एक साथ भी विदित हुआ करती है। किसी रूपमे हानि और किसी रूपमे वृद्धि ये भी सम्भव हैं। तो हानि वृद्धि हुए बिना परिणमनकी बात नही आती। एक समयका परिणमन न रहे और दूसरे समयका परिणमन आये यह बात यद्यपि एक ही समयमे है लेकिन यह हानि वृद्धि भी अवक्तव्यरूपसे हुआ ही करती है। तो आकाशद्रव्यमे जो भी परिणमन हो रहा है वह आकाशमे अपने आपमे स्वय हो रहा है। तो परिणमन वहाँ भी चल रहे हैं। तो पदार्थ अशुद्ध और शुद्ध हुआ करते हैं। उनमे भी परिणमन इसी भाँति चला करता है। तो 'वस्तु है' यह भी तब ही सिद्ध होता है जब कि वह परिणमता रहे। परिणमन माननेपर उत्पाद और व्यय दोनो ही मानने पडते हैं। किसी अवस्था से उत्पाद हुआ है तो किसी अवस्थासे व्यय हुआ है। अब उत्पादव्यय वाले पदार्थमे जो ध्रौव्यको निरखनेकी दृष्टि है वह भी भेददृष्टि है और भेददृष्टिका नाम ही पर्यायार्थिक नय है। तो यो उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनो ही पर्यायदृष्टिमे आने गए हैं।

ननु-तोत्पादेन सता कृतमसतैकेन वा व्ययेनाऽथ।
यदि व ध्रौव्येण पुनर्यदवश्य तत्त्रयेण कथमिति ॥ २४८ ॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेमे किसी एकका मानना ही पर्याप्त होनेसे तीनोके माननेकी व्यर्थताकी शङ्काकारकी आरेका- शङ्काकार यहाँ शङ्का करता है कि सत् कोई याँ तो उत्पाद रूप ही मानो या अपतरूप- याने व्ययस्वरूप ही मानो या ध्रौव्यरूप ही मानो। तीनो स्वरूप वस्तुको कैसे माना जा रहा है? जिस समय दृष्टिमें जो कुछ दृष्टगत होता है, उस समय उस दार्शनिकके लिये वही मात्र तत्त्व है। इस विधिमे जब वस्तुको उत्पाद स्वरूप देखा जा रहा है; केवल इस विधिसे ही निरखा जा रहा है कि यह क्या हो रहा है? अवस्थायें उत्पन्न होती जाती हैं— एकके बाद एक अवस्था उत्पन्न होती है, यह धारा चलती रहती है। यो पदार्थको उत्पाद स्वरूप ही निरखा जाता है। तो पदार्थ केवल उत्पादस्वरूप ही कहना चाहिए अथवा जब कभी व्ययकी ओर दृष्टि जाती है कि हो क्या रहा है? बस जो होता है नष्ट होता जाता है, पदार्थमे अनन्त पर्यायें पडी हैं और जब आविर्भाव होता तो होता क्या है? छोटा बडी होती जाती हैं। तो जो पदार्थमे अनन्त पर्यायें हैं वे क्रमश

विलीन होती जाती हैं। वस्तुमे यही होना रहता है। यो वस्तु केवल व्ययस्वरूप ही प्रतीत होता है। तो जब ध्रौव्यकी दृष्टिसे देखते हैं कि है क्या? पदार्थ सतत् वहीका वही है, तो पदार्थ ध्रौव्यरूप प्रतीत होता है। तो यो पदार्थोंको उत्पाद ही कहो या व्यय ही कहो या ध्रौव्य ही कहो। पदार्थमे ये तीनो रूप कैसे माने जाते है? अब इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं।

तन्न यदविनाभावः प्रादुर्भावध्रुवव्ययानां हि।
यस्मादेकेन विना न स्यादितरद्द्वयं तु तन्नियमात् ॥ २४६ ॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनोकी परस्पर अविनाभाविता होनेसे तीनोके माननेसे ही वस्तुत्वकी सिद्धि बताते हुए शङ्काकारकी शङ्काका समाधान—शङ्काकारकी उक्त शङ्का ठीक नही है क्योकि उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोका अविनाभाव सम्बन्ध है। अविनाभाव उसे कहते हैं कि जिसके बिना दूसरा न हो। उन दोनोमे अविनाभाव कहा जायगा। यहाँ तीनोमे अविनाभाव है। मानो, एकको छोडकर शेषके दोनों नही टिक सकते हैं तो जब उत्पादव्ययमें अविनाभाव है तो कैसे न वस्तुको त्रियात्मक माना जायगा? जहाँ एक है वहाँ तीनो ही है। जहाँ एक नही वहाँ तीनो ही नही इस कारण सद्भूत वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप ही होगा। उनमेसे एक अंश रहे, ऐसा वस्तुमे कभी नही हो सकता। और, इस विषयमे पहिले भी बहुत कहा जा चुका है कि जो उत्पादका क्षण है, जो उत्पादकी अवस्था है उसीको लक्ष्यमे रखकर अन्य पूर्व अवस्थाकी अपेक्षासे व्यय कहा जाता है। और ध्रौव्य तो सतत् है ही तो उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनो ही निरन्तर रहते हैं इस लिए वस्तु त्रियात्मक ही सिद्ध होता है।

अपि च द्वाभ्यां ताभ्यामन्यतमाभ्यां विना न चान्यतरत्।
एकं वा तदवश्यं तत्त्रयमिह वस्तु संसिध्यै ॥ २५० ॥

उत्पादव्ययध्रौव्यमेसे किसी एकके माने बिना दो की असिद्धिकी तरह किन्ही भी दोके माने बिना एककी असिद्धिका प्रतिपादन—अथवा बिना किन्ही दोके माने एक भी नही रह सकता। जैसे ऊपरकी गाथामे बताया था कि उत्पादव्यय ध्रौव्य इन तीनोमेसे कुछ भी एक न माना जाय तो बाकीके दो ठहर नही सकते हैं। इस गाथामे यह बता रहे है कि उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोमेंसे कुछ भी दो मान लिए जायें तो बाकीका एक ठहर ही नही सकता, इस कारण यह आवश्यक है कि वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हो, तब ही उसकी सत्ता कही जा सकती है, इन तीनोमेसे किसी भी एककी या दो की उपेक्षा करदी जाये तो वस्तुका अस्तित्व नहीं बन सकता

है। जगतमें कोई पदार्थ ऐसा नही जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोमेसे किसी एकमे कम हो और वस्तु बनी रहे। पदार्थ अनन्तानत है। अनन्त जीव, अनन्त गुने पुद्गल एक धर्म द्रव्य एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य, असख्यात काल द्रव्य, ये सभी अनन्त पदार्थ जातिकी अपेक्षासे तो ६ प्रकारके कहे गए हैं पर व्यक्तिश वे सब अनन्तानन्त हैं उन सब अनन्तानन्त पदार्थोमे प्रत्येकमे उत्पादव्ययध्रौव्य निरन्तर रहता ही है, इस कारण वस्तु त्रियात्मक ही है। उसमें एक दो अशोकी कल्पना की जाय और शेष न माने जायें, इससे उसका अस्तित्व ही न बन सकेगा।

अथ तद्यथा विनाशः प्रादुर्भावं विना न भावीति।
नियतमभावस्य पुनर्भावेन पुरस्सरत्वाच्च ॥ २५१ ॥

उत्पादके बिना व्ययके अभावका प्रसग—उक्त कथनका ही यहाँ स्पष्टीकरण किया जा रहा है कि उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोका परस्पर अविनाभाव है। देखिये ! यदि इन तीनोमेंसे उत्पादको नही माना जाता तो उत्पादके बिना विनाश भी सिद्ध नही हो सकता, क्योंकि किसी भी पदार्थका अभाव भावपूर्वक ही होता है। जैसे उदाहरण लो कोई घडा है और घडेका व्यय करना है तो घडेका विनाश तो हो जाय और खपरियाँ उत्पन्न न हो, क्या ऐसा किया जा सकता है ? खपरियोंके उत्पाद बिना घडेका नाश नही हो सकता। घडेमे डोकर तेजीसे मार दी और घडा चूर हो गया, इसमे क्या हो गया ? खपरियाँ हो गयीं। तो उन खपरियोका होना ही तो खपरियोका विनाश कहलाता है। कोई कहे कि इस घडेको फोड दें किन्तु खपरियाँ न बन सकें तो ऐसा नही हो सकता। किसी भी पदार्थ की पर्याय विनाश उत्तर पर्यायके हुए बिना हो ही नही सकता। अथवा विनाश और उत्पाद वहाँ कोई भिन्न भिन्न समयमे नहीं है। पदार्थमें प्रतिसमय एक एक अवस्था होती जाती है, यही क्रम अनादिसे अनन्द काल तक समस्त पदार्थोंमे चला करता है। तो प्रतिक्षण जो अवस्था बनी तो वहाँ प्रतिक्षण हुआ क्या? नवीन नवीन अवस्था, बस हो यही रहा है। नवीन नवीन अवस्थायें होती चली जा रही हैं। बस किसी भी अवस्थाको पूर्व अवस्थाका व्यय कहा जायगा। कही ऐसा तो नहीं कि पहिले पूर्व अवस्था हो, दूसरे क्षणमे पूर्व अवस्थाका नाश हो और तीसरे क्षणमे नवीन अवस्थाका उत्पाद हो। यदि ऐसा कोई माने तो उसका यह अर्थ होगा कि दूसरे समयमे कोई पदार्थ ही न रहा। जब अवस्था न रही, मूलत नाश हुआ तो फिर पदार्थ ही क्या रहा इस कारण यह निर्णय प्रत्येक पदार्थकी उस पदार्थमे प्रतिक्षण प्रतिसमय नवीन नवीन अवस्थायें होती चली जाती हैं। बस किसी भी नवीन अवस्थाको पूर्व अवस्था का व्यय कहा तो उत्पादके बिना व्ययका मानना सिद्ध नही हो सकता।

उत्पादोपि न भावी व्ययं विना वा तथा प्रतीतत्वात् ।
प्रत्यग्रजन्मनः किल भावस्याभावतः कृतार्थत्वात् ॥ २५२ ॥

व्ययके बिना उत्पादके अभावका प्रसङ्ग जिस प्रकार उत्पादके बिना व्यय नही हो सकता इसी प्रकार व्ययके बिना उत्पाद भी नही हो सकता । जैसे किसी से कहा जाय कि घडेकी खपरियाँ बना दी जायें पर घडा न फूटे तो ऐसा किया जा सकेगा क्या ? तो घडेका व्यय हुए बिना खपरियोका उत्पाद नही हो सकता । ऐसा प्रतीत भी है कि नवीन जन्म लेनेका भाव अभावसे ही कृतार्थ होता है । जैसे कोई नया जन्म हुआ तो नया जन्म होनेका अर्थ है कि पुराना जन्म मिट गया । नया भव जीवको मिला तो क्या नया भव पूर्वभवके अभाव बिना प्राप्त हो सकता है ? मरण बिना क्या जन्म हो सकता है ? किसी भवका मरण ही तो नवीन भवका जन्म है । तो जन्म भी मरणके बिना न हो सकेगा । तो व्ययके बिना उत्पाद भी सम्भव नही है । अत इन तीनो अशोमे यदि व्ययको न माना जाय तो उत्पाद भी न बन सकेगा ।

उत्पादध्वंसौ वा द्वावपि न स्तो विनापि तद्ध्रौव्यम् ।
भावस्याऽभावस्य च वस्तुत्वे सति तदाश्रयत्वाद्वा ॥ २५३ ॥

ध्रौव्यके बिना उत्पादव्ययके अभावका प्रसङ्ग—जिस तरह उत्पादके बिना व्यय सम्भव नही, व्ययके बिना उत्पाद सम्भव नही, इसी प्रकार ध्रौव्यके बिना उत्पाद व्यय दोके बिना ध्रौव्य सम्भव नही क्योकि विशेषके अभावमे सामान्यका अभाव है । सामान्यके अभावमे विशेषका भी अभाव है । जैसे मनुष्य सामान्य तो माना न जाय और बालक जवान बूढा हो जाय तो यह तो न बन सकेगा । अथवा बालक जवान बूढा आदिक कोई अवस्था न मानी जाय और मनुष्य मान लिया जाय ऐसा भी नही हो सकता । उत्पादव्यय किसमे हुआ करता है कोई एक पदार्थ रहने वाला तो हो । जैसे एक ही अंगुली सीधीकी, टेढीकी, गोलकी तो ये अवस्थायें किसी एकमे ही तो हुई । कोई एक ही तो वस्तु है जो इन पर्यायोमे आती गई है, तो ध्रौव्य माने बिना उत्पाद व्यय नही बन सकता । उत्पादमे क्या हुआ ? नवीन अवस्था हुई । तो जिसका व्यय हुआ, जिसकी नवीन अवस्था हुई वह एक है । यदि यो एक न माना जाय तो यह असत् उत्पादका सिद्धान्त बन बैठेगा और असत्का उत्पाद सम्भव ही नही है । तो यों ध्रौव्य न माननेपर उत्पाद व्यय भी न बन सकेगा । और उत्पादव्यय न माननेपर ध्रौव्य भी न बन सकेगा । उत्पादव्यय यह तो विशेष है क्योकि इसमे परिवर्तन है, व्यतिरेक है । विशेषकी पहिचान व्यतिरेक है । जैसे नीला कमल कहा तो नीला कमल यह विशेष हो गया । कमल सामान्य हो गया । तो कैसे समझा कि

नीला कमल विशेष कहलाया ? नीला कमल, न कि लाल पीला आदिक। तो लाल, पीला, सफेद आदिक कमलका व्यतिरेक हुआ। इसी आधार पर विशेष माना जाता है। तो उत्पाद व्यय विशेष है, जितने उत्पाद व्यय होते वे सब परस्पर व्यतिरेक हैं, कममे भी व्यतिरेक है, किन्तु ध्रौव्य सामान्य है क्योंकि ध्रौव्य मे यह वही है यह वही है, यह प्रत्यय हो रहा है। सामान्य मे भी यह पहचान होती है कि जहाँ यह समझा जाय यह वही है, जैसे बालक जवान बूढा बना तो वहाँ पहिचान हुई कि यह तो वही है, बालक था तो क्या ? वही है। तो ध्रौव्य मे भी इस प्रकार सामान्यकी झलक होती है। तो विशेष बिना सामान्य नही होता और सामान्य बिना विशेष नही होता इस कारण उत्पादव्यय बिना ध्रौव्य नही बन सकता और ध्रौव्य बिना उत्पादव्यय नही हो सकता इस कारण वस्तुको उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक ही मानना चाहिए।

वस्तुको उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक स्वीकार कर लेनेपर दर्शन विवादोकी समाप्ति–कोई वस्तुका उत्पादव्ययध्रौव्य स्वीकार करले तो उसकी अनेक समस्यायें सुलझजाती हैं। वस्तु नित्य है अथवा अनित्य है ? वस्तु एक है अथवा अनेक है, वस्तु सत्‌रूप है या शून्य रूप है ? कितने ही प्रश्न उठाये जायें वे सब हल होते जाते हैं एक वस्तुका उत्पादव्यय ध्रौव्य मान लेनेसे। वस्तु नित्य है क्योकि वस्तुका ध्रौव्य अश नित्यताका समर्थन करता है। वस्तु अनित्य है, क्योकी उत्पादव्ययधर्म वस्तुकी अनित्यताको सिद्ध करता है। वस्तु एक है, एक ही वस्तु एक है, यह ध्रौव्यने जताया। एक ही वस्तु अनेक है यह उत्पादव्ययने जताया। उत्पादव्यय धर्मसे नवीन–नवीन अवस्थायें बनती हैं, पदार्थ जब जिस अवस्थामे होता है पदार्थ तन्मात्र है। तब जब अवस्थायें बदलती हैं, उनमें व्यतिरेक है, तो अवस्थाके समयमे जो अवस्थावान है, अवस्था अवस्थावान अभेद करके निरखा जाय तो पदार्थ अनेक हो गया। तो यों पदार्थके सम्बन्धमे सामान्य विशेष नित्य अनित्य एक अनेक आदिक जितने भी प्रश्न उठे उन सब प्रश्नोका समाधान हो जाता है वस्तुका उत्पादव्ययध्रौव्य माननेसे।

अपि च ध्रौव्यं न स्यादुत्पादव्ययद्वयं विना नियमात्।
यदिह विशेषाभावे सामान्यस्य च सतोप्यभावत्वात् ॥ २५४ ॥

विशेषके अभावमें सामान्यके अभावका भी प्रसग होनेसे उत्पादव्ययके बिना ध्रौव्यकी भी असभूतिका प्रसग–उत्पाद व्ययके बिना ध्रौव्य भी नही ठहर सकता क्योकि जहाँ विशेषका अभाव है वहाँ सामान्य सत्‌का भी अभाव है। विशेष न हो तो सामान्य कहाँ ठहरेगा ? जैसे कि बालक जवान, बूढा आदिक विशेष हुए तब ही तो मनुष्य सामान्य रह सकेगा। तो यो ही ध्रौव्यका अभाव क्या है कि उत्पाद

ययकी धारा चलती रहे और जिसका उत्पाद व्यय होता है वह बना रहे तो उत्पाद व्यय ही जब न रहा तो ध्रुवता किसकी ? ध्रुवताका अर्थ है निरन्तरता जो अन्तर रहित बराबर रहे, तो रहना उत्पादव्ययके बिना सम्भव ही नही है। तो सामान्य के बिना विशेष नही हो सकता और विशेषके बिना सामान्य नही हो सकता। अतएव उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनो ही मानने पड़ेंगे। अन्यथा व्यवस्था नही बन सकती है। अब उक्त कथनका सारांश कहते हैं।

एवं चोत्पादादित्रयस्य साधीयसी व्यवस्थेह ।
नैवान्यथाऽन्यनिन्हवदतः स्वस्यापि घातकत्वाच्च ॥ २५५ ॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेसे किसी भी अन्यका निषेध करनेसे खुदका भी विघात होजानेकी आपत्ति होनेसे उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकताकी व्यवस्थाकी समीचीनता—ऊपर जो उत्पादव्ययध्रौव्यकी व्यवस्था बताई गई है वह बिल्कुल ही युक्तिसङ्गत है अन्यथा अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य दोनो न माने जायें तो किसी एकका अपलाप करनेपर शेषका अपव्यय हो जाता है। जैसे कि कहा ही गया था कि उत्पाद माना जाय तो व्यय ध्रौव्य भी न माना जा सकेगा। इसी प्रकार ध्रौव्यमे भी कोई एक या दो न माने जायें तो ध्रौव्य भी न बन सकेगा, इस कारण यह व्यवस्था ठीक है। वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है और तीनोके तीनो एक ही पदार्थमे एक साथ रहते हैं। यह वस्तुका स्वरूप है जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। चेतन अचेतन पदार्थ मे सर्वत्र विदित होता कि प्रत्येक पदार्थ अपने आप ही स्वभावसे उत्पादव्ययध्रौव्य वाला है। तब ही इस जगतकी व्यवस्था है। यह समस्त जगत अनादि अनन्त है। इसमे प्रत्येक पदार्थ स्वय अपनी प्रकृतिके कारण निरन्तर परिणमता रहता है। तभी इसकी अब तक सत्ता है और भविष्यमे अनन्त काल तक सत्ता रहेगी। यो तत्त्वका लक्षण सत् है। सत्का लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्यमयता है और इसी लक्षणके अनुसार वस्तुमे वस्तुत्व है। अर्थक्रिया होती है, उनका अस्तित्व रहता है। अतएव उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त समस्त पदार्थ हैं, यह बात माननी ही होगी।

अथ तद्यथा हि सर्गं केवलमेक हि मृगयमाणस्य ।
असदुत्पादो वा स्यादुत्पादो वा न कारणाभावात् ॥ २५६ ॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेसे केवल उत्पादको माननेमे दोष—उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेसे यदि केवल उत्पादको ही माना जाय तो ऐसे मंतव्यमे असत्का उत्पाद होने लगेगा, किन्तु सिर्फ उत्पाद ही माना व्यय नही माना। व्यय माननेपर यह व्यवस्था बनती थी कि एक अवस्थाका व्यय हुआ, दूसरी अवस्थाका उत्पाद हुआ। तो पूर्वावि-

स्था किसी पदार्थकी ही तो थी। वह पदार्थ सत् है, पहिलेमे था। तो सत्मे ही नवीन अवस्थाका उत्पाद बनता था। अब व्यय तो माना नही, जा रहा, केवल उत्पाद ही माना जा रहा तो अर्थ यह हुआ कि असत्का उत्पाद होगा अथवा कारणका अभाव होनेसे उत्पाद ही न होगा। उत्पादका कारण व्यय है। पूर्व अवस्थाका व्यय उत्तर अवस्थाका उत्पाद कहलाता है। तो यह कारण कार्य एक समयमे है। अथवा जब उत्पाद ही माना गया तो इसका अर्थ है कि उत्पादसे पहिले कुछ न था। तो जब उपादान कारण ही कुछ नही है तो अब उत्पन्न ही क्या होगा? तो केवल उत्पाद मानना यह भी दोपमे आता है। एक तो असत्के उत्पादका प्रसंग हो जायगा, दूसरे उपादान कारणका अभाव होनेसे अब उत्पाद ही न हो सकेगा अत केवल उत्पादकी मान्यता ठीक नही है। वस्तुमें उत्पादव्ययध्रौव्य तीनो ही धर्म मानना चाहिये।

अप्यथ लोकयतः किल संहारः सर्गपक्षनिरपेक्षम्।
भवति निरन्वयनाशः सतो न नाशोऽथवाप्यहेतुत्वात् ॥२५७॥

उत्पादव्यय ध्रौव्यमेसे केवल व्ययको ही माननेमे दोष—जो लोग उत्पाद तो नही मानते केवल व्ययको ही मानते तो उनके मंतव्यमें सत्का निरन्वय सर्वथा असत् होनेका प्रसग आता है। उत्पाद तो माना नही। जब नवीन अवस्था उसमे बनती नही, आगे कुछ रहना नहीं तो इसका अर्थ है कि जो सद्भूत वस्तु है उसका निरन्वय न होगा। अब आगे उसका कुछ भी नहीं चल सका तो व्यय मात्र माना जाय तो उसमे यह दोष आता है कि वस्तुका सर्वथा अभाव हो जायगा। दूसरा दोष यह आता है केवल व्ययके माननेमें, उत्पादकी अपेक्षा न रखनेमे कि उत्पाद तो माना नही अब व्ययका कारण क्या रहा? देखते हैं कि घडेमे खपरियाँ बनती है तो उसीके मायने घडेका व्यय है। तो जब उत्पाद व्यय नही माना गया कोई नवीन अवस्था बनती नही तो कारणके अभावमें उसका नाश भी नही हो सकता। जैसे उत्पादका कारण व्यय था। तो ऐसे ही यहाँ भी बताया जा रहा है कि व्ययका कारण उत्पाद है। नई अवस्था बनानेके कारणसे ही पुरानी अवस्थाका व्यय होता है। जैसे जवान हुआ तब ही तो बचपन मिटा। बचपन मिट जाय और कुछ दूसरी बात न आये ऐसा कैसे हो सकेगा? तो केवल व्ययको माननेमें भी अनेक दोष बताये हैं, इस कारण उत्पादव्ययध्रौव्य तीनो माननेपर वस्तु स्वरूपकी सिद्धि होती है।

अथ च ध्रौव्यं केवलमेकं किल पक्षमध्यवसतश्च।
द्रव्यमपरिणामि स्यात्तदपरिणामाच्च नापि तद्ध्रौव्यम् ॥२५८॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेसे केवल ध्रौव्यको ही माननेमें दोष—जैसे केवल

उत्पादके माननेमे दोष था केवल व्ययके माननेमे दोष था, इसी प्रकार केवल ध्रौव्यके माननेमे भी दोष है। जो लोग उत्पाद व्ययको न ी मानते, केवल ध्रौव्यको ही मानते है उनके मतव्यमे द्रव्य अपरिणामी हो जायगा क्योंकि उत्पाद व्यय तो माना नही, नई अवस्था बनी पुरानी अवस्था मिटी इसीके मायने तो परिणमन है। परिणमन बदल और कहते किसे है ? तो उत्पाद व्यय तो मान नही, इसका अर्थ यह है कि वस्तुमे परिणमन नही होगा, वस्तु अपरिणामी हो गया। और जब वस्तु अपरिणामी है तो उसका ध्रौव्य भी नही बन सकता। ध्रौव्यका मर्म तो यह है कि निरन्तर उसमे परिणमन चलता रहे, परिणमनेकी धारा न टूटे। तो वह निरन्तरता अब कहाँ रही और अपरिणामी तो सत् भी नही होता। कोई पदार्थ ऐसा नही हो सकता कि जो हो और उसमे परिणमन हो। चाहे शुद्ध अमूर्त पदार्थ भी हो, जहाँ परिणमन कुछ विदित नही होता वहाँ भी आगममे बताया गया है और कुछ युक्तियोसे ज्ञात होता है निरन्तर परिणमन होता ही रहता है। तो केवल ध्रौव्यके माननेमे यह दोष आता है कि वस्तु अपरि॰ामी बन जायगा और अपरिणामी होनेसे ध्रौव्य भी न बन सकेगा अथवा असत् हो जायगा। कोई वस्तु ही न रहेगी, इसकारण केवल ध्रौव्य मानकर भी सन्तोष नही किया जा सकता। वस्तुमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनो ही धर्म मानने होगें।

अथ च ध्रौव्योपेक्षितमुत्पादादिद्वयं प्रमाणयतः।
सर्वं क्षणिकमिवैतत् सदभावे वा व्ययो न सर्गश्च। २५६।

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेसे केवल उत्पाद व्ययको ही माननेमे दोष अब कोई रूप ध्रौव्यको न मानकर केवल उत्पाद व्यय इन दोनोको ही मानले तो वहाँ क्या दोष आता है तो बता रहे हैं ? ध्रौव्यरहित केवल उत्पादव्यय दोनोको ही मानने वालोके मतमे सभी चीजे क्षणिक हो जायेगी। जैसे ध्रौव्य तो माने नहीं उत्पाद माने अब उत्पन्न हो रहा फिर हुआ फिर हुआ तो क्षणिक ही तो रह गया। अथवा व्ययकी दृष्टिसे देखें तो ध्रौव्य माना नही। नष्ट हुआ, नष्ट हुआ तो क्या नष्ट हुआ ? वे अनेक पदार्थ नष्ट हो गया एक ही पदार्थमे तो यह नही कह सकते कि अभी यह नष्ट हुआ फिर वही फिर वही नष्ट हुआ इस प्रकार कहा जाना तो ध्रौव्यकी मान्यता आयगी। जिसमे वही शब्द चले उसमें ध्रौव्य सिद्ध होता है। तो ध्रौव्य न माननेपर उत्पादव्यय मात्र माननेपर सब कुछ क्षणिक सही बन जायगा एक दोष तो यह है। दूसरी बात है कि कोई ध्रुव पदार्थ यदि नही है तो सत् ही नही है समझिये सत् पदार्थके अभावमे न तो उत्पाद बन सकता है और न व्यय बन सकना है। कोई मूलमे सत् हो, पदार्थ हो तब तो कहा जाय कि इसमे यह नई अवस्था बनी और पुरानी अवस्था विलीन हुई, पर मूल ही नही तो उत्पादव्ययध्रौव्य किसका माना जाय ? तो ध्रौव्यके न माननेपर

उत्पाद व्ययकी सिद्धि नहीं होती, इस कारण वस्तुमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों धर्म मानने चाहियें

एतद्दोषभयादिह प्रकृतं चास्तिक्यमिच्छता पुंसा।
तत्पादादीनामयमविनाभावोऽवगन्तव्यः ॥ २६० ॥

आस्तिक्यके इच्छुक पुरुषोंको उत्पादव्ययध्रौव्यकी अविनाभावित्व अवगमकी सर्वप्रथम आवश्यकता—उत्पादव्ययध्रौव्यके इस प्रकरणमें अंत निर्णय देते हुए इस प्रसङ्गको समाप्त कर रहे हैं। केवल उत्पाद माननेमें दोष है, केवल व्यय माननेमें दोष है, केवल ध्रौव्य माननेमें दोष है। इन तीनोंमेंसे कुछ भी माना जाय तो उसमें आपत्तियाँ ही हैं। इस कारण जिन्हें दोषका भय है, जिन्हें निर्दोष कथन पसंद है, जिन्हें निर्दोष ज्ञान चाहिये, उन्हें तीनों ही अवस्थायें माननी होंगी। और जो वस्तुका उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक माना गया वही साधारण आस्तिक्य है। तो जिन्हें आस्तिक्यकी चाह हो, जो पदार्थ है जैसा है वैसा ही माननेकी जिनकी रुचि हो उनको चाहिए कि वस्तुको उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक मानें। आस्तिक्य और नास्तिक्यकी व्याख्या इसी आधारपर है। नास्तिक्य उसे कहते हैं कि वस्तु जिस प्रकारसे है उस प्रकारसे न माने। और आस्तिक्य उसे कहते हैं कि जो वस्तु जिस प्रकारसे है उसको वैसा माने। आस्तिक्य नास्तिक्यकी व्याख्यामें जैसे अनेक मतावलम्बियोंने कहा है कि जो हमारे सिद्धान्तको माने वह आस्तिक और जो न माने वह नास्तिक है, तो यह परिभाषा इस आस्तिक्य नास्तिक्य शब्दमें नहीं बन सकती है। शब्दमेंसे तो यही ध्वनित होता है कि जो है जैसा है उस प्रकार माने सो आस्तिक। आत्म पुद्गल, पदार्थ तत्त्व जिस रूपसे है उस रूपसे मानने वालेको आस्तिक कहते हैं और उस रूपसे न कहने वालेको नास्तिक कहते हैं। जब वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है तो ऐसा ही माने वही पुरुष आस्तिक है और जो इस तरह न माने वह पुरुष नास्तिक है। और आस्तिक नास्तिककी इस व्याख्याके आधारपर सब प्रकारके आस्तिक्य और नास्तिक्यकी बात स्पष्ट होती है। परमात्मा, आत्मा, कर्म, देह, द्रव्यादिक जितने भी विषय हैं सभी विषयोंका यथार्थ प्रतिपादन तब ही हो सकता है जब मूलमें वस्तुका उत्पादव्ययध्रौव्य माननेका आस्तिक्य बनाया गया हो। इस कारण जिन्हें आस्तिक्यकी चाह है उन्हें चाहिए कि वस्तुको उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक मानें, क्योंकि उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोंका परस्पर अविनाभाव है और त्रियात्मक ही वस्तुका स्वरूप है।